ॐ

श्रीपरमात्मने नम

श्रीमद्भगवद्गीता

(गुटका)

पदच्छेद-अन्वय

और

साधारणभाषाटीकासहित

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

मुद्रक-प्रकाशक

घनश्यामदास जालान

गीताप्रेस, गोरखपुर

चौथी बार ५००० सं० १९९९

कुल ३०२५०

मूल्य ।॥)

श्रीपरमात्मने नम

अथ श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यम्

गीताशास्त्रमिद पुण्य य पठेत्प्रयत पुमान् ।
विष्णो पदमवाप्नोति भयशोकादिवर्जित ॥१॥
गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च ।
नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च ॥२॥
मलनिर्मोचन पुसा जलस्नान दिने दिने ।
सकृद्गीताम्भसि स्नान ससारमलनाशनम् ॥३॥
गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यै शास्त्रविस्तरै ।
या स्वय पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनि सृता ॥४॥
भारतामृतसर्वस्व विष्णोर्वक्त्राद्विनि सृतम् ।
गीतागङ्गोदक पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥५॥
सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दन ।
पार्थो वत्स सुधीर्भोक्ता दुग्ध गीतामृत महत् ॥६॥

एक शास्त्र देवकीपुत्रगीत-
मेको देवो देवकीपुत्र एव ।
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि
कर्माप्येक तस्य देवस्य सेवा ॥७॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नम.

श्रीगीताजीकी महिमा

वास्तवमें श्रीमद्भगवद्गीताका माहात्म्य वाणीद्वारा वर्णन करनेके लिये किसीका भी सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि यह एक परम रहस्यमय ग्रन्थ है। इसमे सम्पूर्ण वेदोंका सार सार सग्रह किया गया है, इसका सस्कृत इतना सुन्दर और सरल है कि, थोड़ा अभ्यास करनेमे मनुष्य उसको सहज ही समझ सकता है, परन्तु इसका आशय इतना गम्भीर है कि, आजीवन निरन्तर अभ्यास करते रहनेपर भी उसका अन्त नहीं आता। प्रतिदिन नये नये भाव उत्पन्न होते रहते हैं, इससे यह सदा ही नवीन बना रहता है। एव एकाग्रचित्त होकर श्रद्धा, भक्तिसहित विचार करनेसे इसके पद पदमें परम रहस्य भरा हुआ प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। भगवान्के गुण, प्रभाव और मर्मका वर्णन जिसप्रकार इस गीताशास्त्रमे किया गया है, वैसा अन्य ग्रन्थोंमें मिलना कठिन है क्योंकि प्राय ग्रन्थोंमें कुछ न कुछ सासारिक विषय मिला रहता है, परन्तु "श्रीमद्भगवद्गीता" एक ऐसा अनुपमेय शास्त्र भगवान्ने कहा है कि, जिसमें एक भी शब्द सदुपदेशसे खाली नहीं है। इसीलिये श्रीवेदव्यासजीने महाभारतमें गीताजीका वर्णन करनेके उपरान्त कहा है कि—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥

गीता सुगीता करने योग्य है, अर्थात् श्रीगीताजीको भली-प्रकार पढ़कर अर्थ और भावसहित अन्तःकरणमें धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है, जो कि स्वयं श्रीपद्मनाभ विष्णु भगवान्‌के मुखारविन्दसे निकली हुई है (फिर) अन्य शास्त्रोंके विस्तारसे क्या प्रयोजन है? तथा स्वयं भगवान्‌ने भी इसका माहात्म्य अन्तमें वर्णन किया है। (अ० १८ श्लो० ६८ से ७१ तक)

इस गीताशास्त्रमें मनुष्यमात्रका अधिकार है, चाहे वह किसी भी वर्ण, आश्रममें स्थित होवे, परन्तु भगवान्‌में श्रद्धालु और भक्तियुक्त अवश्य होना चाहिये, क्योंकि अपने भक्तोंमें ही इसका प्रचार करनेके लिये भगवान्‌ने आज्ञा दी है तथा यह भी कहा है कि, स्त्री, वैश्य, शूद्र और पापयोनिवाले मनुष्य भी मेरे परायण होकर परमगतिको प्राप्त होते हैं (अ० ९ श्लो० ३२) एवं अपने अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा मेरी पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त होते हैं (अ० १८ श्लो० ४६) इन सबपर विचार करनेसे यही ज्ञात होता है कि, परमात्माकी प्राप्तिमें सभीका अधिकार है।

परन्तु उक्त विषयके मर्मको न समझनेके कारण बहुतसे मनुष्य जिन्होंने श्रीगीताजीका केवल नाममात्र ही सुना है, कह दिया करते हैं कि, गीता तो केवल संन्यासियोंके लिये ही है और वे अपने बालकोंको भी इसी भयसे श्रीगीताजीका

अभ्यास नहीं कराते कि गीताके ज्ञानसे कदाचित् लड़का घर छोड़कर सन्यासी न हो जाय, किन्तु उनको विचार करना चाहिये कि मोहके कारण अपने क्षात्रधर्मसे विमुख होकर भिक्षाके अन्नसे निर्वाह करनेके लिये तैयार हुए अर्जुनने जिस परम रहस्यमय गीताके उपदेशसे आजीवन गृहस्थमें रहकर अपने कर्तव्यका पालन किया, उस गीताशास्त्रका यह उलटा परिणाम किस प्रकार हो सकता है।

अतएव कल्याणकी इच्छावाले मनुष्योंको उचित है कि मोहको त्यागकरके अतिशय श्रद्धा, भक्तिपूर्वक अपने बालकोंको अर्थ और भावके सहित श्रीगीताजीका अध्ययन करावें, एवं स्वय भी इसका पठन और मनन करते हुए भगवान्‌की आज्ञानुसार साधन करनेमें तत्पर हो जाय क्योंकि अतिदुर्लभ मनुष्यके शरीरको प्राप्त होकर अपने अमूल्य समयका एक क्षण भी दु खमूलक क्षणभगुर भोगोंके भोगनेमें नष्ट करना उचित नहीं है।

श्रीगीताका प्रधान विषय

श्रीगीताजीमें भगवान्‌ने अपनी प्राप्तिके लिये मुख्य दो मार्ग बताये हैं। एक साख्ययोग, दूसरा कर्मयोग। उनमें-

(१) सपूर्ण पदार्थ मृगतृष्णाके जलकी भाति अथवा स्वप्नकी सृष्टिके सदृश मायामय होनेसे मायाके कार्यरूप सपूर्ण गुण ही गुणोंमें वर्तते हैं, ऐसे समझकर मन, इन्द्रियों और शरीरद्वारा होनेवाले सपूर्ण कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानसे

रहित होना (अ० ५ श्लो० ८, ९) तथा सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे नित्य स्थित रहते हुए एक सच्चिदानन्दघन वासुदेवके सिवाय अन्य किसीके भी होनेपनेका भाव न रहना। यह तो सांख्ययोगका साधन है।

(२) और सब कुछ भगवान्‌का समझकर सिद्धि असिद्धिमें समत्वभाव रखते हुए आसक्ति और फलकी इच्छाका त्याग करके भगवत्-आज्ञानुसार केवल भगवान्‌के ही लिये सब कर्मोंका आचरण करना। (अ० २ श्लो० ४८ अ० ५ श्लो० १०) तथा श्रद्धा, भक्तिपूर्वक मन, वाणी और शरीरसे सब प्रकार भगवान्‌के शरण होकर नाम, गुण और प्रभावसहित उनके स्वरूपका निरन्तर चिन्तन करना (अ० ६ श्लो० ४७)। यह निष्काम कर्मयोगका साधन है।

उक्त दोनों साधनोंका परिणाम एक होनेके कारण वास्तवमें अभिन्न माने गये हैं (अ० ५ श्लो० ४, ५) परन्तु साधनकालमें अधिकारी भेदसे दोनोंका भेद होनेके कारण दोनों मार्ग भिन्न-भिन्न बताये गये हैं। (अ० ३ श्लो० ३) इसलिये एक पुरुष दोनों मार्गोंद्वारा एक कालमें नहीं चल सकता, जैसे श्रीगङ्गाजीपर जानेके लिये दो मार्ग होते हुए भी एक मनुष्य दोनों मार्गोंद्वारा एक कालमें नहीं जा सकता। उक्त साधनोंमें कर्मयोगका साधन सन्यास आश्रममें नहीं बन सकता, क्योंकि सन्यास आश्रममें कर्मोंका स्वरूपसे भी

त्याग कहा है और सांख्ययोगका साधन सभी आश्रमोंमें बन सकता है।

यदि कहो कि, सांख्ययोगको भगवान्‌ने सन्यासके नामसे कहा है, इसलिये उसका सन्यास आश्रममें ही अधिकार है, गृहस्थमें नहीं, तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि दूसरे अध्यायमें श्लोक ११ से ३० तक जो सांख्य-निष्ठाका उपदेश किया गया है, उसके अनुसार भी भगवान्‌ने जगह जगह अर्जुनको युद्ध करनेकी योग्यता दिखायी है। यदि गृहस्थमें सांख्ययोगका अधिकार ही नहीं होता तो इस प्रकार भगवान्‌का कहना कैसे बन सकता? हां इतनी विशेषता अवश्य है कि सांख्यमार्गका अधिकारी देहाभिमानसे रहित होना चाहिये। क्योंकि जबतक शरीरमें अहंभाव रहता है, तबतक सांख्ययोगका साधन भलीप्रकार समझमें नहीं आता। इसीसे भगवान्‌ने सांख्ययोगको कठिन बताया है। (गीता अ० ५ श्लो० ६) और निष्काम कर्मयोग साधनमें सुगम होनेके कारण अर्जुनके प्रति जगह-जगह कहा है कि, तू निरन्तर मेरा चिन्तन करता हुआ निष्काम कर्मयोगका आचरण कर।

अथ ध्यानम्

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्॥

अर्थ–जिसकी आकृति अतिशय शान्त है, जो शेषनागकी शय्यापर शयन किये हुए है, जिसकी नाभिमें कमल है, जो देवताओंका भी ईश्वर और सपूर्ण जगत्का आधार है, जो आकाशके सदृश सर्वत्र व्याप्त है, नीलमेघके समान जिसका वर्ण है, अतिशय सुन्दर जिसके सपूर्ण अङ्ग हैं, जो योगियों-द्वारा ध्यानकरके प्राप्त किया जाता है, जो सपूर्ण लोकोंका स्वामी है, जो जन्ममरणरूप भयका नाश करनेवाला है, ऐसे श्रीलक्ष्मीपति, कमलनेत्र विष्णु भगवान्को मैं (सिरसे) प्रणाम करता हू ।

य ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुत स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदै साङ्गपदक्रमोपनिपदैर्गायन्ति यं सामगा ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति य योगिनो
यस्यान्त न विदु सुरासुरगणा देवाय तस्मै नम ॥

अर्थ–ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण दिव्य स्तोत्रों-द्वारा जिसकी स्तुति करते हैं, सामवेदके गानेवाले अङ्ग, पद, क्रम और उपनिषदोंके सहित वेदोंद्वारा जिसका गायन करते हैं, योगीजन ध्यानमें स्थित तद्गत हुए मनसे जिसका दर्शन करते हैं, देवता और असुरगण (कोई भी) जिसके अन्तको नहीं जानते उस (परम पुरुष नारायण) देवके लिये मेरा नमस्कार है ।

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

श्रीमद्भगवद्गीताके

प्रधान विषयोंकी अनुक्रमणिका

अर्जुनविषादयोग नामक पहिला अध्याय ॥ १ ॥

सांख्ययोग नामक दूसरा अध्याय ॥ २ ॥

कर्मयोग नामक तीसरा अध्याय ॥ ३ ॥

ज्ञानकर्मसंन्यासयोग नामक चौथा अध्याय ॥ ४ ॥

श्लोक	विषय

कर्मसंन्यासयोग नामक पांचवां अध्याय ॥ ५ ॥

आत्मसंयमयोग नामक छठा अध्याय ॥ ६ ॥

गुणत्रयविभागयोग नामक चौदहवां अध्याय ॥ १४ ॥

पुरुषोत्तमयोग नामक पन्द्रहवां अध्याय ॥ १५ ॥

दैवासुरसंपद्विभागयोग नामक सोलहवां अध्याय ॥ १६ ॥

* ॐ तत्सदिति *

हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

श्रीमद्भगवद्गीताका

सूक्ष्मविषय

अर्जुनविषादयोग नामक पहिला अध्याय ॥ १ ॥

श्लोक	विषय
१	युद्धके विषयमें धृतराष्ट्रका प्रश्न।
२	धृतराष्ट्रकृत प्रश्नके उत्तरमें द्रोणाचार्यके पास दुर्योधनके गमनका वर्णन।
३	पाण्डवसेनाको देखनेके लिये गुरुसे दुर्योधनकी प्रार्थना।
४-६	पाण्डवसेनाके प्रधान प्रधान महारथियोंके नाम।
७	अपनी सेनाके प्रधान प्रधान शूरवीरोंको जाननेके लिये गुरुसे दुर्योधनकी प्रार्थना।
८	दुर्योधनद्वारा अपनी सेनाके प्रधान प्रधान महारथियोंके नामोंका कथन।
९	दुर्योधनद्वारा अपनी सेनाके शूरवीरोंकी प्रशसा।
१०	दुर्योधनका पाण्डवसेनाकी अपेक्षा अपनी सेनाको अजेय बतलाना।

श्लोक — विषय

सांख्ययोग नामक दूसरा अध्याय ॥ २ ॥

श्लोक	विषय
१	संजयद्वारा अर्जुनकी कायरताका वर्णन ।
२	अर्जुनके मोहयुक्त करुणाभावकी निन्दा ।
३	कायरताको त्यागकर युद्ध करनेके लिये अर्जुनके प्रति भगवान्‌की आज्ञा ।
४	अर्जुनका भीष्मादिके साथ युद्ध न करनेकी इच्छा प्रगट करना ।
५	अर्जुनका गुरुजनोंको मारनेकी अपेक्षा भीख मागकर खानेको श्रेष्ठ समझना ।
६	अपने कर्तव्यके विषयमें अर्जुनको संशय होना ।
७	अर्जुनका भगवान्‌के शरण होकर स्वकर्तव्य पूछना ।
८	अर्जुनका त्रिलोकीके राज्यसे भी शोककी निवृत्ति न मानना ।
९	अर्जुनका युद्धसे उपराम होना ।
१०	अर्जुनकी अज्ञानतापर भगवान्‌का मुस्कुराना ।
११	शोक करनेको अयोग्य बताते हुए भगवान्‌का अर्जुनके प्रति उपदेश आरम्भ करना ।
१२	आत्माकी नित्यताका निरूपण ।
१३	आत्माकी नित्यताका निरूपण और धीर पुरुषकी प्रशंसा ।
१४	इन्द्रिय और विषयोंके संयोगकी अनित्यताका निरूपण और उनको सहन करनेके लिये आज्ञा ।

श्लोक	विषय
३७	सब प्रकारसे लाभ दिखाकर अर्जुनको युद्ध करनेके लिये आज्ञा देना।
३८	सुख दुःखादिको समान समझकर युद्ध करनेसे पाप न लगनेका कथन।
३९	निष्काम कर्मयोगका विषय सुननेके लिये भगवान्की आज्ञा और उसके महत्त्वका कथन।
४०	निष्काम कर्मयोगके प्रभावका कथन।
४१	निश्चयात्मक और अनिश्चयात्मक बुद्धिके स्वरूपका निरूपण।
४२-४३	सकामी पुरुषोंके स्वभावका कथन।
४४	सकामी पुरुषोंके अन्तःकरणमें निश्चयात्मक बुद्धि न होनेका कथन।
४५	निष्कामी और आत्मपरायण होनेके लिये आज्ञा।
४६	जलाशयके दृष्टान्तसे ब्रह्मज्ञानकी महिमा।
४७	फलासक्तिको त्यागकर कर्म करनेके लिये प्रेरणा और कर्मत्यागका निषेध।
४८	आसक्तिको त्यागकर समत्वबुद्धिसे कर्म करनेके लिये आज्ञा।
४९	सकाम कर्मकी निन्दा और निष्काम कर्मयोगकी प्रशंसा।
५०	निष्काम कर्मयोगीके पुण्य-पापोंकी निवृत्तिका कथन और निष्काम कर्म करनेके लिये आज्ञा।
५१	कर्मफलके त्यागसे परमपदकी प्राप्ति।

कर्मयोग नामक तीसरा अध्याय ॥ ३ ॥

ज्ञानकर्मसंन्यासयोग नामक

चौथा अध्याय ॥ ४ ॥

कर्मसंन्यासयोग नामक पांचवां अध्याय ॥ ५ ॥

आत्मसंयमयोग नामक छठा अध्याय ॥६॥

अक्षरब्रह्मयोग नामक आठवां अध्याय ॥८॥

राजविद्याराजगुह्ययोग नामक नवां अध्याय ॥ ९ ॥

विभूतियोग नामक दसवां अध्याय ॥ १० ॥

श्लोक	विषय
२२	सामवेद आदि विभूतियोंका कथन।
२३	शंकर आदि विभूतियोंका कथन।
२४	बृहस्पति आदि विभूतियोंका कथन।
२५	भृगु आदि विभूतियोंका कथन।
२६	अश्वत्थ आदि विभूतियोंका कथन।
२७	उच्चैःश्रवा आदि विभूतियोंका कथन।
२८	वज्र आदि विभूतियोंका कथन।
२९	अनन्त आदि विभूतियोंका कथन।
३०	प्रह्लाद आदि विभूतियोंका कथन।
३१	पवन आदि विभूतियोंका कथन।
३२	भगवान्‌की योगशक्तिका और अध्यात्मविद्यादि विभूतियोंका कथन।
३३	अकार आदि विभूतियोंका कथन।
३४	मृत्यु आदि विभूतियोंका कथन।
३५	बृहत्साम आदि विभूतियोंका कथन।
३६	द्यूत आदि विभूतियोंका कथन।
३७	वासुदेव आदि विभूतियोंका कथन।
३८	दण्ड आदि विभूतियोंका कथन।
३९	सर्वरूपसे प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूपका कथन।
४०	भगवत्-विभूतियोंकी अनन्तताका कथन।
४१	भगवान्‌के तेजके अंशसे सम्पूर्ण वस्तुओंकी उत्पत्तिका कथन।

विभूतियोग नामक दसवां अध्याय ॥ १० ॥

श्लोक	विषय
१	परम प्रभावयुक्त वचन कहनेके लिये भगवान्‌की प्रतिज्ञा।
२	सबका आदि होनेसे मेरी उत्पत्तिको देवादि भी नहीं जानते इस विषयमें भगवान्‌का कथन।
३	प्रभावसहित परमेश्वरको जाननेका फल।
४-५	भगवान्‌से बुद्धि आदि भावोंकी उत्पत्तिका कथन।
६	भगवान्‌के संकल्पसे सप्तर्षि और सनकादिकोंकी उत्पत्तिका कथन।
७	भगवान्‌की विभूति और योगको तत्त्वसे जाननेका फल।
८	भगवान्‌के प्रभावको समझकर भजनेवालोंकी प्रशंसा।
९	भगवत्-भक्तोंके लक्षण और उनके साधनका कथन।
१०-११	प्रीतिपूर्वक निरन्तर भजनेका फल।
१२-१३	अर्जुनद्वारा भगवान्‌की स्तुति।
१४-१५	अर्जुनद्वारा भगवान्‌के प्रभावका वर्णन।
१६	भगवान्‌की विभूतियोंको जाननेके लिये अर्जुनकी इच्छा।
१७	भगवत्-चिन्तनके विषयमें अर्जुनका प्रश्न।
१८	योगशक्ति और विभूतियोंको विस्तारसे कहनेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना।
१९	अपनी दिव्य विभूतियोंको कहनेके लिये भगवान्‌की प्रतिज्ञा।
२०	सर्वात्मरूपसे भगवान्‌के स्वरूपका कथन।
२१	विष्णु आदि विभूतियोंका कथन।

श्लोक	विषय
२२	सामवेद आदि विभूतियोंका कथन।
२३	शंकर आदि विभूतियोंका कथन।
२४	बृहस्पति आदि विभूतियोंका कथन।
२५	भृगु आदि विभूतियोंका कथन।
२६	अश्वत्थ आदि विभूतियोंका कथन।
२७	उच्चैःश्रवा आदि विभूतियोंका कथन।
२८	वज्र आदि विभूतियोंका कथन।
२९	अनन्त आदि विभूतियोंका कथन।
३०	प्रह्लाद आदि विभूतियोंका कथन।
३१	पवन आदि विभूतियोंका कथन।
३२	भगवान्‌की योगशक्तिका और अध्यात्मविद्यादि विभूतियोंका कथन।
३३	अकार आदि विभूतियोंका कथन।
३४	मृत्यु आदि विभूतियोंका कथन।
३५	बृहत्साम आदि विभूतियोंका कथन।
३६	द्यूत आदि विभूतियोंका कथन।
३७	वासुदेव आदि विभूतियोंका कथन।
३८	दण्ड आदि विभूतियोंका कथन।
३९	सर्वरूपसे प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूपका कथन।
४०	भगवत्-विभूतियोंकी अनन्तताका कथन।
४१	भगवान्‌के तेजके अंशसे सम्पूर्ण वस्तुओंकी उत्पत्तिका कथन।

श्लोक विषय

विश्वरूपदर्शनयोग नामक ग्यारहवां अध्याय ॥ ११ ॥

श्लोक	विषय
१५	विश्वरूपमें देवता और ऋषि आदिको देखना ।
१६	विश्वरूपको अनेक बाहु और उदर आदिसे युक्त देखना ।
१७	विश्वरूपको किरीट, गदा और चक्र आदिसे युक्त देखना ।
१८	विश्वरूपकी स्तुति ।
१९	अनन्त सामर्थ्य और प्रभावयुक्त विश्वरूपका दर्शन ।
२०	अद्भुत विराट्‌रूपसे सपूर्ण जगत्‌को व्याप्त देखना ।
२१	विश्वरूपमें प्रवेश करते हुए देवादिकोंका और स्तुति करते हुए महर्षि आदिकोंका दर्शन ।
२२	विश्वरूपको देखते हुए विस्मययुक्त रुद्रादिकोंका दर्शन ।
३–२५	भगवान्‌के भयङ्कर रूपको देखकर अर्जुनका भयभीत होना ।
६–२७	दोनों सेनाओंके योधाओंको विराट् स्वरूपके मुखमें प्रवेश होकर नष्ट होते हुए देखना ।
२८	नदी और समुद्रके दृष्टान्तसे प्रवेशके दृश्यका कथन ।
२९	दीपक और पतंगके दृष्टान्तसे नाशके दृश्यका कथन ।
३०	सब लोकोंको ग्रसन करते हुए तेजोमय भयानक विश्वरूपका वर्णन ।
३१	उग्ररूपधारी भगवान्‌को तत्त्वसे जाननेके लिये अर्जुनका प्रश्न ।
३२	लोकोंको नष्ट करनेके लिये प्रवृत्त हुआ मैं महाकाल हूं इत्यादि वचनोंसे भगवान्‌का उत्तर ।

श्लोक	विषय
३३–३४	निमित्तमात्र होकर युद्ध करनेके लिये अर्जुनके प्रति भगवान्‌की आज्ञा।
३५	भगवान्‌के वचनोंको सुनकर अर्जुनका भयभीत और गद्गद होना।
३६–३७	भगवान्‌के महत्त्वका वर्णन।
३८–३९	अनन्तरूप परमेश्वरकी स्तुति और वारम्वार नमस्कार।
४०	सर्व ओरसे भगवान्‌को नमस्कार और उनकी अनन्त सामर्थ्यका कथन।
४१–४२	अपराध क्षमाके लिये अर्जुनकी प्रार्थना।
४३	भगवान्‌के अतिशय प्रभावका कथन।
४४	प्रसन्न होनेके लिये और अपराध सहनेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना।
४५–४६	चतुर्भुजरूप दिखानेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना।
४७–४८	भगवान्‌के द्वारा अपने विश्वरूपकी प्रशंसा।
४९	अर्जुनको धीरज देकर अपना चतुर्भुजरूप दिखाना।
५०	चतुर्भुजरूप दिखानेके उपरान्त सौम्यरूप होकर अर्जुनको पुन धीरज देना।
५१	भगवान्‌के मनुष्यरूपको देखकर अर्जुनका शान्तचित्त होना।
५२–५३	चतुर्भुजरूपके दर्शनकी दुर्लभता और प्रभावका कथन।
५४	अनन्यभक्तिसे भगवत्-प्राप्तिकी सुलभताका कथन।
५५	अनन्यभक्तिके लक्षण और उसको परमात्माकी प्राप्तिका कथन।

भक्तियोग नामक बारहवां अध्याय ॥ १२ ॥

श्लोक	विषय
१	साकार और निराकारके उपासकोंमें कौन श्रेष्ठ है यह जाननेके लिये अर्जुनका प्रश्न ।
२	भगवान्‌के सगुणरूपकी उपासना करनेवालोंकी श्रेष्ठताका कथन ।
३-४	निराकार ब्रह्मके स्वरूपका कथन और उसकी उपासनासे भगवत्-प्राप्ति ।
५	निराकारकी उपासनामें कठिनताका कथन ।
६	भगवान्‌के सगुणरूपकी उपासनाका कथन ।
७	अपने भक्तोंका शीघ्र उद्धार करनेके लिये भगवान्‌की प्रतिज्ञा ।
८	ध्यानसे भगवत्-प्राप्ति ।
९	अभ्यासयोगसे भगवत्-प्राप्ति ।
१०	भगवान्‌के लिये कर्म करनेसे भगवत्-प्राप्ति ।
११	सर्व कर्मोंके फल-त्यागसे भगवत्-प्राप्ति ।
१२	सर्व कर्म-फल-त्यागकी प्रशंसा ।
१३-१४	सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित और मैत्री आदि गुणोंसे युक्त प्रिय भक्तके लक्षण ।
१५	हर्षादि विकारोंसे रहित और सबको अभय देनेवाले प्रिय भक्तके लक्षण ।
१६	निःस्पृहादि गुणोंसे युक्त सर्वत्यागी प्रिय भक्तके लक्षण ।
१७	हर्षशोकादि विकारोंसे रहित निष्कामी प्रिय भक्तके लक्षण ।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग नामक तेरहवां अध्याय ॥ १३ ॥

गुणत्रयविभागयोग नामक चौदहवां अध्याय ॥ १४ ॥

पुरुषोत्तमयोग नामक पन्द्रहवां अध्याय ॥१५॥

श्लोक	विषय
१	वृक्षरूपसे ससारका वर्णन और उसके जाननेवालेकी महिमा ।
२–३	ससारवृक्षका विस्तार और उसका असङ्गशस्त्रसे छेदन करनेके लिये कथन ।
४	परमपदकी प्राप्तिके निमित्त भगवान्‌के शरण होनेके लिये प्रेरणा ।
५	भगवत्-प्राप्तिवाले पुरुषोंके लक्षण ।
६	परमपदके लक्षण और उसकी महिमा ।
७	जीवात्माके स्वरूपका कथन।
८	वायुके दृष्टान्तसे जीवात्माके गमनका विषय ।
९	मन-इन्द्रियोंद्वारा जीवात्माके विषय-सेवनका कथन ।
१०–११	सर्व अवस्थामें स्थित आत्माको मूढ नहीं जानते और ज्ञानी जानते हैं इस विषयका कथन ।
१२	परमेश्वरके तेजकी महिमा ।
१३	सपूर्ण जगत्‌को पृथिवीरूपसे धारण करनेवाले और चन्द्र-रूपसे पोषण करनेवाले परमेश्वरके प्रभावका कथन ।
१४	वैश्वानररूपसे सपूर्ण प्राणियोंके शरीरमें परमात्माकी व्यापकताका कथन ।
१५	प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूपका कथन ।
१६	क्षर और अक्षरके स्वरूपका कथन ।
१७	पुरुषोत्तमके स्वरूपका कथन ।

देवासुरसंपद्विभागयोग नामक सोलहवां अध्याय ॥ १६ ॥

श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवां अध्याय ॥ १७ ॥

मोक्षसंन्यासयोग नामक अठारहवां अध्याय ॥ १८ ॥

श्लोक	विषय
२–३	त्यागके विषयमें दूसरोंके ४ सिद्धान्तोंका कथन ।
४	त्यागके विषयमें अपना निश्चय कहनेके लिये भगवान्‌का कथन ।
५	यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंके त्यागका निषेध ।
६	यज्ञ, दान और तप आदि कर्मोंमें फल तथा आसक्तिके त्यागका कथन ।
७	तामस त्यागके लक्षण ।
८	राजस त्यागके लक्षण ।
९	सात्त्विक त्यागके लक्षण ।
१०	रागद्वेषके त्यागसे त्यागीके लक्षण ।
११	स्वरूपसे सर्व कर्म-त्यागमें अशक्यताका कथन और कर्मफलके त्यागसे त्यागीका लक्षण ।
१२	सकामी पुरुषोंको कर्मफलकी प्राप्ति और त्यागी पुरुषोंके लिये सर्वथा कर्मफलके अभावका कथन ।
१३–१५	सम्पूर्ण कर्मोंके होनेमें अधिष्ठानादि पञ्च हेतुओंका निरूपण ।
१६	आत्माको कर्ता माननेवालेकी निन्दा ।
१७	आत्माको अकर्ता माननेवालेकी प्रशंसा ।
१८	कर्मप्रेरक और कर्मसंग्रहका निर्णय ।
१९	तीनों गुणोंके अनुसार ज्ञान, कर्म और कर्ताके भेदोंको सुननेके लिये भगवान्‌की आज्ञा ।
२०	सात्त्विक ज्ञानके लक्षण ।

श्लोक	विषय
४२	ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्मोंका कथन ।
४३	क्षत्रियके स्वाभाविक कर्मोंका कथन ।
४४	वैश्य और शूद्रके स्वाभाविक कर्मोंका कथन ।
४५–४६	स्वाभाविक कर्मोंसे भगवत्-प्राप्तिका कथन और उनकी विधि ।
४७	स्वधर्म-पालनकी प्रशंसा ।
४८	स्वधर्मत्यागका निषेध ।
४९	सांख्ययोगसे भगवत्-प्राप्तिका कथन ।
५०	ज्ञानयोगके अनुसार भगवत्-प्राप्तिकी विधिको समझनेके लिये अर्जुनके प्रति भगवान्‌की आज्ञा ।
५१–५३	ज्ञानयोगके अनुसार भगवत्-प्राप्तिका पात्र बननेकी विधि।
५४	ज्ञानयोगसे परा भक्तिकी प्राप्ति ।
५५	परा भक्तिसे भगवत्-प्राप्ति ।
५६	भक्तिसहित निष्काम कर्मयोगसे भगवत्-प्राप्ति ।
५७	भक्तिसहित निष्काम कर्मयोग करनेके लिये भगवान्‌की आज्ञा ।
५८	भगवत्-चिन्तनसे उद्धार और भगवत्-आज्ञाके त्यागसे अधोगति ।
५९–६०	बिना इच्छा भी स्वाभाविक कर्मोंके होनेमें प्रकृतिकी प्रबलताका निरूपण ।
६१	सबके हृदयमें अन्तर्यामी परमात्माकी व्यापकताका कथन।
६२	ईश्वरके शरण होनेके लिये आज्ञा और उसका फल ।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

* इति श्रीमद्भगवद्गीताका सूक्ष्मविषय समाप्त *

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

भाषाटीकासहित

पहिला अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥

पदच्छेदः

धर्मक्षेत्रे, कुरुक्षेत्रे, समवेताः, युयुत्सवः,
मामकाः, पाण्डवाः, च, एव, किम्, अकुर्वत, संजय ॥ १ ॥

अन्वय	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
	धृतराष्ट्र बोला—		
संजय	= हे संजय	मामकाः	= मेरे
धर्मक्षेत्रे	= धर्मभूमि	च	= और
कुरुक्षेत्रे	= कुरुक्षेत्रमें	एव*	=
समवेताः	= इकट्ठे हुए	पाण्डवाः	= पाण्डुके पुत्रोंने
युयुत्सवः	= युद्धकी इच्छावाले	किम्	= क्या
		अकुर्वत	= किया

* यहां "एव" शब्द समुच्चयार्थ है।

सजय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥

दृष्ट्वा, तु, पाण्डवानीकम्, व्यूढम्, दुर्योधन, तदा, आचार्यम्, उपसगम्य, राजा, वचनम्, अब्रवीत् ॥ २ ॥

इसपर सजय बोला-

तदा	=उस समय	दृष्ट्वा	=देखकर
राजा	=राजा	तु	=और
दुर्योधन	=दुर्योधनने	आचार्यम्	=द्रोणाचार्यके
व्यूढम्	=व्यूहरचनायुक्त	उपसगम्य	=पास जाकर (यह)
पाण्डवानीकम्	=पाण्डवोंकी सेनाको	वचनम्	=वचन
		अब्रवीत्	=कहा

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥

पश्य, एताम्, पाण्डुपुत्राणाम्, आचार्य, महतीम्, चमूम्, व्यूढाम्, द्रुपदपुत्रेण, तव, शिष्येण, धीमता ॥ ३ ॥

आचार्य	=हे आचार्य	द्रुपदपुत्रेण	=द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नद्वारा
तव	=आपके		
धीमता	=बुद्धिमान्	व्यूढाम्	=व्यूहाकार खड़ी की हुई
शिष्येण	=शिष्य		

पाण्डुपुत्राणाम् = पाण्डुपुत्रोंकी | महतीम् = बड़ी भारी
चमूम् = सेनाको
एताम् = इस | पश्य = देखिये

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥

अत्र, शूराः, महेष्वासाः, भीमार्जुनसमाः, युधि,
युयुधानः, विराटः, च, द्रुपदः, च, महारथः ॥ ४ ॥

अत्र = इस (सेना) में (सन्ति) = हैं (जैसे)
महेष्वासाः = बड़े बड़े धनुषोंवाले | युयुधानः = सात्यकि
च = और
युधि = युद्धमें | विराटः = विराट
भीमार्जुनसमाः = भीम और अर्जुनके समान | च = तथा
महारथः = महारथी
शूराः = बहुतसे शूरवीर | द्रुपदः = राजा द्रुपद

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥

धृष्टकेतुः, चेकितानः, काशिराजः, च, वीर्यवान्,
पुरुजित्, कुन्तिभोजः, च, शैब्यः, च, नरपुङ्गवः ॥ ५ ॥

च	=और	पुरुजित्	=पुरुजित्
धृष्टकेतु	=धृष्टकेतु	कुन्तिभोज-	न्तिभोज
चेकितान	=चेकितान	च	=और
च	=तथा	नरपुङ्गव	= { मनुष्योंमें श्रेष्ठ
वीर्यवान्	=बलवान्	शैब्य	=शैब्य
काशिराज	=काशिराज		

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्वं एव महारथाः ॥

युधामन्यु, च, विक्रान्त, उत्तमौजा, च, वीर्यवान्,
सौभद्र, द्रौपदेया, च, सर्वे, एव, महारथा ॥ ६ ॥

च	=और	च	=और
विक्रान्त	=पराक्रमी	द्रौपदेया	= { द्रौपदीके पाचों पुत्र
युधामन्यु	=युधामन्यु		
च	=तथा		(यह)
वीर्यवान्	=बलवान्	सर्वे	=सब
उत्तमौजा	=उत्तमौजा	एव	=ही
सौभद्र	= { सुभद्रापुत्र अभिमन्यु	महारथा	=महारथी हैं

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥

अस्माकम्, तु, विशिष्टाः, ये, तान्, निबोध, द्विजोत्तम,
नायकाः, मम, सैन्यस्य, संज्ञार्थम्, तान्, ब्रवीमि, ते ॥७॥

द्विजोत्तम	=हे ब्राह्मणश्रेष्ठ	ते	=आपके
अस्माकम्	=हमारे पक्षमें	संज्ञार्थम्	=जाननेके लिये
तु	=भी	मम	=मेरी
ये	=जो जो	सैन्यस्य	=सेनाके
विशिष्टाः	=प्रधान हैं	(ये)	=जो जो
तान्	=उनको	नायकाः	=सेनापति हैं
	(आप)	तान्	=उनको
निबोध	=समझ लीजिये	ब्रवीमि	=कहता हूं

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥

भवान्, भीष्मः, च, कर्णः, च, कृपः, च, समितिंजयः,
अश्वत्थामा, विकर्णः, च, सौमदत्तिः, तथा, एव, च ॥ ८ ॥

एक तो स्वयम्-

भवान्	=आप	च	=और
च	=और	समितिंजयः	=संग्रामविजयी
भीष्मः	=पितामह भीष्म	कृपः	=कृपाचार्य
च	=तथा	च	=तथा
कर्णः	=कर्ण		

तथा	=वैसे	च	=और
एव	=ही	सौमदत्ति	=सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा
अश्वत्थामा	=अश्वत्थामा		
विकर्ण	=विकर्ण		

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥

अन्ये, च, बहव, शूरा, मदर्थे, त्यक्तजीविता, नानाशस्त्रप्रहरणा, सर्वे, युद्धविशारदा ॥ ९ ॥

तथा–

अन्ये	=और	मदर्थे	=मेरे लिये
च	=भी	त्यक्तजीविता	=जीवनकी आशाको त्यागनेवाले
बहव	=बहुतसे	सर्वे	=सबके सब
शूरा	=शूरवीर	युद्धविशारदा	=युद्धमें चतुर हैं
नानाशस्त्रप्रहरणा	=अनेकप्रकारके शस्त्र अस्त्रोंसे युक्त		

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥

अपर्याप्तम्, तत्, अस्माकम्, बलम्, भीष्माभिरक्षितम्, पर्याप्तम्, तु, इदम्, एतेषाम्, बलम्, भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

और-

भीष्माभि-रक्षितम्	= भीष्मपितामह-द्वारा रक्षित	तु	=और
अस्माकम्	=हमारी	भीमाभि-रक्षितम्	= भीमद्वारा रक्षित
तत्	=वह	एतेषाम्	=इन लोगोंकी
बलम्	=सेना	इदम्	=यह
अपर्याप्तम्	= सब प्रकारसे अजेय है	बलम्	=सेना
		पर्याप्तम्	= जीतनेमें सुगम है

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥

अयनेषु, च, सर्वेषु, यथाभागम्, अवस्थिता, भीष्मम्, एव, अभिरक्षन्तु, भवन्त, सर्वे, एव, हि ॥ ११ ॥

च	=इसलिये	सर्वे	=सबके सब
सर्वेषु	=सब	एव	=ही
अयनेषु	=मोर्चोंपर	हि	=नि:सन्देह
यथा-भागम्	= अपनी अपनी जगह	भीष्मम्	= भीष्म-पितामहकी
अवस्थिता	=स्थित रहते हुए	एव	=ही
भवन्त	=आप लोग	अभिरक्षन्तु	= सब ओरसे रक्षा करें

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्॥

तस्य, सजनयन्, हर्षम्, कुरुवृद्ध, पितामह,
सिंहनादम्, विनद्य, उच्चै, शङ्खम्, दध्मौ, प्रतापवान् ॥१२॥

इस प्रकार द्रोणाचार्यसे कहते हुए दुर्योधनके वचनोंको सुनकर-

कुरुवृद्ध	=कौरवोंमें वृद्ध	सजनयन्	=उत्पन्न करते हुए
प्रतापवान्	=बड़े प्रतापी	उच्चै	=उच्चस्वरसे
पितामह	= { पितामह भीष्मने	सिंहनादम्	= { सिंहकी नाद-के समान
तस्य	= { उस (दुर्योधन) के (हृदयमें)	विनद्य	=गर्जकर
		शङ्खम्	=शङ्ख
हर्षम्	=हर्ष	दध्मौ	=बजाया

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत्॥

तत, शङ्खा, च, भेर्य, च, पणवानकगोमुखा,
सहसा, एव, अभ्यहन्यन्त, स, शब्द, तुमुल, अभवत् ॥१३॥

तत	=उसके उपरान्त	भेर्य	=नगारे
शङ्खा	=शङ्ख		
च	=और	च	=तथा

पणव-आनक-गोमुखा	= ढोल मृदङ्ग और नृसिंहादि बाजे	अभ्यहन्यन्त	= बजे (एकदम)
सहसा	= एक साथ	सः	= वह
एव	= ही	शब्दः	= शब्द
		तुमुलः	= बड़ा भयङ्कर
		अभवत्	= हुआ

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः॥

तत, श्वेतै, हयै, युक्ते, महति, स्यन्दने, स्थितौ,
माधव, पाण्डव, च, एव, दिव्यौ, शङ्खौ, प्रदध्मतु ॥१४॥

ततः	= इसके अनन्तर	माधव	= श्रीकृष्ण महाराज
श्वेतै	= सफेद	च	= और
हयै	= घोड़ोंसे	पाण्डव	= अर्जुनने
युक्ते	= युक्त	एव	= भी
महति	= उत्तम	दिव्यौ	= अलौकिक
स्यन्दने	= रथमें	शङ्खौ	= शङ्ख
स्थितौ	= बैठे हुए	प्रदध्मतुः	= बजाए

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः॥

पाञ्चजन्यम्, हृषीकेश, देवदत्तम् धनञ्जय,
पौण्ड्रम्, दध्मौ, महाशङ्खम्, भीमकर्मा, वृकोदर ॥१५॥

उनमें-

हृषीकेश	= श्रीकृष्ण महाराजने	भीमकर्मा	= भयानक कर्मवाले
पाञ्चजन्यम्	= पाञ्चजन्य नामक शङ्ख	वृकोदर	= भीमसेनने
धनञ्जय	= अर्जुनने	पौण्ड्रम्	= पौण्ड्रनामक
देवदत्तम्	= देवदत्त नामक शङ्ख (बजाया)	महाशङ्खम्	= महाशङ्ख
		दध्मौ	= बजाया

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥

अनन्तविजयम्, राजा, कुन्तीपुत्र, युधिष्ठिर,
नकुल, सहदेव, च, सुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥

कुन्तीपुत्र	= कुन्तीपुत्र	च	= तथा
राजा	= राजा	सहदेव	= सहदेवने
युधिष्ठिर	= युधिष्ठिरने	सुघोषमणि-पुष्पकौ	= सुघोष और मणिपुष्पक नामवाले शङ्ख (बजाये)
अनन्त-विजयम्	= अनन्तविजय नामक शङ्ख (और)		
नकुल	= नकुल		

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥

काश्य, च, परमेष्वास, शिखण्डी, च, महारथ,
धृष्टद्युम्न, विराट, च, सात्यकिः, च, अपराजित ॥ १७ ॥

परमेष्वास	=श्रेष्ठ धनुषवाला	धृष्टद्युम्न	=धृष्टद्युम्न
काश्य	=काशिराज	च	=तथा
च	=और	विराट	=राजा विराट
महारथ	=महारथी	च	=और
शिखण्डी	=शिखण्डी	अपराजित	=अजेय
च	=और	सात्यकि	=सात्यकि

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥

द्रुपद, द्रौपदेया, च, सर्वश, पृथिवीपते,
सौभद्र, च महाबाहु, शङ्खान्, दध्मु, पृथक्, पृथक् ॥१८॥

तथा—

द्रुपद	=राजा द्रुपद	च	=और
च	=और	महाबाहु	=बड़ी भुजा-वाला
द्रौपदेया	=द्रौपदीके पाचों पुत्र	सौभद्र	=सुभद्रापुत्र अभिमन्यु

सर्वशः	=इन सबने	पृथक्	=अलग
पृथिवीपते	=हे राजन्	शङ्खान्	=शङ्ख
पृथक्	=अलग	दध्मुः	=बजाये

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥

स, घोष, धार्तराष्ट्राणाम्, हृदयानि, व्यदारयत्,
नभ, च, पृथिवीम्, च, एव, तुमुल, व्यनुनादयन् ॥१९॥

च	=और	व्यनुनादयन्	=शब्दायमान करते हुए
स	=उस		
तुमुल	=भयानक		
घोष	=शब्दने	धार्तराष्ट्राणाम्	=धृतराष्ट्र-पुत्रोंके
नभ	=आकाश		
च	=और	हृदयानि	=हृदय
पृथिवीम्	=पृथिवीको	व्यदारयत्	=विदीर्ण कर दिये
एव	=भी		

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥

अथ, व्यवस्थितान्, दृष्ट्वा, धार्तराष्ट्रान्, कपिध्वज,
प्रवृत्ते, शस्त्रसंपाते, धनु, उद्यम्य, पाण्डव,

हृषीकेशम्, तदा, वाक्यम्, इदम्, आह, महीपते,

सेनयोः, उभयोः, मध्ये, रथम्, स्थापय, मे, अच्युत ॥२०-२१॥

महीपते = हे राजन्

अथ = उसके उपरान्त

कपिध्वज = कपिध्वज

पाण्डव = अर्जुनने

व्यवस्थितान् = खड़े हुए

धार्तराष्ट्रान् = धृतराष्ट्र-पुत्रोंको

दृष्ट्वा = देखकर

तदा = उस

शस्त्रसम्पाते प्रवृत्ते = शस्त्र चलनेकी तैयारीके समय

धनुः = धनुष

उद्यम्य = उठाकर

हृषीकेशम् = हृषीकेश श्रीकृष्ण महाराजसे

इदम् = यह

वाक्यम् = वचन

आह = कहा

अच्युत = हे अच्युत

मे = मेरे

रथम् = रथको

उभयोः = दोनों

सेनयोः = सेनाओंके

मध्ये = बीचमें

स्थापय = खड़ा करिये

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।

कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥

यावत्, एतान्, निरीक्षे, अहम्, योद्धुकामान्, अवस्थितान्,

कैः, मया, सह, योद्धव्यम्, अस्मिन्, रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

यावत्	=जबतक	अस्मिन्	=इस
अहम्	=मैं	रणसमुद्यमे	=युद्धरूप व्यापारमें
एतान्	=इन		
अवस्थितान्	=स्थित हुए	मया	=मुझे
योद्धुकामान्	=युद्धकी कामना-वालोंको	के	=किन किनके
		सह	=साथ
निरीक्षे	=अच्छी प्रकार देख लूं (कि)	योद्धव्यम्	=युद्ध करना योग्य है

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः॥

योत्स्यमानान्, अवेक्षे, अहम्, ये, एते, अत्र, समागता, धार्तराष्ट्रस्य, दुर्बुद्धे, युद्धे, प्रियचिकीर्षव ॥ २३ ॥

और–

दुर्बुद्धे	=दुर्बुद्धि	अत्र	=इस सेनामें
धार्तराष्ट्रस्य	=दुर्योधनका	समागता	=आये हैं
युद्धे	=युद्धमें	(तान्)	=उन
प्रियचिकीर्षव	=कल्याण चाहनेवाले	योत्स्यमानान्	=युद्ध करने-वालोंको
ये	=जो जो	अहम्	=मैं
एते	=ये राजालोग	अवेक्षे	=देखूंगा

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥

एवम्, उक्तः, हृषीकेशः, गुडाकेशेन, भारत,
सेनयोः, उभयोः, मध्ये, स्थापयित्वा, रथोत्तमम् ॥२४॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः, सर्वेषाम्, च, महीक्षिताम्,
उवाच, पार्थ, पश्य, एतान्, समवेतान्, कुरून्, इति ॥२५॥

संजय बोला—

भारत	= हे धृतराष्ट्र	भीष्मद्रोण-प्रमुखतः	= भीष्म और द्रोणाचार्यके सामने
गुडाकेशेन	= अर्जुनद्वारा	च	= और
एवम्	= इस प्रकार	सर्वेषाम्	= सम्पूर्ण
उक्तः	= कहे हुए	महीक्षिताम्	= राजाओंके सामने
हृषीकेशः	= महाराज श्रीकृष्ण-चन्द्रने	रथोत्तमम्	= उत्तम रथको
उभयोः	= दोनों	स्थापयित्वा	= खड़ा करके
सेनयोः	= सेनाओंके	इति	= ऐसे
मध्ये	= बीचमें		

उवाच	=कहा (कि)	समवेतान्	=इकट्ठे हुए
पार्थ	=हे पार्थ	कुरून्	=कौरवोंको
एतान्	=इन	पश्य	=देख

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः
पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्
पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥२६॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।

तत्र, अपश्यत्, स्थितान्, पार्थ, पितॄन्, अथ, पितामहान्, आचार्यान्, मातुलान्, भ्रातॄन्, पुत्रान्, पौत्रान्, सखीन्, तथा, श्वशुरान्, सुहृद, च, एव, सेनयो, उभयो, अपि ।

अथ	=उसके उपरान्त	मातुलान्	=मामोंको
पार्थ	=पृथापुत्र अर्जुनने	भ्रातॄन्	=भाइयोंको
तत्र	=उन	पुत्रान्	=पुत्रोंको
उभयो	=दोनों	पौत्रान्	=पौत्रोंको
अपि	=ही	तथा	=तथा
सेनयो	=सेनाओंमें	सखीन्	=मित्रोंको
स्थितान्	=स्थित हुए	श्वशुरान्	=ससुरोंको
पितॄन्	= { पिताके भाइयोंको	च	=और
		सुहृद	=सुहृदोंको
पितामहान्	=पितामहोंको	एव	=भी
आचार्यान्	=आचार्योंको	अपश्यत्	=देखा

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान्
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

तान्, समीक्ष्य, सः, कौन्तेयः, सर्वान्, बन्धून्, अवस्थितान् ॥
कृपया, परया, आविष्टः, विषीदन्, इदम्, अब्रवीत् ।

इस प्रकार—

तान्	= उन	कृपया	= करुणासे
अवस्थितान्	= खड़े हुए	आविष्टः	= युक्त हुआ
सर्वान्	= सम्पूर्ण	कौन्तेयः	= कुन्तीपुत्र अर्जुन
बन्धून्	= बन्धुओंको	विषीदन्	= शोक करता हुआ
समीक्ष्य	= देखकर	इदम्	= यह
सः	= वह	अब्रवीत्	= बोला
परया	= अत्यन्त		

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥

दृष्ट्वा, इमम्, स्वजनम्, कृष्ण, युयुत्सुम्, समुपस्थितम् ॥२८॥
सीदन्ति, मम, गात्राणि, मुखम्, च, परिशुष्यति,
वेपथुः, च, शरीरे, मे, रोमहर्षः, च, जायते ॥२९॥

कृष्ण	= हे कृष्ण	च	= और
इमम्	= इस	मुखम्	= मुख (भी)
युयुत्सुम्	= युद्धकी इच्छावाले	परिशुष्यति	= सूखा जाता है
समुपस्थितम्	= खड़े हुए	च	= और
स्वजनम्	= स्वजन-समुदायको	मे	= मेरे
दृष्ट्वा	= देखकर	शरीरे	= शरीरमें
मम	= मेरे	वेपथु	= कम्प
गात्राणि	= अङ्ग	च	= तथा
सीदन्ति	= शिथिल हुए जाते हैं	रोमहर्षः	= रोमाञ्च
		जायते	= होता है

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः॥

गाण्डीवम्, स्रंसते, हस्तात्, त्वक्, च, एव, परिदह्यते,
न, च, शक्नोमि, अवस्थातुम्, भ्रमति, इव, च, मे, मन ॥३०॥

तथा-

हस्तात्	= हाथसे	एव	= भी
गाण्डीवम्	= गाण्डीव धनुष	परिदह्यते	= बहुत जलती है
स्रंसते	= गिरता है	च	= तथा
च	= और	मे	= मेरा
त्वक्	= त्वचा	मन	= मन

भ्रमति इव	= { भ्रमित सा हो रहा है	अवस्थातुम्	= खड़ा रहनेको
		च	= भी
(अतः)	= इसलिये (मैं)	न शक्नोमि	= समर्थ नहीं हूं

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥

निमित्तानि, च, पश्यामि, विपरीतानि, केशव,
न, च, श्रेयः, अनुपश्यामि, हत्वा स्वजनम्, आहवे ॥३१॥

और–

केशव	= हे केशव	स्वजनम्	= अपने कुलको
निमित्तानि	= लक्षणोंको	हत्वा	= मारकर
च	= भी	श्रेयः	= कल्याण
विपरीतानि	= विपरीत (ही)	च	= भी
पश्यामि	= देखता हूँ (तथा)	न	= नहीं
आहवे	= युद्धमें	अनुपश्यामि	= देखता

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥

न, काङ्क्षे, विजयम्, कृष्ण, न, च, राज्यम्, सुखानि, च,
किम्, नः, राज्येन, गोविन्द, किम्, भोगैः, जीवितेन, वा ॥३२॥

और–

कृष्ण	= हे कृष्ण (मैं)	न	= नहीं
विजयम्	= विजयको	काङ्क्षे	= चाहता

च	=और	नः	=हमें
राज्यम्	=राज्य	राज्येन	=राज्यसे
च	=तथा	किम्	=क्या (प्रयोजन है)
सुखानि	=सुखोंको (भी)	वा	=अथवा
न	=नहीं	भोगै	=भोगोंसे (और)
(काङ्क्षे)	=चाहता	जीवितेन	=जीवनसे (भी)
गोविन्द	=हे गोविन्द	किम्	=क्या (प्रयोजन है)

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च॥

येषाम्, अर्थे, काङ्क्षितम्, न, राज्यम्, भोगा, सुखानि, च,
ते, इमे, अवस्थिता, युद्धे, प्राणान्, त्यक्त्वा, धनानि, च ॥३३॥

क्योंकि—

न	=हमें	इमे	=यह सब
येषाम्	=जिनके	धनानि	=धन
अर्थे	=लिये	च	=और
राज्यम्	=राज्य		
भोगा	=भोग	प्राणान्	={ जीवन (की आशा)को
च	=और		
सुखानि	=सुखादिक	त्यक्त्वा	=त्यागकर
काङ्क्षितम्	=इच्छित हैं	युद्धे	=युद्धमें
ते	=वे (ही)	अवस्थिता	=खड़े हैं

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाःश्वशुराःपौत्राःश्यालाःसम्बन्धिनस्तथा

आचार्या, पितर, पुत्रा, तथा, एव, च, पितामहा,
मातुला, श्वशुरा, पौत्रा, श्याला, सम्बन्धिन, तथा ॥३४॥

जो कि—

आचार्या	=गुरुजन	मातुला	=मामा
पितर	=ताऊ चाचे	श्वशुरा	=ससुर
पुत्रा	=लड़के	पौत्रा	=पोते
च	=और	श्याला	=साले
तथा	=वैसे	तथा	=तथा (और भी)
एव	=ही		
पितामहा	=दादा	सम्बन्धिन	=सम्बन्धीलोग हैं

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥

एतान्, न, हन्तुम्, इच्छामि, घ्नत, अपि, मधुसूदन,
अपि, त्रैलोक्यराज्यस्य, हेतो, किम्, नु, महीकृते ॥३५॥

इसलिये—

मधुसूदन	=हे मधुसूदन(मुझे)	त्रैलोक्य-राज्यस्य	=तीन लोकके राज्यके
घ्नत	=मारनेपर		
अपि	=भी (अथवा)	हेतो	=लिये

अपि	=भी (मैं)	इच्छामि	=चाहता (फिर)
एतान्	=इन सबको	महीकृते	= { पृथिवीके लिये (तो)
हन्तुम्	=मारना		
न	=नहीं	नु किम्	=कहना ही क्या है

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥३६॥

निहत्य, धार्तराष्ट्रान्, न, का, प्रीति, स्यात्, जनार्दन, पापम्, एव, आश्रयेत्, अस्मान्, हत्वा, एतान्, आततायिन ॥

जनार्दन	=हे जनार्दन	एतान्	=इन
धार्तराष्ट्रान्	= { धृतराष्ट्रके पुत्रोंको	आततायिन	=आततायियोंको
निहत्य	=मारकर (भी)	हत्वा	=मारकर (तो)
न	=हमें	अस्मान्	=हमें
का	=क्या	पापम्	=पाप
प्रीति	=प्रसन्नता	एव	=ही
स्यात्	=होगी	आश्रयेत्	=लगेगा

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥

तस्मात्, न, अर्हा, वयम्, हन्तुम्, धार्तराष्ट्रान्, स्वबान्धवान्, स्वजनम्, हि, कथम्, हत्वा, सुखिन, स्याम, माधव ॥३७॥

तस्मात्	=इससे	न अर्हाः	=योग्य नहीं हैं
माधव	=हे माधव	हि	=क्योंकि
स्वबान्धवान्	=अपने बान्धव	स्वजनम्	=अपने कुटुम्बको
धार्तराष्ट्रान्	={ धृतराष्ट्रके पुत्रोंको	हत्वा	=मारकर (हम)
		कथम्	=कैसे
हन्तुम्	=मारनेके लिये	सुखिन	=सुखी
वयम्	=हम	स्याम	=होंगे

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम्॥

यद्यपि, एते, न, पश्यन्ति, लोभोपहतचेतस,
कुलक्षयकृतम्, दोषम्, मित्रद्रोहे, च, पातकम् ॥३८॥

यद्यपि	=यद्यपि	च	=और
लोभोपहत-चेतस	={ लोभसे भ्रष्ट-चित्त हुए	मित्रद्रोहे	={ मित्रोंके साथ विरोध करनेमें
एते	=यह लोग	पातकम्	=पापको
कुलक्षयकृतम्	={ कुलके नाशकृत	न	=नहीं
दोषम्	=दोषको	पश्यन्ति	=देखते हैं

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन॥

कथम्, न, ज्ञेयम्, अस्माभिः, पापात्, अस्मात्, निवर्तितुम्,
कुलक्षयकृतम्, दोषम्, प्रपश्यद्भिः, जनार्दन ॥३९॥

परन्तु—

जनार्दन =हे जनार्दन
कुलक्षयकृतम् =कुलके नाश करनेसे होते हुए
दोषम् =दोषको
प्रपश्यद्भिः =जाननेवाले
अस्माभिः =हमलोगोंको
अस्मात् =इस
पापात् =पापसे
निवर्तितुम् =हटनेके लिये
कथम् =क्यों
न =नहीं
ज्ञेयम् =विचार करना चाहिये

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत॥

कुलक्षये, प्रणश्यन्ति, कुलधर्मा, सनातना, धर्मे, नष्टे, कुलम्, कृत्स्नम्, अधर्म, अभिभवति, उत ॥४०॥

क्योंकि—

कुलक्षये =कुलके नाश होनेसे
सनातना =सनातन
कुलधर्मा =कुलधर्म
प्रणश्यन्ति =नष्ट हो जाते हैं
धर्मे =धर्मके
नष्टे =नाश होनेसे
कृत्स्नम् =सपूर्ण
कुलम् =कुलको
अधर्म =पाप
उत =भी
अभिभवति =बहुत दबा लेता है

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः॥

अधर्माभिभवात्, कृष्ण, प्रदुष्यन्ति, कुलस्त्रियः,
स्त्रीषु, दुष्टासु, वार्ष्णेय, जायते, वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

तथा–

कृष्ण	= हे कृष्ण		(और)
अधर्माभिभवात्	= पापके अधिक बढ़ जानेसे	वार्ष्णेय	= हे वार्ष्णेय
		स्त्रीषु	= स्त्रियोंके
कुलस्त्रियः	= कुलकी स्त्रियां	दुष्टासु	= दूषित होनेपर
प्रदुष्यन्ति	= दूषित हो जाती हैं	वर्णसंकरः	= वर्णसंकर
		जायते	= उत्पन्न होता है

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥

संकरः, नरकाय, एव, कुलघ्नानाम्, कुलस्य, च,
पतन्ति, पितरः, हि, एषाम्, लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥४२॥

और वह–

संकरः	= वर्णसंकर	लुप्तपिण्डोदकक्रियाः	= लोप हुई पिण्ड और जलकी क्रियावाले
कुलघ्नानाम्	= कुलघातियोंको		
च	= और		
कुलस्य	= कुलको	एषाम्	= इनके
नरकाय	= नरकमें ले जानेके लिये	पितरः	= पितरलोग
		हि	= भी
एव	= ही (होता है)	पतन्ति	= गिर जाते हैं

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः॥

दोषै, एतै, कुलघ्नानाम्, वर्णसकरकारकै,
उत्साधन्ते, जातिधर्मा, कुलधर्मा, च, शाश्वता ॥ ४३ ॥

और-

एतै	=इन	शाश्वता	=सनातन
वर्णसकर-कारकै	=वर्णसकर-कारक	कुलधर्मा	=कुलधर्म
		च	=और
दोषै	=दोषोंसे	जातिधर्मा	=जातिधर्म
कुलघ्नानाम्	=कुल-घातियोंके	उत्साधन्ते	=नष्ट हो जाते हैं

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥

उत्सन्नकुलधर्माणाम्, मनुष्याणाम्, जनार्दन,
नरके, अनियतम्, वास, भवति, इति, अनुशुश्रुम ॥४४॥

तथा-

जनार्दन	=हे जनार्दन	नरके	=नरकमें
उत्सन्नकुल-धर्माणाम्	=नष्ट हुए कुलधर्मवाले	वास	=वास
		भवति	=होता है
मनुष्याणाम्	=मनुष्योंका	इति	=ऐसा
			(हमने)
अनियतम्	=अनन्त कालतक	अनुशुश्रुम	=सुना है

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥

अहो, बत, महत्पापम्, कर्तुम्, व्यवसिता, वयम्,
यत्, राज्यसुखलोभेन, हन्तुम्, स्वजनम्, उद्यताः ॥ ४५ ॥

अहो	=अहो	व्यवसिता	=तैयार हुए हैं
बत	=शोक है (कि)	यत्	=जो कि
वयम्	=इमलोग (बुद्धिमान् होकर भी)	राज्यसुखलोभेन	=राज्य और सुखके लोभसे
		स्वजनम्	=अपने कुलको
महत्पापम्	=महान् पाप	हन्तुम्	=मारनेके लिये
कर्तुम्	=करनेको	उद्यताः	=उद्यत हुए हैं

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥

यदि, माम्, अप्रतीकारम्, अशस्त्रम्, शस्त्रपाणयः,
धार्तराष्ट्राः, रणे, हन्युः, तत्, मे, क्षेमतरम्, भवेत् ॥ ४६ ॥

यदि	=यदि	रणे	=रणमें
माम्	=मुझ	हन्युः	=मारें (तो)
अशस्त्रम्	=शस्त्ररहित	तत्	=वह (मारना भी)
अप्रतीकारम्	=न सामना करनेवालेको	मे	=मेरे लिये
शस्त्रपाणयः	=शस्त्रधारी	क्षेमतरम्	=अति कल्याणकारक
धार्तराष्ट्राः	=धृतराष्ट्रके पुत्र	भवेत्	=होगा

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥

एवम्, उक्त्वा, अर्जुन, सङ्ख्ये, रथोपस्थे, उपाविशत्, विसृज्य, सशरम्, चापम्, शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥

सञ्जय बोला कि—

संख्ये	= रणभूमिमें	सशरम्	= बाणसहित
शोकसंविग्न-मानस	= { शोकसे उद्विग्न मनवाला	चापम्	= धनुषको
		विसृज्य	= त्यागकर
अर्जुन	= अर्जुन	रथोपस्थे	= { रथके पिछले भागमें
एवम्	= इस प्रकार		
उक्त्वा	= कहकर	उपाविशत्	= बैठ गया

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-
संवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा
योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके
संवादमें "अर्जुनविषादयोग" नामक
पहिला अध्याय ॥ १ ॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सञ्जय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥

तम्, तथा, कृपया, आविष्टम्, अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्,
विषीदन्तम्, इदम्, वाक्यम्, उवाच, मधुसूदन ॥ १ ॥

संजय बोला कि-

तथा	=पूर्वोक्त प्रकारसे		तम्	= उस (अर्जुन) के प्रति
कृपया	=करुणाकरके			
आविष्टम्	=व्याप्त (और)		मधुसूदन.	= भगवान् मधुसूदनने
अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्	= आंसुओंसे पूर्ण (तथा) व्याकुल नेत्रोंवाले		इदम्	=यह
			वाक्यम्	=वचन
विषीदन्तम्	=शोकयुक्त		उवाच	=कहा

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

कुतः, त्वा, कश्मलम्, इदम्, विषमे समुपस्थितम्,
अनार्यजुष्टम्, अस्वर्ग्यम्, अकीर्तिकरम्, अर्जुन ॥ २ ॥

अर्जुन	=हे अर्जुन		(यह)
त्वा	=तुमको (इस)	अनार्यजुष्टम्	=न तो श्रेष्ठ पुरुषोंसे आचरण किया गया है
विषमे	=विषमस्थलमें		
इदम्	=यह		
कश्मलम्	=अज्ञान		
कुतः	=किस हेतुसे	अस्वर्ग्यम्	=न स्वर्गको देनेवाला है
समुपस्थितम्	=प्राप्त हुआ		
(यतः)	=क्योंकि	अकीर्तिकरम्	=न कीर्तिको करनेवाला है

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥

क्लैब्यम्, मा, स्म, गमः, पार्थ, न, एतत्, त्वयि, उपपद्यते,
क्षुद्रम्, हृदयदौर्बल्यम्, त्यक्त्वा, उत्तिष्ठ, परंतप ॥३॥

इसलिये-

पार्थ	=हे अर्जुन	परंतप	=हे परंतप
क्लैब्यम्	=नपुंसकताको	क्षुद्रम्	=तुच्छ
मा स्म गमः	=मत प्राप्त हो	हृदय-दौर्बल्यम्	=हृदयकी दुर्बलताको
एतत्	=यह	त्यक्त्वा	=त्यागकर
त्वयि	=तेरेमें	उत्तिष्ठ	=युद्धके लिये खड़ा हो
न उपपद्यते	=योग्य नहीं है		

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥

कथम्, भीष्मम्, अहम्, संख्ये, द्रोणम्, च, मधुसूदन, इषुभि, प्रति, योत्स्यामि, पूजार्हौ, अरिसूदन ॥४॥

तब अर्जुन बोला कि–

मधुसूदन	=हे मधुसूदन	कथम्	=किस प्रकार
अहम्	=मैं	इषुमि	=बाणोंकरके
संख्ये	=रणभूमिमें	योत्स्यामि	=युद्ध करूंगा
भीष्मम्	=भीष्मपितामह	(यत)	=क्योंकि
च	=और	अरिसूदन	=हे अरिसूदन
द्रोणम्	=द्रोणाचार्यके	(तौ)	=वे दोनों (ही)
प्रति	=प्रति	पूजार्हौ	=पूजनीय हैं

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान्॥५॥

गुरून्, अहत्वा, हि, महानुभावान्, श्रेय, भोक्तुम्, भैक्ष्यम्, अपि, इह, लोके, हत्वा, अर्थकामान्, तु, गुरून्, इह, एव, भुञ्जीय, भोगान्, रुधिरप्रदिग्धान् ॥५॥

इसलिये इन–

महानुभावान्	=महानुभाव	गुरून्	=गुरुजनोंको
गुरून्	=गुरुजनोंको	हत्वा	=मारकर
अहत्वा	=न मारकर	(अपि)	=भी
इह	=इस	इह	=इस लोकमें
लोके	=लोकमें	रुधिरप्रदिग्धान्	=रुधिरसे सने हुए
भैक्ष्यम्	=भिक्षाका अन्न	अर्थकामान्	=अर्थ और कामरूप
अपि	=भी	भोगान्	=भोगोंको
भोक्तुम्	=भोगना	एव	=ही
श्रेय	=कल्याणकारक (समझता हूं)	तु	=तो
हि	=क्योंकि	भुञ्जीय	=भोगूंगा

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

न, च, एतत्, विद्म., कतरत्, न, गरीय, यद्वा जयेम, यदि, वा, न, जयेयु, यान्, एव, हत्वा, न, जिजीविषाम, ते, अवस्थिता, प्रमुखे, धार्तराष्ट्रा ॥ ६ ॥

और हमलोग–

एतत्	=यह	जयेयुः	=वे जीतेंगे (और)
च	=भी	यान्	=जिनको
न	=नहीं	हत्वा	=मारकर (हम)
विद्मः	=जानते (कि)	न जिजीविषामः	=जीना भी नहीं चाहते
नः	=हमारे लिये	ते	=वे
कतरत्	=क्या (करना)	एव	=ही
गरीयः	=श्रेष्ठ है	धार्तराष्ट्राः	=धृतराष्ट्रके पुत्र
यद्वा	=अथवा (यह भी नहीं जानते कि)	प्रमुखे	=हमारे सामने
जयेम	=हम जीतेंगे	अवस्थिताः	=खड़े हैं
यदि वा	=या		
नः	=हमको		

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः, पृच्छामि, त्वाम्, धर्मसंमूढचेताः, यत्, श्रेयः, स्यात्, निश्चितम्, ब्रूहि, तत्, मे, शिष्यः, ते, अहम्, शाधि, माम्, त्वाम्, प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

इसलिये—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभाव	=कायरतारूप दोषकरके उपहत हुए स्वभाववाला	(और) धर्मसंमूढचेता	=धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ (मैं)

त्वाम्	=आपको	मे	=मेरे लिये
पृच्छामि	=पूछता हूं	ब्रूहि	=कहिये (क्योंकि)
यत्	=जो (कुछ)	अहम्	=मैं
निश्चितम्	=निश्चय किया हुआ	ते	=आपका
		शिष्य	=शिष्य हूं (इसलिये)
श्रेय	=कल्याणकारक साधन	त्वाम्	=आपके
		प्रपन्नम्	=शरण हुए
स्यात्	=हो	माम्	=मेरेको
तत्	=वह	शाधि	=शिक्षा दीजिये

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥८॥

न, हि, प्रपश्यामि, मम, अपनुद्यात्, यत्, शोकम्, उच्छोषणम्, इन्द्रियाणाम्, अवाप्य, भूमौ, असपत्नम्, ऋद्धम्, राज्यम्, सुराणाम्, अपि, च, आधिपत्यम् ॥ ८ ॥

हि	=क्योंकि	च	=और
भूमौ	=भूमिमें	सुराणाम्	=देवताओंके
असपत्नम्	=निष्कण्टक	आधिपत्यम्	=स्वामीपनेको
ऋद्धम्	=धनधान्यसपन्न	अवाप्य	=प्राप्त होकर
राज्यम्	=राज्यको	अपि	=भी (मैं)

(तत्)	={ वस्तु (उपाय) / जो	मम	=मेरी
		इन्द्रियाणाम्	=इन्द्रियोंके
न	=नहीं	उच्छोषणम्	=सुखानेवाले
प्रपश्यामि	=देखता हूं	शोकम्	=शोकको
यत्	=जो कि	अपनुद्यात्	=दूर कर सके

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह॥

एवम्, उक्त्वा, हृषीकेशम्, गुडाकेशः, परंतप,
न, योत्स्ये, इति, गोविन्दम्, उक्त्वा, तूष्णीम्, बभूव, ह॥९॥

संजय बोला—

परंतप	=हे राजन्	गोविन्दम्	={ श्रीगोविन्द भगवान्को
गुडाकेशः	={ निद्राको जीतनेवाला अर्जुन	न योत्स्ये	={ युद्ध नहीं करूंगा
हृषीकेशम्	={ अन्तर्यामी श्रीकृष्णमहा- राजके प्रति	इति	=ऐसे
		ह	=स्पष्ट
		उक्त्वा	=कहकर
एवम्	=इस प्रकार	तूष्णीम्	=चुप
उक्त्वा	=कहकर (फिर)	बभूव	=हो गया

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः॥

तम्, उवाच, हृषीकेशः, प्रहसन्, इव, भारत,

सेनयो, उभयो, मध्ये, विषीदन्तम्, इदम्, वच ॥ १० ॥

उसके उपरान्त-

भारत	= हे भरतवंशी धृतराष्ट्र	तम्	= उस
हृषीकेश	= अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराजने	विषीदन्तम्	= शोकयुक्त अर्जुनको
		प्रहसन् इव	= हसते हुएसे
उभयो	= दोनों	इदम्	= यह
सेनयो	= सेनाओंके	वच	= वचन
मध्ये	= बीचमें	उवाच	= कहा

श्रीभगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥

अशोच्यान्, अन्वशोच, त्वम्, प्रज्ञावादान्, च, भाषसे, गतासून्, अगतासून्, च, न, अनुशोचन्ति, पण्डिता ॥११॥

हे अर्जुन-

त्वम्	= तू	भाषसे	= कहता है
			(परन्तु)
अशोच्यान्	= न शोक करने योग्योंके लिये	पण्डिता	= पण्डितजन
अन्वशोच	= शोक करता है		
च	= और	गतासून्	= जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिये
प्रज्ञावादान्	= पण्डितोंके(से) वचनोंको	च	= और

अगतासून्	= जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिये		(भी)
		न	= नहीं
		अनुशोचन्ति	= शोक करते हैं

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥

न, तु, एव, अहम्, जातु, न, आसम्, न, त्वम्, न, इमे, जनाधिपा, न, च, एव, न, भविष्याम, सर्वे, वयम्, अत, परम् ॥ १२ ॥

क्योंकि आत्मा नित्य है इसलिये शोक करना अयुक्त है। वास्तवमें-

न	= न	न	= नहीं
तु	= तो	(आसन्)	= थे
(एवम्)	= ऐसा	च	= और
एव	= ही (है कि)	न	= न
अहम्	= मैं	(एवम्)	= ऐसा
जातु	= किसी कालमें	एव	= ही (है कि)
न	= नहीं	अत	= इससे
आसम्	= था (अथवा)	परम्	= आगे
त्वम्	= तू	वयम्	= हम
न	= नहीं	सर्वे	= सब
(आसी)	= था (अथवा)	न	= नहीं
इमे	= यह	भविष्याम	= रहेंगे
जनाधिपा	= राजालोग		

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

देहिन, अस्मिन्, यथा, देहे, कौमारम्, यौवनम्, जरा, तथा, देहान्तरप्राप्ति, धीरः, तत्र, न, मुह्यति ॥१३॥

किन्तु—

यथा	=जैसे	तथा	=वैसे ही
देहिन	=जीवात्माकी	देहान्तर-प्राप्ति	={ अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है
अस्मिन्	=इस		
देहे	=देहमें	तत्र	=उस विषयमें
कौमारम्	=कुमार		
यौवनम्	=युवा (और)	धीरः	=धीर पुरुष
जरा	=वृद्ध अवस्था	न	=नहीं
	(होती है)	मुह्यति	=मोहित होता है—

अर्थात् जैसे कुमार, युवा और जरा अवस्थारूप स्थूल शरीरका विकार अज्ञानसे आत्मामें भासता है वैसे ही एक शरीरसे दूसरे शरीरको प्राप्त होनारूप सूक्ष्म शरीरका विकार भी अज्ञानसे ही आत्मामें भासता है इसलिये तत्त्वको जाननेवाला धीर पुरुष इस विषयमें नहीं मोहित होता है।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥

मात्रास्पर्शाः, तु, कौन्तेय, शीतोष्णसुखदुःखदाः,
आगमापायिनः, अनित्याः, तान्, तितिक्षस्व, भारत ॥१४॥

कौन्तेय = हे कुन्तीपुत्र
शीतोष्णसुखदुःखदाः = सर्दी गर्मी और सुख-दुःखको देनेवाले
मात्रास्पर्शाः = इन्द्रिय और विषयोंके संयोग
तु = तो
आगमापायिनः = क्षणभङ्गुर (और)
अनित्याः = अनित्य हैं (इसलिये)
भारत = हे भरतवंशी अर्जुन
तान् = उनको (तू)
तितिक्षस्व = सहन कर

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥

यम्, हि, न, व्यथयन्ति, एते, पुरुषम्, पुरुषर्षभ,
समदुःखसुखम्, धीरम्, सः, अमृतत्वाय, कल्पते ॥१५॥

हि = क्योंकि
पुरुषर्षभ = हे पुरुषश्रेष्ठ
समदुःखसुखम् = दुःखसुखको समान समझनेवाले
यम् = जिस
धीरम् = धीर
पुरुषम् = पुरुषको
एते = यह (इन्द्रियोंके विषय)
न व्यथयन्ति = व्याकुल नहीं कर सकते
सः = वह
अमृतत्वाय = मोक्षके लिये
कल्पते = योग्य होता है

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

न, असत, विद्यते, भाव, न, अभाव, विद्यते, सत,
उभयो, अपि, दृष्ट, अन्त, तु, अनयो, तत्त्वदर्शिभि ॥१६॥

और हे अर्जुन—

असत	= असत् (वस्तु) का तो	विद्यते	= है (इस प्रकार)
भाव	= अस्तित्व	अनयो	= इन
न	= नहीं	उभयो	= दोनोंका
विद्यते	= है	अपि	= ही
तु	= और	अन्त	= तत्त्व
सत	= सत्का	तत्त्वदर्शिभि	= ज्ञानीपुरुषों-द्वारा
अभाव	= अभाव		
न	= नहीं	दृष्ट	= देखा गया है

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥

अविनाशि, तु, तत्, विद्धि, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्,
विनाशम्, अव्ययस्य, अस्य, न, कश्चित्, कर्तुम्, अर्हति ॥१७॥

इस न्यायके अनुसार—

अविनाशि	= नाशरहित	तत्	= उसको
तु	= तो	विद्धि	= जान (तू)

येन	=जिससे	अस्य	=इस
इदम्	=यह	अव्ययस्य	=अविनाशीका
सर्वम्	=संपूर्ण (जगत्)	विनाशम्	=विनाश
		कर्तुम्	=करनेको
ततम्	=व्याप्त है (क्योंकि)	कश्चित्	=कोई भी
		न अर्हति	=समर्थ नहीं है

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥

अन्तवन्तः, इमे, देहाः, नित्यस्य, उक्ताः, शरीरिणः,
अनाशिनः, अप्रमेयस्य, तस्मात्, युध्यस्व, भारत ॥१८॥

और इस-

अनाशिनः	=नाशरहित	अन्तवन्तः	=नाशवान्
अप्रमेयस्य	=अप्रमेय	उक्ताः	=कहे गये हैं
नित्यस्य	=नित्यस्वरूप	तस्मात्	=इसलिये
शरीरिणः	=जीवात्माके	भारत	=हे भरतवंशी अर्जुन (तू)
इमे	=यह		
देहाः	=सब शरीर	युध्यस्व	=युद्ध कर

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥

यः, एनम्, वेत्ति, हन्तारम्, यः, च, एनम्, मन्यते, हतम्,
उभौ, तौ, न, विजानीतः, न, अयम्, हन्ति, न, हन्यते ॥१९॥

और—

य.	=जो	उभौ	=दोनों ही
एनम्	=इस आत्माको	न	=नहीं
हन्तारम्	=मारनेवाला	विजानीत	=जानते हैं
वेत्ति	=समझता है		(क्योंकि)
च	=तथा	अयम्	=यह आत्मा
य	=जो	न	=न
एनम्	=इसको	हन्ति	=मारता है
हतम्	=मरा		(और)
मन्यते	=मानता है	न	=न
तौ	=वे	हन्यते	=मारा जाता है

न जायते म्रियते वा कदाचिन्-
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥

न, जायते, म्रियते, वा, कदाचित्, न, अयम्, भूत्वा, भविता, वा, न, भूय, अज, नित्य, शाश्वत, अयम्, पुराण, न, हन्यते, हन्यमाने, शरीरे ॥ २० ॥

अयम्	=यह आत्मा	जायते	=जन्मता है
कदाचित्	=किसी कालमें भी	वा	=और
न	=न	न	=न

म्रियते	= मरता है
वा	= अथवा
न	= न
(अयम्)	= यह आत्मा
भूत्वा	= होकरके
भूय	= फिर
भविता	= होनेवाला है (क्योंकि)
अयम्	= यह
अज	= अजन्मा
नित्य	= नित्य
शाश्वत	= शाश्वत (और)
पुराण	= पुरातन है
शरीरे	= शरीरके
हन्यमाने	= नाश होनेपर भी (यह)
न हन्यते	= नाश नहीं होता है

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥

वेद, अविनाशिनम्, नित्यम्, यः, एनम्, अजम्, अव्ययम्, कथम्, सः, पुरुषः, पार्थ, कम्, घातयति, हन्ति, कम् ॥२१॥

पार्थ	= हे पृथापुत्र अर्जुन
यः	= जो पुरुष
एनम्	= इस आत्माको
अविनाशिनम्	= नाशरहित
नित्यम्	= नित्य
अजम्	= अजन्मा (और)
अव्ययम्	= अव्यय
वेद	= जानता है
सः	= वह
पुरुषः	= पुरुष
कथम्	= कैसे
कम्	= किसको
घातयति	= मरवाता है (और)
(कथम्)	= कैसे
कम्	= किसको
हन्ति	= मारता है

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥२२॥

वासासि, जीर्णानि, यथा, विहाय, नवानि, गृह्णाति, नर, अपराणि, तथा, शरीराणि, विहाय, जीर्णानि, अन्यानि, सयाति, नवानि, देही ॥ २२ ॥

और यदि तू कहे कि मैं तो शरीरोंके वियोगका शोक करता हू तो यह भी उचित नहीं है, क्योंकि—

यथा	=जैसे	तथा	=वैसे (ही)
नर'	=मनुष्य	देही	=जीवात्मा
जीर्णानि	=पुराने	जीर्णानि	=पुराने
वासासि	=वस्त्रोंको	शरीराणि	=शरीरोंको
विहाय	=त्यागकर	विहाय	=त्यागकर
अपराणि	=दूसरे	अन्यानि	=दूसरे
नवानि	=नये वस्त्रोंको	नवानि	=नये शरीरोंको
गृह्णाति	=ग्रहण करता है	सयाति	=प्राप्त होता है

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

न, एनम्, छिन्दन्ति, शस्त्राणि, न, एनम्, दहति, पावकः, न, च, एनम्, क्लेदयन्ति, आप, न, शोषयति, मारुत ॥२३॥

और हे अर्जुन-

एनम्	=इस आत्माको	एनम्	=इसको
शस्त्राणि	=शस्त्रादि	आप.	=जल
न	=नहीं	न	=नहीं
छिन्दन्ति	=काट सकते हैं (और)	क्लेदयन्ति	=गीला कर सकते हैं
एनम्	=इसको	च	=और
पावकः	=आग	मारुत	=वायु
न	=नहीं	न	=नहीं
दहति	=जला सकती है (तथा)	शोषयति	=सुखा सकता है

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

अच्छेद्य, अयम्, अदाह्य, अयम्, अक्लेद्य, अशोष्य, एव, च, नित्य., सर्वगत, स्थाणु, अचल, अयम्, सनातन ॥२४॥

क्योंकि-

अयम्	=यह आत्मा	अशोष्य	=अशोष्य है (तथा)
अच्छेद्य	=अच्छेद्य है		
अयम्	=यह आत्मा	अयम्	=यह आत्मा
अदाह्यः	=अदाह्य	एव	=निःसन्देह
अक्लेद्य.	=अक्लेद्य	नित्यः	=नित्य
च	=और	सर्वगत	=सर्वव्यापक

अचल	=अचल		(और)
स्थाणु	=स्थिर रहनेवाला	सनातन	=सनातन है

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥

अव्यक्त, अयम्, अचिन्त्य, अयम्, अविकार्य, अयम्, उच्यते, तस्मात्, एवम्, विदित्वा, एनम्, न, अनुशोचितुम्, अर्हसि ॥ २५ ॥

और-

अयम्	=यह आत्मा	उच्यते	=कहा जाता है
अव्यक्त	=अव्यक्त अर्थात् इन्द्रियोंका अविषय (और)	तस्मात्	=इससे (हे अर्जुन)
		एनम्	=इस आत्माको
		एवम्	=ऐसा
अयम्	=यह आत्मा	विदित्वा	=जानकर
अचिन्त्य	=अचिन्त्य अर्थात् मनका अविषय (और)	(त्वम्)	=तू
		अनुशोचितुम्	=शोक करनेको
अयम्	=यह आत्मा	न अर्हसि	=योग्य नहीं है अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है
अविकार्य	=विकाररहित अर्थात् न बदलनेवाला		

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥

अथ, च, एनम्, नित्यजातम्, नित्यम्, वा, मन्यसे, मृतम्, तथापि, त्वम्, महाबाहो, न, एवम्, शोचितुम्, अर्हसि ॥२६॥

अथ च	=और यदि	मन्यसे	=माने
त्वम्	=तू	तथापि	=तो भी
एनम्	=इसको	महाबाहो	=हे अर्जुन
नित्यजातम्	=सदा जन्मने	एवम्	=इस प्रकार
वा	=और	शोचितुम्	=शोक करनेको
नित्यम्	=सदा	न अर्हसि	=योग्य नहीं है
मृतम्	=मरनेवाला		

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

जातस्य, हि, ध्रुवः, मृत्युः, ध्रुवम्, जन्म, मृतस्य, च, तस्मात्, अपरिहार्ये, अर्थे, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि ॥२७॥

हि	=क्योंकि (ऐसा होनेसे तो)	जन्म	=जन्म (होना सिद्ध हुआ)
जातस्य	=जन्मनेवालेकी	तस्मात्	=इससे (भी)
ध्रुव	=निश्चित	त्वम्	=तू (इस)
मृत्यु	=मृत्यु	अपरिहार्ये	=बिना उपायवाले
च	=और	अर्थे	=विषयमें
मृतस्य	=मरनेवालेका	शोचितुम्	=शोक करनेको
ध्रुवम्	=निश्चित	न अर्हसि	=योग्य नहीं है

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥

अव्यक्तादीनि, भूतानि, व्यक्तमध्यानि, भारत,
अव्यक्तनिधनानि, एव, तत्र, का, परिदेवना ॥ २८ ॥

और यह भीष्मादिकोंके शरीर मायामय होनेसे अनित्य हैं इससे शरीरोंके लिये भी शोक करना उचित नहीं क्योंकि—

भारत = हे अर्जुन
भूतानि = सपूर्ण प्राणी
अव्यक्तादीनि = जन्मसे पहिले विना शरीरवाले
(और)
अव्यक्तनिधनानि एव = मरनेके बाद भी विना शरीरवाले ही हैं
(केवल)
व्यक्तमध्यानि = बीचमें ही शरीरवाले (प्रतीत होते) हैं
(फिर)
तत्र = उस विषयमें
का = क्या
परिदेवना = चिन्ता है

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥२९॥

आश्चर्यवत्, पश्यति, कश्चित्, एनम्, आश्चर्यवत्, वदति, तथा, एव, च, अन्य, आश्चर्यवत्, च, एनम्, अन्य, शृणोति, श्रुत्वा, अपि, एनम्, वेद, न, च, एव, कश्चित् ॥२९॥

और हे अर्जुन ! यह आत्मतत्त्व बड़ा गहन है इसलिये—

कश्चित्	= कोई (महापुरुष) ही	च	= और
		अन्यः	= दूसरा (कोई ही)
एनम्	= इस आत्माको	एनम्	= इस आत्माको
आश्चर्यवत्	= आश्चर्यकी ज्यों	आश्चर्यवत्	= आश्चर्यकी ज्यों
पश्यति	= देखता है	शृणोति	= सुनता है
च	= और	च	= और
तथा	= वैसे	कश्चित्	= कोई कोई
एव	= ही	श्रुत्वा	= सुनकर
अन्यः	= दूसरा कोई (महापुरुष) ही	अपि	= भी
आश्चर्यवत्	= आश्चर्यकी ज्यों (इसके तत्त्वको)	एनम्	= इस आत्माको
		न एव	= नहीं
वदति	= कहता है	वेद	= जानता

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥३०॥

देही, नित्यम्, अवध्य, अयम्, देहे, सर्वस्य, भारत,
तस्मात्, सर्वाणि, भूतानि, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि ॥३०॥

भारत	= हे अर्जुन	देही	= आत्मा
अयम्	= यह	सर्वस्य	= सबके

देहे	=शरीरमें	भूतानि	=भूतप्राणियोंके लिये
नित्यम्	=सदा ही	त्वम्	=तू
अवध्य	=अवध्य है*	शोचितुम्	=शोक करनेको
तस्मात्	=इसलिये	न अर्हसि	=योग्य नहीं है
सर्वाणि	=सम्पूर्ण		

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।

धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥

स्वधर्मम्, अपि, च, अवेक्ष्य, न, विकम्पितुम्, अर्हसि,
धर्म्यात्, हि, युद्धात्, श्रेय, अन्यत्, क्षत्रियस्य, न, विद्यते ॥३१॥

च	=और	युद्धात्	=युद्धसे बढ़कर
स्वधर्मम्	=अपने धर्मको	अन्यत्	=दूसरा (कोई)
अवेक्ष्य	=देखकर	श्रेय	=कल्याणकारक कर्तव्य
अपि	=भी (तू)	क्षत्रियस्य	=क्षत्रियके लिये
विकम्पितुम्	=भय करनेको	न	=नहीं
न अर्हसि	=योग्य नहीं है	विद्यते	=है
हि	=क्योंकि		
धर्म्यात्	=धर्मयुक्त		

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥

---

* जिसका बध नहीं किया जा सके ।

यदृच्छया, च, उपपन्नम्, स्वर्गद्वारम्, अपावृतम्,
सुखिन, क्षत्रिया, पार्थ, लभन्ते, युद्धम्, ईदृशम् ॥३२॥

और—

पार्थ	=हे पार्थ	ईदृशम्	=इस प्रकारके
यदृच्छया	=अपने आप	युद्धम्	=युद्धको
उपपन्नम्	=प्राप्त हुए	सुखिन	=भाग्यवान्
च	=और	क्षत्रिया	=क्षत्रियलोग (ही)
अपावृतम्	=खुले हुए		
स्वर्गद्वारम्	=स्वर्गके द्वाररूप	लभन्ते	=पाते हैं

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि॥

अथ, चेत्, त्वम्, इमम्, धर्म्यम्, सग्रामम्, न, करिष्यसि,
तत, स्वधर्मम्, कीर्तिम्, च, हित्वा, पापम्, अवाप्स्यसि ॥३३॥

अथ	=और	तत	=तो
चेत्	=यदि	स्वधर्मम्	=स्वधर्मको
त्वम्	=तू	च	=और
इमम्	=इस	कीर्तिम्	=कीर्तिको
धर्म्यम्	=धर्मयुक्त	हित्वा	=खोकर
सग्रामम्	=सग्रामको	पापम्	=पापको
न	=नहीं		
करिष्यसि	=करेगा	अवाप्स्यसि	=प्राप्त होगा

अकीर्तिं चापि भूतानि
कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
संभावितस्य चाकीर्ति-
र्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

अकीर्तिम्, च, अपि, भूतानि, कथयिष्यन्ति, ते, अव्ययाम्, सभावितस्य, च, अकीर्ति, मरणात्, अतिरिच्यते ॥३४॥

च	=और	च	=और (वह)
भूतानि	=सब लोग	अकीर्ति	=अपकीर्ति
ते	=तेरी	सभावितस्य=	मानतीय पुरुषके लिये
अव्ययाम्	= बहुत काल-तक रहने-वाली	मरणात्	=मरणसे (भी)
अकीर्तिम्	=अपकीर्तिको	अतिरिच्यते=	अधिक(बुरी) होती है
अपि	=भी		
कथयिष्यन्ति	=कथन करेंगे		

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥

भयात्, रणात्, उपरतम्, मस्यन्ते, त्वाम्, महारथा, येषाम्, च, त्वम्, बहुमत, भूत्वा, यास्यसि, लाघवम् ॥३५॥

च	=और	बहुमत	=बहुत माननीय
येषाम्	=जिनके	भूत्वा	=होकर
त्वम्	=तू		(भी अब)

लाघवम्	=तुच्छताको	भयात्	=भयके कारण
यास्यसि	=प्राप्त होगा (वे)	रणात्	=युद्धसे
महारथाः	=महारथीलोग	उपरतम्	=उपराम हुआ
त्वाम्	=तुझे	मंस्यन्ते	=मानेंगे

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥

अवाच्यवादान्, च, बहून्, वदिष्यन्ति, तव, अहिताः, निन्दन्तः, तव, सामर्थ्यम्, ततः, दुःखतरम्, नु, किम् ॥३६॥

च	=और	अवाच्यवादान्	=न कहने योग्य वचनोंको
तव	=तेरे		
अहिताः	=वैरीलोग	वदिष्यन्ति	=कहेंगे
तव	=तेरे	नु	=फिर
सामर्थ्यम्	=सामर्थ्यकी	ततः	=उससे
निन्दन्तः	=निन्दा करते हुए	दुःखतरम्	=अधिक दुःख
बहून्	=बहुतसे	किम्	=क्या होगा

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं
जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय
युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥

हतः, वा, प्राप्स्यसि, स्वर्गम्, जित्वा, वा, भोक्ष्यसे, महीम्, तस्मात्, उत्तिष्ठ, कौन्तेय, युद्धाय, कृतनिश्चयः ॥३७॥

इससे युद्ध करना तेरे लिये सब प्रकारसे अच्छा है क्योंकि–

वा	=या (तो)	भोक्ष्यसे	=भोगेगा
हत	=मरकर	तस्मात्	=इससे
स्वर्गम्	=स्वर्गको	कौन्तेय	=हे अर्जुन
प्राप्स्यसि	=प्राप्त होगा	युद्धाय	=युद्धके लिये
वा	=अथवा	कृतनिश्चय	=निश्चयवाला होकर
जित्वा	=जीतकर		
महीम्	=पृथिवीको	उत्तिष्ठ	=खड़ा हो

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥

सुखदुःखे, समे, कृत्वा, लाभालाभौ, जयाजयौ, तत, युद्धाय, युज्यस्व, न, एवम्, पापम्, अवाप्स्यसि ॥३८॥

यदि तुझे स्वर्ग तथा राज्यकी इच्छा न हो तो भी–

सुखदुःखे	=सुख दुःख	युद्धाय	=युद्धके लिये
लाभालाभौ	=लाभ हानि (और)	युज्यस्व	=तैयार हो
जयाजयौ	=जय पराजयको	एवम्	=इस प्रकार (युद्ध करनेसे) (तू)
समे	=समान	पापम्	=पापको
कृत्वा	=समझकर	न	=नहीं
तत	=उसके उपरान्त	अवाप्स्यसि	=प्राप्त होगा

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥

एषा, ते, अभिहिता, साङ्ख्ये, बुद्धि, योगे, तु, इमाम्, शृणु, बुद्ध्या, युक्तः, यया, पार्थ, कर्मबन्धम्, प्रहास्यसि ॥३९॥

पार्थ	=हे पार्थ		योगे	=निष्काम कर्मयोगके विषयमें
एषा	=यह			
बुद्धिः	=बुद्धि		शृणु	=सुन (कि)
ते	=तेरेलिये		यया	=जिस
साङ्ख्ये	=ज्ञानयोगके* विषयमें		बुद्ध्या	=बुद्धिसे
			युक्तः	=युक्त हुआ (तू)
अभिहिता	=कही गयी		कर्मबन्धम्	=कर्मके बन्धनको
तु	=और			
इमाम्	=इसीको (अब)		प्रहास्यसि	=अच्छी तरहसे नाश करेगा

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥

न, इह, अभिक्रमनाशः, अस्ति, प्रत्यवायः, न, विद्यते, स्वल्पम्, अपि, अस्य, धर्मस्य, त्रायते, महत, भयात् ॥४०॥

और–

इह	=इस निष्काम कर्मयोगमें		अभिक्रमनाशः	=आरम्भका अर्थात् बीजका नाश

*-† अध्याय ३ श्लोक ३ की टिप्पणीमें इसका विस्तार देखना चाहिये ।

न	=नहीं	धर्मस्य	=धर्मका
अस्ति	=है (और)	स्वल्पम्	=थोड़ा
प्रत्यवायः	= { उलटा फलरूप दोष (भी)	अपि	=भी (साधन)
न	=नहीं	महत	= { जन्ममृत्युरूप महान्
विद्यते	=होता है (इसलिये)		
		भयात्	=भयसे
अस्य	=इस (निष्काम कर्मयोगरूप)	त्रायते	= { उद्धार कर देता है

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥

व्यवसायात्मिका, बुद्धिः, एका, इह, कुरुनन्दन, बहुशाखाः, हि, अनन्ताः, च, बुद्धयः, अव्यवसायिनाम्॥४१॥

और—

कुरुनन्दन	=हे अर्जुन	च	=और
इह	=इस (कल्याणमार्गमें)	अव्यव-सायिनाम्	= { अज्ञानी (सकामी) पुरुषोंकी
व्यव-सायात्मिका	} =निश्चयात्मक	बुद्धयः	=बुद्धियां
बुद्धिः	=बुद्धि	बहुशाखाः	=बहुत भेदोंवाली
एका हि	=एक ही है	अनन्ताः	=अनन्त होती हैं

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥

याम्, इमाम्, पुष्पिताम्, वाचम्, प्रवदन्ति, अविपश्चित,
वेदवादरता, पार्थ, न, अन्यत्, अस्ति, इति, वादिन ॥४२॥
कामात्मान, स्वर्गपरा, जन्मकर्मफलप्रदाम्,
क्रियाविशेषबहुलाम्, भोगैश्वर्यगतिम्, प्रति ॥४३॥

और-

पार्थ =हे अर्जुन (जो)
कामात्मानः =सकामी पुरुष
वेदवादरताः =केवल फल-श्रुतिमें प्रीति रखनेवाले
स्वर्गपराः =स्वर्गको ही परम श्रेष्ठ माननेवाले
(इससे बढकर)
अन्यत् =और कुछ
न =नहीं
अस्ति =है
इति =ऐसे
वादिनः =कहनेवाले हैं
(वे)
अविपश्चितः =अविवेकीजन
जन्मकर्मफलप्रदाम् =जन्मरूप कर्मफलको देनेवाली
(और)
भोगैश्वर्यगतिम् प्रति =भोग तथा ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये
क्रियाविशेषबहुलाम् =बहुत-सी क्रियाओंके विस्तारवाली

इमाम्	=इस प्रकारकी		
याम्	=जिस	वाचम्	=वाणीको
पुष्पिताम्	={ दिखाऊ शोभायुक्त	प्रवदन्ति	=कहते हैं

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम्, तया, अपहृतचेतसाम्, व्यवसायात्मिका, बुद्धि, समाधौ, न, विधीयते ॥४४॥

तया	=उस वाणीद्वारा		(उन पुरुषोंके)
अपहृत-चेतसाम्	={ हरे हुए चित्तवाले	समाधौ	=अन्तःकरणमें
(तथा)		व्यव-सायात्मिका	=निश्चयात्मक
भोगैश्वर्य-प्रसक्तानाम्	={ भोग और ऐश्वर्यमें आसक्तिवाले	बुद्धि	=बुद्धि
		न	=नहीं
		विधीयते	=होती है

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥

त्रैगुण्यविषया, वेदा, निस्त्रैगुण्य, भव, अर्जुन, निर्द्वन्द्व, नित्यसत्त्वस्थ, निर्योगक्षेम, आत्मवान् ॥४५॥

और—

अर्जुन	=हे अर्जुन	वेदा	=सब वेद

			(और)
त्रैगुण्य-विषया	= तीनों गुणोंके कार्यरूप संसारको विषय करनेवाले अर्थात् प्रकाश करनेवाले हैं	निर्द्वन्द्वः	= सुखदु खादि द्वन्द्वोंसे रहित
		नित्य-सत्त्वस्थ	= नित्यवस्तुमें स्थित (तथा)
		निर्योग-क्षेम	= योग*क्षेमको† न चाहनेवाला
	(इसलिये तू)		(और)
निस्त्रैगुण्य	= असंसारी अर्थात् निष्कामी	आत्मवान्	= आत्मपरायण
		भव	= हो

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥

यावान्, अर्थ, उदपाने, सर्वत, सम्प्लुतोदके,
तावान्, सर्वेषु, वेदेषु, ब्राह्मणस्य, विजानत ॥ ४६ ॥

क्योंकि—

	(मनुष्यका)	यावान्	= जितना
सर्वत	= सब ओरसे	अर्थ.	= प्रयोजन
सम्प्लुतोदके	= परिपूर्ण जलाशयके	(अस्ति)	= रहता है
(प्राप्ते सति)	= प्राप्त होनेपर		
उदपाने	= छोटे जलाशयमें	विजानत	= अच्छी प्रकार-ब्रह्मको जानने-वाले

* अप्राप्तकी प्राप्तिका नाम योग है। † प्राप्त वस्तुकी रक्षाका नाम क्षेम है।

ब्राह्मणस्य	=ब्राह्मणका (भी)	वेदेषु	=वेदोंमें
सर्वेषु	=सब	तावान्	= { उतना ही प्रयोजन रहता है

अर्थात् जैसे बड़े जलाशयके प्राप्त हो जानेपर जलके लिये छोटे जलाशयोंकी आवश्यकता नहीं रहती वैसे ही ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होनेपर आनन्दके लिये वेदोंकी आवश्यकता नहीं रहती।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

कर्मणि, एव, अधिकारः, ते, मा, फलेषु, कदाचन,
मा, कर्मफलहेतुः, भूः, मा, ते, सङ्गः, अस्तु, अकर्मणि ॥४७॥

इससे—

ते	=तेरा		(भी)
कर्मणि	=कर्म करनेमात्रमें	मा	=मत
एव	=ही	भूः	=हो (तथा)
अधिकारः	=अधिकार होवे	ते	=तेरी
फलेषु	=फलमें	अकर्मणि	=कर्म न करनेमें (भी)
कदाचन	=कभी		
मा	=नहीं (और तू)	सङ्गः	=प्रीति
कर्मफल-हेतुः	= { कर्मोंके फलकी वासनावाला	मा	=न
		अस्तु	=होवे

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

योगस्थ, कुरु, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, धनंजय,
सिद्ध्यसिद्ध्योः, समः, भूत्वा, समत्वम्, योगः, उच्यते ॥४८॥

धनंजय	= हे धनंजय	भूत्वा	= होकर
सङ्गम्	= आसक्तिको	योगस्थः	= योगमें स्थित हुआ
त्यक्त्वा	= त्यागकर	कर्माणि	= कर्मोंको
(तथा)		कुरु	= कर (यह)
सिद्ध्यसिद्ध्योः	= सिद्धि और असिद्धिमें	समत्वम्	= समत्वभाव* ही
		योगः	= योग (नामसे)
समः	= समान बुद्धिवाला	उच्यते	= कहा जाता है

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥

दूरेण, हि, अवरम्, कर्म, बुद्धियोगात्, धनंजय,
बुद्धौ, शरणम्, अन्विच्छ, कृपणाः, फलहेतवः ॥४९॥

इस समत्वरूप—

बुद्धियोगात्	= बुद्धियोगसे		
कर्म	= (सकाम) कर्म	दूरेण	= अत्यन्त

---

* जो कुछ भी कर्म किया जाय उसके पूर्ण होने और न होनेमें तथा उसके फलमें समभाव रहनेका नाम "समत्व" है ।

इस प्रकार भगवान्‌के वचनोंको सुनकर अर्जुनने पूछा—

केशव	=हे केशव	स्थितधीः	=स्थिरबुद्धि पुरुष
समाधिस्थस्य	=समाधिमें स्थित	किम्	=कैसे
		प्रभाषेत	=बोलता है
स्थितप्रज्ञस्य	=स्थिरबुद्धि-वाले पुरुषका	किम्	=कैसे
का	=क्या	आसीत	=बैठता है
भाषा	=लक्षण है	किम्	=कैसे
	(और)	व्रजेत	=चलता है

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

प्रजहाति, यदा, कामान्, सर्वान्, पार्थ, मनोगतान्, आत्मनि, एव, आत्मना, तुष्टः, स्थितप्रज्ञः, तदा, उच्यते ॥५५॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण महाराज बोले—

पार्थ	=हे अर्जुन	तदा	=उस कालमें
यदा	=जिस कालमें	आत्मना	=आत्मासे
	(यह पुरुष)	एव	=ही
मनोगतान्	=मनमें स्थित	आत्मनि	=आत्मामें
सर्वान्	=सम्पूर्ण	तुष्टः	=संतुष्ट हुआ
कामान्	=कामनाओंको	स्थितप्रज्ञः	=स्थिरबुद्धिवाला
प्रजहाति	=त्याग देता है	उच्यते	=कहा जाता है

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

दुःखेषु, अनुद्विग्नमना, सुखेषु, विगतस्पृहः,
वीतरागभयक्रोध, स्थितधी, मुनि, उच्यते ॥५६॥

तथा-

दुःखेषु	=दुःखोंकी प्राप्तिमें	वीतराग-भयक्रोध	= { नष्ट हो गये हैं राग भय और क्रोध जिसके
अनुद्विग्न-मना	= { उद्वेगरहित है मन जिसका		
(और)		(ऐसा)	
सुखेषु	=सुखोंकी प्राप्तिमें	मुनि	=मुनि
विगतस्पृह	= { दूर हो गई है स्पृहा जिसकी	स्थितधी	=स्थिरबुद्धि
(तथा)		उच्यते	=कहा जाता है

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

य, सर्वत्र, अनभिस्नेह, तत्, तत्, प्राप्य, शुभाशुभम्,
न, अभिनन्दति, न, द्वेष्टि, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता ॥५७॥

और-

य	=जो पुरुष	तत् तत्	=उस उस
सर्वत्र	=सर्वत्र	शुभाशुभम्	= { शुभ तथा अशुभ (वस्तुओं) को
अनभिस्नेह	=स्नेहरहित हुआ		

विषया, विनिवर्तन्ते, निराहारस्य, देहिन,
रसवर्जम्, रस, अपि, अस्य, परम्, दृष्ट्वा, निवर्तते ॥५९॥

यद्यपि–

(इन्द्रियोंके द्वारा)
निराहारस्य = { विषयोंको न ग्रहण करने- वाले
देहिन = पुरुषके (भी)
(केवल)
विषया = विषय (तो)
विनिवर्तन्ते = { निवृत्त हो जाते हैं
(परन्तु)

रसवर्जम् = राग नहीं
(निवृत्त होता)
(और)
अस्य = इस पुरुषका (तो)
रस = राग
अपि = भी
परम् = परमात्माको
दृष्ट्वा = साक्षात्करके
निवर्तते = निवृत्त हो जाता है

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥

यतत, हि, अपि, कौन्तेय, पुरुषस्य, विपश्चित,
इन्द्रियाणि, प्रमाथीनि, हरन्ति, प्रसभम्, मन ॥६०॥

और–

कौन्तेय = हे अर्जुन
हि = जिससे (कि)
यतत = यत्न करते हुए
विपश्चित = बुद्धिमान्

पुरुषस्य = पुरुषके
अपि = भी
मन = मनको

विषयान् = विषयोंको
ध्यायत = चिन्तन करनेवाले
पुंस = पुरुषकी
तेषु = उन विषयोंमें
सङ्ग = आसक्ति
उपजायते = हो जाती है
(और)
सङ्गात् = आसक्तिसे
(उन विषयोंकी)
काम = कामना
संजायते = उत्पन्न होती है
(और)
कामात् = कामना (में विघ्न पड़नेसे)
क्रोध = क्रोध
अभिजायते = उत्पन्न होता है

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

क्रोधात्, भवति, संमोह, संमोहात्, स्मृतिविभ्रम, स्मृतिभ्रंशात्, बुद्धिनाश, बुद्धिनाशात्, प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

और–

क्रोधात् = क्रोधसे
संमोह = अविवेक अर्थात् मूढभाव
भवति = उत्पन्न होता है
(और)
संमोहात् = अविवेकसे
स्मृति-विभ्रम = स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है
(और)
स्मृति-भ्रंशात् = स्मृतिके भ्रमित हो जानेसे
बुद्धिनाश = बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्तिका नाश हो जाता है
(और)

बुद्धिनाशात् = बुद्धिके नाश होनेसे (यह पुरुष)	प्रणश्यति = अपने श्रेय-साधनसे गिर जाता है

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

रागद्वेषवियुक्तैः, तु, विषयान्, इन्द्रियैः, चरन्,
आत्मवश्यैः, विधेयात्मा, प्रसादम्, अधिगच्छति ॥६४॥

तु = परन्तु	इन्द्रियैः = इन्द्रियोंद्वारा
विधेयात्मा = स्वाधीन अन्तःकरण-वाला (पुरुष)	विषयान् = विषयोंको
	चरन् = भोगता हुआ
रागद्वेष-वियुक्तैः = रागद्वेषसे रहित	प्रसादम् = अन्तःकरणकी प्रसन्नता अर्थात् स्वच्छताको
आत्मवश्यैः = अपने वशमें की हुई	अधि-गच्छति = प्राप्त होता है

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

प्रसादे, सर्वदुःखानाम्, हानिः, अस्य, उपजायते,
प्रसन्नचेतसः, हि, आशु, बुद्धिः, पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

और—

	(उस)	प्रसन्नचेतस	=प्रसन्नचित्त-वाले पुरुषकी
प्रसादे	=निर्मलताके होनेपर	बुद्धि	=बुद्धि
अस्य	=इसके	आशु	=शीघ्र
सर्वदुःखानाम्	=सम्पूर्ण दुःखोंका	हि	=ही
हानि	=अभाव		
उपजायते	=हो जाता है (और उस)	पर्यवतिष्ठते	=अच्छी प्रकार स्थिर हो जाती है

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

न, अस्ति, बुद्धि, अयुक्तस्य, न, च, अयुक्तस्य, भावना,
न, च, अभावयत, शान्ति, अशान्तस्य, कुत, सुखम्॥६६॥

और हे अर्जुन—

अयुक्तस्य	=साधनरहित पुरुषके (अन्तःकरणमें)	भावना	=आस्तिकभाव भी
		न	=नहीं होता है
बुद्धि	=श्रेष्ठ बुद्धि		(और)
न	=नहीं		
अस्ति	=होती है	अभावयत	=बिना आस्तिक भाववाले पुरुषको
च	=और (उस)		
अयुक्तस्य	=अयुक्तके (अन्तःकरणमें)	शान्ति	=शान्ति
		च	=भी

न	=नहीं (होती) (फिर)	सुखम्	=सुख
अशान्तस्य	=शान्तिरहित पुरुषको	कुत	=कैसे (हो सकता है)

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥

इन्द्रियाणाम्, हि, चरताम्, यत्, मनः, अनु, विधीयते,
तत्, अस्य, हरति, प्रज्ञाम्, वायु, नावम्, इव, अम्भसि ॥६७॥

हि	=क्योंकि	यत्	=जिस (इन्द्रियके)
अम्भसि	=जलमें	अनु	=साथ
वायु	=वायु	मन	=मन
नावम्	=नावको	विधीयते	=रहता है
इव	=जैसे (हर लेता है वैसे ही विषयोंमें)	तत्	=वह (एक ही इन्द्रिय)
चरताम्	=विचरती हुई	अस्य	=इस (अयुक्त) पुरुषकी
इन्द्रियाणाम्	=इन्द्रियोंके बीचमें	प्रज्ञाम्	=बुद्धिको
		हरति	=हरण कर लेती है

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

तस्मात्, यस्य, महाबाहो, निगृहीतानि, सर्वशः,
इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेभ्य, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता ॥६८॥

तस्मात्	=इससे	निगृहीतानि=	वशमें की हुई होती है
महाबाहो	=हे महाबाहो		
यस्य	=जिस पुरुषकी	तस्य	=उसकी
इन्द्रियाणि	=इन्द्रिया		
सर्वशः	=सब प्रकार	प्रज्ञा	=बुद्धि
इन्द्रियार्थेभ्य=	इन्द्रियोंके विषयोंसे	प्रतिष्ठिता	=स्थिर होती है

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

या, निशा, सर्वभूतानाम्, तस्याम्, जागर्ति, सयमी,
यस्याम्, जाग्रति, भूतानि, सा, निशा, पश्यत, मुने ॥६९॥

और हे अर्जुन-

सर्वभूतानाम्=	सपूर्ण भूत-प्राणियोंके लिये		(भगवत्को प्राप्त हुआ)
		सयमी	=योगी पुरुष
या	=जो	जागर्ति	=जागता है
निशा	=रात्रि है		(और)
तस्याम्	=उस नित्य शुद्ध बोधस्वरूप परमानन्दमें	यस्याम्=	जिस नाशवान् क्षणभगुर सासारिक सुखमें

भूतानि	=सब भूतप्राणी	मुने:	=मुनिके लिये
जाग्रति	=जागते हैं	सा	=वह
पश्यत	=तत्त्वको जाननेवाले	निशा	=रात्रि है

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

आपूर्यमाणम्, अचलप्रतिष्ठम्, समुद्रम्, आप, प्रविशन्ति, यद्वत्, तद्वत्, कामा, यम्, प्रविशन्ति, सर्वे, स, शान्तिम्, आप्नोति, न, कामकामी ॥७०॥

और–

यद्वत्	=जैसे		न करते हुए ही)
आपूर्यमाणम्	=सब ओरसे परिपूर्ण	प्रविशन्ति	=समा जाते हैं
अचलप्रतिष्ठम्	=अचल प्रतिष्ठावाले	तद्वत्	=वैसे ही
समुद्रम्	=समुद्रके प्रति	यम्	=जिस (स्थिरबुद्धि) पुरुषके प्रति
आप:	=नाना नदियोंके जल (उसको चलायमान	सर्वे	=सम्पूर्ण
		कामा	=भोग (किसी प्रकारका विकार उत्पन्न किये बिना ही)

प्रविशन्ति	=समा जाते हैं	न	=न कि
स	=वह (पुरुष)		
शान्तिम्	=परम शान्तिको	कामकामी	= { भोगोंको चाहनेवाला
आप्नोति	=प्राप्त होता है		

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

विहाय, कामान्, य, सर्वान्, पुमान्, चरति, नि:स्पृह, निर्मम, निरहकार, स, शान्तिम्, अधिगच्छति ॥७१॥

क्योंकि—

य	=जो	निरहकार	=अहकाररहित
पुमान्	=पुरुष	नि स्पृह	= { स्पृहारहित हुआ
सर्वान्	=सपूर्ण		
कामान्	=कामनाओंको	चरति	=बर्तता है
विहाय	=त्यागकर	स	=वह
निर्मम	=ममतारहित	शान्तिम्	=शान्तिको
	(और)	अधिगच्छति	=प्राप्त होता है

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

एषा, ब्राह्मी, स्थिति, पार्थ, न, एनाम्, प्राप्य, विमुह्यति, स्थित्वा, अस्याम्, अन्तकाले, अपि, ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋच्छति ॥

पार्थ = हे अर्जुन
एषा = यह
ब्राह्मी = { ब्रह्मको प्राप्त हुए पुरुषकी
स्थितिः = स्थिति है
एनाम् = इसको
प्राप्य = प्राप्त होकर
न विमुह्यति = { मोहित नहीं होता है

(और)
अन्तकाले = अन्तकालमें
अपि = भी
अस्याम् = इस निष्ठामें
स्थित्वा = स्थित होकर
ब्रह्मनिर्वाणम् = ब्रह्मानन्दको
ऋच्छति = { प्राप्त हो जाता है

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-
संवादे सांख्ययोगो नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा
योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके
संवादमें "सांख्ययोग" नामक
दूसरा अध्याय ॥ २ ॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

अथ तृतीयोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥

ज्यायसी, चेत्, कर्मण, ते, मता, बुद्धि, जनार्दन,
तत्, किम्, कर्मणि, घोरे, माम्, नियोजयसि, केशव ॥१॥

इसपर अर्जुनने प्रश्न किया कि-

जनार्दन	=हे जनार्दन	तत्	=तो फिर
चेत्	=यदि	केशव	=हे केशव
कर्मण	=कर्मोंकी अपेक्षा	माम्	=मुझे
बुद्धि	=ज्ञान	घोरे	=भयङ्कर
ते	=आपके	कर्मणि	=कर्ममें
ज्यायसी	=श्रेष्ठ	किम्	=क्यों
मता	=मान्य है	नियोजयसि	=लगाते हैं

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥

व्यामिश्रेण, इव, वाक्येन, बुद्धिम्, मोहयसि, इव, मे,
तत्, एकम्, वद, निश्चित्य, येन, श्रेय, अहम्, आप्नुयाम् ॥२॥

तथा आप-

व्यामिश्रेण इव	=मिले हुए-से	तत्	=उस
		एकम्	=एक (बात) को
वाक्येन	=वचनसे	निश्चित्य	=निश्चयकरके
मे	=मेरी	वद	=कहिये (कि)
बुद्धिम्	=बुद्धिको	येन	=जिससे
मोहयसि इव	=मोहित-सी करते हैं	अहम्	=मैं
		श्रेयः	=कल्याणको
	(इसलिये)	आप्नुयाम्	=प्राप्त होऊं

श्रीभगवानुवाच

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥

लोके, अस्मिन्, द्विविधा, निष्ठा, पुरा, प्रोक्ता, मया, अनघ, ज्ञानयोगेन, सांख्यानाम्, कर्मयोगेन, योगिनाम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर भगवान् श्रीकृष्ण महाराज बोले-

अनघ	=हे निष्पाप (अर्जुन)	निष्ठा	=निष्ठा*
		मया	=मेरेद्वारा
अस्मिन्	=इस	पुरा	=पहिले
लोके	=लोकमें	प्रोक्ता	=कही गयी है
द्विविधा	=दो प्रकारकी	सांख्यानाम्	=ज्ञानियोंकी

*साधनकी परिपक्व अवस्था अर्थात् पराकाष्ठाका नाम 'निष्ठा' है।

ज्ञानयोगेन = ज्ञानयोगसे* (और) कर्मयोगेन = { निष्काम कर्मयोगसे† । योगिनाम् = योगियोंकी ।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥

न, कर्मणाम्, अनारम्भात्, नैष्कर्म्यम्, पुरुषः, अश्नुते,
न च, संन्यसनात्, एव, सिद्धिम्, समधिगच्छति ॥ ४ ॥

परन्तु किसी भी मार्गके अनुसार कर्मोंको स्वरूपसे त्यागनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि—

पुरुषः = मनुष्य
न = न (तो)
कर्मणाम् = कर्मोंके
अनारम्भात् = न करनेसे
नैष्कर्म्यम् = निष्कर्मताको‡
अश्नुते = प्राप्त होता है

---

* मायासे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं, ऐसे समझकर तथा मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाली सम्पूर्ण क्रियाओंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित होकर सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित रहनेका नाम 'ज्ञानयोग' है, इसीको 'संन्यास' 'सांख्ययोग' इत्यादि नामोंसे कहा है ।

† फल और आसक्तिको त्यागकर भगवत्-आज्ञानुसार केवल भगवत्-अर्थ समत्वबुद्धिसे कर्म करनेका नाम 'निष्काम कर्मयोग' है, इसीको 'समत्वयोग' 'बुद्धियोग' 'कर्मयोग' 'तदर्थकर्म' 'मदर्थकर्म' 'मत्कर्म' इत्यादि नामोंसे कहा है ।

‡ जिस अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके कर्म, अकर्म हो जाते हैं अर्थात् फल उत्पन्न नहीं कर सकते, उस अवस्थाका नाम 'निष्कर्मता' है ।

च	= और	सिद्धिम्	= भगवत्-साक्षात्कार-रूप सिद्धिको
न	= न		
संन्यसनात् एव	= केवल त्यागनेमात्रसे	समधिगच्छति	= प्राप्त होता है

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥

न, हि, कश्चित्, क्षणम्, अपि, जातु, तिष्ठति, अकर्मकृत्, कार्यते, हि, अवशः, कर्म, सर्वः, प्रकृतिजैः, गुणैः ॥५॥

तथा सर्वथा कर्मोंका स्वरूपसे त्याग हो भी नहीं सकता—

हि	= क्योंकि	हि	= निःसन्देह
कश्चित्	= कोई भी (पुरुष)	सर्वः	= सब (ही पुरुष)
जातु	= किसी कालमें	प्रकृतिजैः	= प्रकृतिसे उत्पन्न हुए
क्षणम्	= क्षणमात्र		
अपि	= भी	गुणैः	= गुणोंद्वारा
अकर्मकृत्	= बिना कर्म किये	अवशः	= परवश हुए
न	= नहीं	कर्म	= कर्म
तिष्ठति	= रहता है	कार्यते	= करते हैं

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

कर्मेन्द्रियाणि, संयम्य, यः, आस्ते, मनसा, स्मरन्, इन्द्रियार्थान्, विमूढात्मा, मिथ्याचारः, सः, उच्यते ॥६॥

इसलिये-

यः	= जो	मनसा	= मनसे
विमूढात्मा	= मूढबुद्धि पुरुष	स्मरन्	= चिन्तन करता
कर्मेन्द्रियाणि	= कर्मेन्द्रियोंको (हठसे)	आस्ते	= रहता है
		सः	= वह
संयम्य	= रोककर	मिथ्याचारः	= { मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी
इन्द्रियार्थान्	= { इन्द्रियोंके भोगोंको	उच्यते	= कहा जाता है

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥

यः, तु, इन्द्रियाणि, मनसा, नियम्य, आरभते, अर्जुन, कर्मेन्द्रियैः, कर्मयोगम्, असक्तः, सः, विशिष्यते ॥७॥

तु	= और	कर्मेन्द्रियैः	= कर्मेन्द्रियोंसे
अर्जुन	= हे अर्जुन	कर्मयोगम्	= कर्मयोगका
यः	= जो (पुरुष)		
मनसा	= मनसे	आरभते	= { आचरण करता है
इन्द्रियाणि	= इन्द्रियोंको		
नियम्य	= वशमें करके	सः	= वह
असक्तः	= अनासक्त हुआ	विशिष्यते	= श्रेष्ठ है

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥

नियतम्, कुरु, कर्म, त्वम्, कर्म, ज्यायः, हि, अकर्मणः,
शरीरयात्रा, अपि, च, ते, न, प्रसिद्ध्येत्, अकर्मणः ॥८॥

इसलिये–

त्वम्	= तू	कर्म	= कर्म करना
नियतम्	= शास्त्रविधिसे नियत किये हुए	ज्यायः	= श्रेष्ठ है
		च	= तथा
कर्म	= स्वधर्मरूप कर्मको	अकर्मणः	= कर्म न करनेसे
		ते	= तेरा
कुरु	= कर	शरीरयात्रा	= शरीरनिर्वाह
हि	= क्योंकि	अपि	= भी
अकर्मणः	= कर्म न करनेकी अपेक्षा	न	= नहीं
		प्रसिद्ध्येत्	= सिद्ध होगा

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥

यज्ञार्थात्, कर्मणः, अन्यत्र, लोकः, अयम्, कर्मबन्धनः,
तदर्थम्, कर्म, कौन्तेय, मुक्तसङ्गः, समाचर ॥९॥

और हे अर्जुन! बन्धनके भयसे भी कर्मोंका त्याग करना योग्य नहीं है क्योंकि–

यज्ञार्थात्	= यज्ञ अर्थात् विष्णुके निमित्त किये हुए	कर्मणः	= कर्मके सिवाय
		अन्यत्र	= अन्य कर्ममें (लगा हुआ ही)

अयम्	=यह	मुक्तसङ्ग	=आसक्तिसे रहित हुआ
लोक	=मनुष्य	तदर्थम्	=उस परमेश्वर-के निमित्त
कर्मबन्धन	=कर्मोंद्वारा बंधता है (इसलिये)	कर्म	=कर्मका
कौन्तेय	=हे अर्जुन	समाचर	=भली प्रकार आचरण कर

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥

सहयज्ञाः, प्रजाः, सृष्ट्वा, पुरा, उवाच, प्रजापतिः,
अनेन, प्रसविष्यध्वम्, एष, वः, अस्तु, इष्टकामधुक् ॥१०॥

तथा कर्म न करनेसे तू पापको भी प्राप्त होगा क्योंकि—

प्रजापति	=प्रजापति (ब्रह्मा) ने	प्रसविष्यध्वम्	=वृद्धिको प्राप्त होवो (और)
पुरा	=कल्पके आदिमें	एष	=यह यज्ञ
सहयज्ञा	=यज्ञसहित	व	=तुमलोगोंको
प्रजा	=प्रजाको	इष्टकामधुक्	=इच्छित कामनाओं-के देनेवाला
सृष्ट्वा	=रचकर		
उवाच	=कहा कि		
अनेन	=इस यज्ञद्वारा (तुमलोग)	अस्तु	=होवे

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

देवान्, भावयत, अनेन, ते, देवाः, भावयन्तु, व,
परस्परम्, भावयन्त., श्रेय, परम्, अवाप्स्यथ ॥११॥

तथा तुमलोग-

अनेन	=इस यज्ञद्वारा	(एवम्)	=इस प्रकार
देवान्	=देवताओंकी	परस्परम्	=आपसमें (कर्तव्य समझकर)
भावयत	=उन्नति करो (और)		
ते	=वे	भावयन्त	=उन्नति करते हुए
देवा	=देवतालोग	परम्	=परम
व॰	=तुमलोगोंकी	श्रेय	=कल्याणको
भावयन्तु	=उन्नति करें	अवाप्स्यथ	=प्राप्त होवोगे

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥

इष्टान्, भोगान्, हि, व॰, देवाः, दास्यन्ते, यज्ञभाविता,
ते, दत्तान्, अप्रदाय, एभ्य., य, भुङ्क्ते, स्तेन., एव, स ॥१२॥

तथा-

यज्ञभाविता॰	=यज्ञद्वारा बढ़ाये हुए		(बिना मांगे ही)
		इष्टान्	=प्रिय
देवा॰	=देवतालोग	भोगान्	=भोगोंको
व	=तुम्हारे लिये	दास्यन्ते	=देंगे

तै	=उनके द्वारा	हि	=ही
दत्तान्	=दिये हुए भोगोंको	भुङ्क्ते	=भोगता है
य	=जो पुरुष	स	=वह
एभ्य	=इनके लिये	एव	=निश्चय
अप्रदाय	=बिना दिये	स्तेन	=चोर है

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

यज्ञशिष्टाशिन, सन्त, मुच्यन्ते, सर्वकिल्बिषै,
भुञ्जते, ते, तु, अघम्, पापा, ये, पचन्ति, आत्मकारणात्॥१३॥

कारण कि—

यज्ञशिष्टाशिन	=यज्ञसे शेष बचे हुए अन्नको खानेवाले	पापा	=पापीलोग
		आत्म-कारणात्	=अपने (शरीर-पोषणके) लिये ही
सन्त	=श्रेष्ठ पुरुष	पचन्ति	=पकाते हैं
सर्वकिल्बिषै	=सब पापोंसे	ते	=वे
मुच्यन्ते	=छूटते हैं (और)	तु	=तो
		अघम्	=पापको ही
ये	=जो	भुञ्जते	=खाते हैं

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥१४॥

अन्नात्, भवन्ति, भूतानि, पर्जन्यात्, अन्नसम्भवः,
यज्ञात्, भवति, पर्जन्यः, यज्ञः, कर्मसमुद्भवः ॥१४॥

क्योंकि—

भूतानि	=संपूर्ण प्राणी	पर्जन्यः	=वृष्टि
अन्नात्	=अन्नसे	यज्ञात्	=यज्ञसे
भवन्ति	=उत्पन्न होते हैं (और)	भवति	=होती है (और वह)
अन्नसम्भवः	=अन्नकी उत्पत्ति	यज्ञः	=यज्ञ
पर्जन्यात्	=वृष्टिसे होती है (और)	कर्मसमुद्भवः	=कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला है

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥

कर्म, ब्रह्मोद्भवम्, विद्धि, ब्रह्म, अक्षरसमुद्भवम्,
तस्मात्, सर्वगतम्, ब्रह्म, नित्यम्, यज्ञे, प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

तथा उस—

कर्म	=कर्मको (तू)	तस्मात्	=इससे
ब्रह्मोद्भवम्	=वेदसे उत्पन्न हुआ	सर्वगतम्	=सर्वव्यापी
विद्धि	=जान (और)	ब्रह्म	=परम अक्षर (परमात्मा)
ब्रह्म	=वेद		
		नित्यम्	=सदा ही
अक्षरसमुद्भवम्	=अविनाशी (परमात्मा)से उत्पन्न हुआ है	यज्ञे	=यज्ञमें
		प्रतिष्ठितम्	=प्रतिष्ठित है

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥

एवम्, प्रवर्तितम्, चक्रम्, न, अनुवर्तयति, इह, य,
अघायु, इन्द्रियाराम, मोघम्, पार्थ, स, जीवति ॥१६॥

पार्थ	=हे पार्थ		कर्मोंको नहीं करता है)
य॰	=जो पुरुष	स	=वह
इह	=इस लोकमें	इन्द्रियाराम	={ इन्द्रियोंके सुखको भोगनेवाला
एवम्	=इस प्रकार	अघायु	=पापआयु (पुरुष)
प्रवर्तितम्	=चलाये हुए	मोघम्	=व्यर्थ ही
चक्रम्	=सृष्टिचक्रके	जीवति	=जीता है
न अनुवर्तयति	={ अनुसार नहीं बर्तता है (अर्थात् शास्त्र-अनुसार		

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥

य, तु, आत्मरति, एव, स्यात्, आत्मतृप्त, च, मानव,
आत्मनि, एव, च, सतुष्ट, तस्य, कार्यम्, न, विद्यते ॥१७॥

तु	=परन्तु	य	=जो

मानव.	=मनुष्य	एव	=ही
आत्मरति एव	= { आत्मा ही मे प्रीतिवाला	संतुष्ट	=संतुष्ट
		स्यात्	=होवे
च	=और	तस्य	=उसके लिये
आत्मतृप्त.	=आत्मा ही में तृप्त	कार्यम्	=कोई कर्तव्य
च	=तथा	न	=नहीं
आत्मनि	=आत्मामें	विद्यते	=है

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥१८॥

न, एव, तस्य, कृतेन, अर्थ , न, अकृतेन, इह, कश्चन,
न, च, अस्य, सर्वभूतेषु, कश्चित, अर्थव्यपाश्रय ॥१८॥

क्योंकि–

इह	=इस संसारमें		(प्रयोजन)
तस्य	=उस (पुरुष) का	न	=नहीं है
कृतेन	=किये जानेसे	च	=तथा
एव	=भी (कोई)	अस्य	=इसका
अर्थ	=प्रयोजन	सर्वभूतेषु	=सम्पूर्ण भूतोंमें
न	=नहीं है (और)	कश्चित्	=कुछ भी
अकृतेन	=न किये जानेसे (भी)	अर्थ-व्यपाश्रयः	= { स्वार्थका संबन्ध
कश्चन	=कोई	न	=नहीं है

तो भी उसके द्वारा केवल लोकहितार्थ कर्म किये जाते हैं।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

तस्मात्, असक्तः, सततम्, कार्यम्, कर्म, समाचर,
असक्त, हि, आचरन्, कर्म, परम्, आप्नोति, पूरुष ॥ १९॥

तस्मात्	=इससे (तू)	हि	=क्योंकि
असक्त	=अनासक्त हुआ	असक्तः	=अनासक्त
सततम्	=निरन्तर	पूरुष	=पुरुष
कार्यम्	=कर्तव्य	कर्म	=कर्म
कर्म	=कर्मका	आचरन्	=करता हुआ
समाचर	=अच्छी प्रकार आचरण कर	परम्	=परमात्माको
		आप्नोति	=प्राप्त होता है

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥२०॥

कर्मणा, एव, हि, ससिद्धिम्, आस्थिता, जनकादय,
लोकसग्रहम्, एव, अपि, सपश्यन्, कर्तुम्, अर्हसि ॥ २० ॥

इस प्रकार–

जनकादय	=जनकादि ज्ञानीजन भी	एव	=ही
		ससिद्धिम्	=परमसिद्धिको
	(आसक्तिरहित)	आस्थिता	=प्राप्त हुए हैं
कर्मणा	=कर्मद्वारा	हि	=इसलिये (तथा)

लोकसंग्रहम्	=लोकसंग्रहको	कर्तुम्	=कर्म करनेको
संपश्यन्	=देखता हुआ	एव	=ही
अपि	=भी (तू)	अर्हसि	=योग्य है

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥२१॥

यत्, यत्, आचरति, श्रेष्ठः, तत्, तत्, एव, इतरः, जनः, सः, यत्, प्रमाणम्, कुरुते, लोकः, तत्, अनुवर्तते ॥२१॥

क्योंकि—

श्रेष्ठः	=श्रेष्ठ पुरुष		(अनुसार बर्तते हैं)
यत्	=जो	सः	=वह पुरुष
यत्	=जो	यत्	=जो कुछ
आचरति	=आचरण करता है	प्रमाणम्	=प्रमाण
इतरः	=अन्य	कुरुते	=कर देता है
जनः	=पुरुष (भी)	लोकः	=लोग (भी)
तत्	=उस	तत्	=उसके
तत्	=उसके	अनुवर्तते	= { अनुसार बर्तते हैं*
एव	=ही		

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥२२॥

---

* यहाँ क्रियामें एकवचन है परन्तु लोक शब्द समुदायवाचक होनेसे भाषामें बहुवचनकी क्रिया लिखी गयी है।

न, मे, पार्थ, अस्ति, कर्तव्यम्, त्रिषु, लोकेषु, किंचन,
न, अनवाप्तम्, अवाप्तव्यम्, वर्ते, एव, च, कर्मणि ॥२२॥

इसलिये–

पार्थ	=हे अर्जुन (यद्यपि)		(किंचित् भी)
मे	=मुझे	अवाप्तव्यम्	= प्राप्त होने योग्य वस्तु
त्रिषु	=तीनों	अनवाप्तम्	=अप्राप्त
लोकेषु	=लोकोंमें	न	=नहीं है
किंचन	=कुछ भी		(तो भी मैं)
कर्तव्यम्	=कर्तव्य	कर्मणि	=कर्ममें
न	=नहीं	एव	=ही
अस्ति	=है	वर्ते	=बर्तता हूं
च	=तथा		

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

यदि, हि, अहम्, न, वर्तेयम्, जातु, कर्मणि, अतन्द्रित,
मम, वर्त्म, अनुवर्तन्ते, मनुष्या, पार्थ, सर्वश ॥ २३ ॥

हि	=क्योंकि	कर्मणि	=कर्ममें
यदि	=यदि	न	=न
अहम्	=मैं	वर्तेयम्	=वर्तूं (तो)
अतन्द्रित	=सावधान हुआ	पार्थ	=हे अर्जुन
जातु	=कदाचित्	सर्वश	=सब प्रकारसे

मनुष्या = मनुष्य
मम = मेरे
वर्त्म = वर्तावके
अनुवर्तन्ते = अनुसार वर्तते हैं अर्थात् वर्तने लग जाय

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥

उत्सीदेयु, इमे, लोका, न, कुर्याम्, कर्म, चेत्, अहम्,
सकरस्य, च, कर्ता, स्याम्, उपहन्याम्, इमा, प्रजा ॥२४॥

तथा—

चेत् = यदि
अहम् = मैं
कर्म = कर्म
न = न
कुर्याम् = करूं (तो)
इमे = यह सब
लोका = लोक
उत्सीदेयु = भ्रष्ट हो जाय
च = और (मैं)
सकरस्य = वर्णसकरका
कर्ता = करनेवाला
स्याम् = होऊं (तथा)
इमा = इस सारी
प्रजा = प्रजाको
उपहन्याम् = हनन करूं अर्थात् मारने-वाला बनूं

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥

सक्ता, कर्मणि, अविद्वांस, यथा, कुर्वन्ति, भारत,
कुर्यात्, विद्वान्, तथा, असक्त, चिकीर्षु, लोकसग्रहम् ॥२५॥

इसलिये—

भारत =हे भारत
कर्मणि =कर्ममें
सक्ताः =आसक्त हुए
अविद्वांसः =अज्ञानीजन
यथा =जैसे
कुर्वन्ति =कर्म करते हैं
तथा =वैसे ही
असक्तः =अनासक्त हुआ
विद्वान् =विद्वान् (भी)
लोकसंग्रहम् =लोकशिक्षाको
चिकीर्षुः =चाहता हुआ
कुर्यात् =कर्म करे

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्॥

न, बुद्धिभेदम्, जनयेत्, अज्ञानाम्, कर्मसङ्गिनाम्, जोषयेत्, सर्वकर्माणि, विद्वान्, युक्तः, समाचरन्॥२६॥

तथा—

विद्वान् =ज्ञानी पुरुष (को चाहिये कि)
कर्मसङ्गिनाम् =कर्मोंमें आसक्तिवाले
अज्ञानाम् =अज्ञानियोंकी
बुद्धिभेदम् =बुद्धिमें भ्रम अर्थात् कर्मोंमें अश्रद्धा
न जनयेत् =उत्पन्न न करे
(किन्तु स्वयम्)
युक्तः =परमात्माके स्वरूपमें स्थित हुआ (और)
सर्वकर्माणि =सब कर्मोंको
समाचरन् =अच्छी प्रकार करता हुआ।
(उनसे भी वैसे ही)
जोषयेत् =करावे

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

प्रकृते, क्रियमाणानि, गुणै, कर्माणि, सर्वश, अहंकारविमूढात्मा, कर्ता, अहम्, इति, मन्यते ॥२७॥

और हे अर्जुन ! वास्तवमें—

सर्वश = संपूर्ण
कर्माणि = कर्म
प्रकृतेः = प्रकृतिके
गुणै = गुणोंद्वारा
क्रियमाणानि = किये हुए हैं
(तो भी)

अहंकार-विमूढात्मा = अहंकारसे मोहित हुए अन्तःकरणवाला पुरुष
अहम् = मैं
कर्ता = कर्ता हूं
इति = ऐसे
मन्यते = मान लेता है

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥

तत्त्ववित्, तु, महाबाहो, गुणकर्मविभागयोः, गुणा, गुणेषु, वर्तन्ते, इति, मत्वा, न, सज्जते ॥२८॥

तु = परन्तु
महाबाहो = हे महाबाहो

गुणकर्म-विभागयो = गुणविभाग और कर्मविभागके*

---

* त्रिगुणात्मक मायाके कार्यरूप पांच महाभूत और मन,

तत्त्ववित्	= तत्त्वको* जाननेवाला (ज्ञानी पुरुष)	वर्तन्ते	= वर्तते हैं
		इति	= ऐसे
		मत्वा	= मानकर,
गुणा	= सम्पूर्ण गुण	न	= नहीं
गुणेषु	= गुणोंमें	सज्जते	= आसक्त होता है

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥

प्रकृते, गुणसमूढा, सज्जन्ते, गुणकर्मसु,
तान्, अकृत्स्नविद, मन्दान्, कृत्स्नवित्, न, विचालयेत् ॥२९॥

और–

प्रकृते	= प्रकृतिके	मन्दान्	= मूर्खोंको
गुण-समूढा	= गुणोंसे मोहित हुए पुरुष	कृत्स्नवित्	= अच्छी प्रकार जाननेवाला (ज्ञानी पुरुष)
गुणकर्मसु	= गुण और कर्मोंमें		
सज्जन्ते	= आसक्त होते हैं		
तान्	= उन		
अकृत्स्न-विद	= अच्छी प्रकार न समझनेवाले	न विचालयेत्	= चलायमान न करे

बुद्धि, अहंकार तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और शब्दादि पाँच विषय इन सबके समुदायका नाम 'गुणविभाग' है और इनकी परस्परकी चेष्टाओंका नाम 'कर्मविभाग' है।

* उपरोक्त 'गुणविभाग' और 'कर्मविभाग' से आत्माको पृथक् अर्थात् निर्लेप जानना ही इनका तत्त्व जानना है।

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥

मयि, सर्वाणि, कर्माणि, सन्यस्य, अध्यात्मचेतसा,
निराशी, निर्मम, भूत्वा, युध्यस्व, विगतज्वरः ॥३०॥

इसलिये हे अर्जुन तू-

अध्यात्मचेतसा	= ध्याननिष्ठ चित्तसे		(और)
सर्वाणि	= सपूर्ण	निर्मम	= ममतारहित
कर्माणि	= कर्मोंको	भूत्वा	= होकर
मयि	= मुझमें	विगतज्वरः	= सन्तापरहित (हुआ)
सन्यस्य	= समर्पणकरके		
निराशी	= आशारहित	युध्यस्व	= युद्ध कर

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥

ये, मे, मतम्, इदम्, नित्यम्, अनुतिष्ठन्ति, मानवा,
श्रद्धावन्त, अनसूयन्त, मुच्यन्ते, ते, अपि, कर्मभि ॥३१॥

और हे अर्जुन-

ये	= जो कोई		(और)
अपि	= भी	श्रद्धावन्त	= श्रद्धासे युक्त हुए
मानवाः	= मनुष्य	नित्यम्	= सदा (ही)
अनसूयन्त	= दोषबुद्धिसे रहित	मे	= मेरे
		इदम्	= इस

मतम्	=मतके	ते	=वे पुरुष
अनुतिष्ठन्ति	={ अनुसार बर्तते हैं	कर्मभि	=सपूर्ण कर्मोंसे
		मुच्यन्ते	=छूट जाते हैं

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः॥

ये, तु, एतत्, अभ्यसूयन्त, न, अनुतिष्ठन्ति, मे, मतम्, सर्वज्ञानविमूढान्, तान्, विद्धि, नष्टान्, अचेतस ॥३२॥

तु	=और	तान्	=उन
ये	=जो		
अभ्यसूयन्त	=दोषदृष्टिवाले	सर्वज्ञान-विमूढान्	={ सपूर्ण ज्ञानोंमें मोहित चित्तवालोंको
अचेतस	=मूर्खलोग		
एतत्	=इस		(तू)
मे	=मेरे		
मतम्	=मतके	नष्टान्	={ कल्याणसे भ्रष्ट हुए (ही)
न अनुतिष्ठन्ति	={ अनुसार नहीं बर्तते हैं	विद्धि	=जान

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥

सदृशम्, चेष्टते, स्वस्या, प्रकृते, ज्ञानवान्, अपि, प्रकृतिम्, यान्ति, भूतानि, निग्रह, किम्, करिष्यति ॥३३॥

क्योंकि—

भूतानि	=सभी प्राणी	स्वस्याः	=अपनी
प्रकृतिम्	=प्रकृतिको	प्रकृतेः	=प्रकृतिके
यान्ति	=प्राप्त होते हैं अर्थात् अपने स्वभावसे परवश हुए कर्म करते हैं	सदृशम्	=अनुसार
		चेष्टते	=चेष्टा करता है (फिर इसमें किसीका)
ज्ञानवान्	=ज्ञानवान्	निग्रह	=हठ
अपि	=भी	किम्	=क्या
		करिष्यति	=करेगा

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥

इन्द्रियस्य, इन्द्रियस्य, अर्थे, रागद्वेषौ, व्यवस्थितौ, तयो , न, वशम्, आगच्छेत्, तौ, हि, अस्य, परिपन्थिनौ ॥३४॥

इसलिये मनुष्यको चाहिये कि—

इन्द्रियस्य	=इन्द्रिय	वशम्	=वशमें
इन्द्रियस्य	=इन्द्रियके	न	=नहीं
अर्थे	=अर्थमें अर्थात् सभी इन्द्रियोंके भोगोंमें	आगच्छेत्	=होवे
		हि	=क्योंकि
		अस्य	=इसके
		तौ	=वे दोनों (ही)
व्यवस्थितौ	=स्थित (जो)	परिपन्थिनौ	=कल्याणमार्गमें विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं
रागद्वेषौ	=राग और द्वेष हैं		
तयो	=उन दोनोंके		

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥

श्रेयान्, स्वधर्म, विगुण, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्,
स्वधर्मे, निधनम्, श्रेय, परधर्म, भयावह ॥३५॥

इसलिये उन दोनोंको जीतकर सावधान हुआ स्वधर्मका आचरण करे क्योंकि—

स्वनुष्ठितात् = अच्छी प्रकार आचरण किये हुए	श्रेयान् = अति उत्तम है
	स्वधर्मे = अपने धर्ममें
	निधनम् = मरना (भी)
परधर्मात् = दूसरेके धर्मसे	श्रेय = कल्याणकारक है (और)
विगुण = गुणरहित	
(अपि) = भी	परधर्म = दूसरेका धर्म
स्वधर्म = अपना धर्म	भयावह = भयको देनेवाला है

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥

अथ, केन, प्रयुक्त, अयम्, पापम्, चरति, पूरुष,
अनिच्छन्, अपि, वार्ष्णेय, बलात्, इव, नियोजित ॥३६॥

इसपर अर्जुनने पूछा कि—

वार्ष्णेय = हे कृष्ण	अथ = फिर

अयम्	=यह	अपि	=भी
पूरुषः	=पुरुष	केन	=किससे
बलात्	=बलात्कारसे	प्रयुक्तः	=प्रेरा हुआ
नियोजित	=लगाये हुएके	पापम्	=पापका
इव	=सदृश		
अनिच्छन्	=न चाहता हुआ	चरति	=आचरण करता है

श्रीभगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥

कामः, एष, क्रोध, एष, रजोगुणसमुद्भव,
महाशन, महापाप्मा, विद्धि, एनम्, इह, वैरिणम् ॥३७॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण महाराज बोले हे अर्जुन—

रजोगुण-समुद्भव	= रजोगुणसे उत्पन्न हुआ		(और)
एष	=यह	महापाप्मा	=बड़ा पापी है
कामः	=काम (ही)	इह	=इस विषयमें
क्रोधः	=क्रोध है	एनम्	=इसको (ही)
एष	=यह (ही)		(तू)
महाशनः	= महा अशन अर्थात् अग्निके सदृश भोगोंसे न तृप्त होनेवाला	वैरिणम्	=वैरी
		विद्धि	=जान

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्॥

धूमेन, आव्रियते, वह्नि, यथा, आदर्श, मलेन, च,
यथा, उल्बेन, आवृत, गर्भ, तथा, तेन, इदम्, आवृतम्॥३८॥

यथा	=जैसे	यथा	=जैसे
धूमेन	=धूएसे	उल्बेन	=जेरसे
वह्नि	=अग्नि	गर्भ	=गर्भ
च	=और	आवृत	=ढका हुआ है
मलेन	=मलसे	तथा	=वैसे ही
आदर्श	=दर्पण	तेन	=उस कामके द्वारा
आव्रियते	=ढका जाता है (तथा)	इदम्	=यह (ज्ञान)
		आवृतम्	=ढका हुआ है

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥

आवृतम्, ज्ञानम्, एतेन, ज्ञानिन, नित्यवैरिणा,
कामरूपेण, कौन्तेय, दुष्पूरेण, अनलेन, च॥३९॥

च	=और	दुष्पूरेण	=न पूर्ण होनेवाले
कौन्तेय	=हे अर्जुन	कामरूपेण	=कामरूप
एतेन	=इस		
अनलेन	=अग्नि (सदृश)	ज्ञानिन	=ज्ञानियोंके

नित्यवैरिणा = नित्य वैरीसे
ज्ञानम् = ज्ञान
आवृतम् = ढका हुआ है

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥

इन्द्रियाणि, मनः, बुद्धिः, अस्य, अधिष्ठानम्, उच्यते,
एतैः, विमोहयति, एषः, ज्ञानम्, आवृत्य, देहिनम् ॥४०॥

तथा-

इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ
मनः = मन (और)
बुद्धिः = बुद्धि
अस्य = इसके
अधिष्ठानम् = वासस्थान
उच्यते = कहे जाते हैं (और)
एषः = यह (काम)
एतैः = इन (मन, बुद्धि और इन्द्रियों) द्वारा ही
ज्ञानम् = ज्ञानको
आवृत्य = आच्छादित-करके (इस)
देहिनम् = जीवात्माको
विमोहयति = मोहित करता है

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥

तस्मात्, त्वम्, इन्द्रियाणि, आदौ, नियम्य, भरतर्षभ,
पाप्मानम्, प्रजहि, हि, एनम्, ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

तस्मात्	=इसलिये	ज्ञानविज्ञान-नाशनम्	=ज्ञान और विज्ञानके नाश करने-वाले
भरतर्षभ	=हे अर्जुन		
त्वम्	=तू		
आदौ	=पहिले	एनम्	=इस (काम)
इन्द्रियाणि	=इन्द्रियोंको	पाप्मानम्	=पापीको
		हि	=निश्चयपूर्वक
नियम्य	=वशमें करके	प्रजहि	=मार

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

इन्द्रियाणि, पराणि, आहुः, इन्द्रियेभ्य, परम्, मन,
मनस, तु, परा, बुद्धि, य, बुद्धे, परत, तु, स ॥४२॥

और यदि तू समझे कि इन्द्रियोंको रोककर कामरूप वैरीको मारनेकी मेरी शक्ति नहीं है तो तेरी यह भूल है क्योंकि इस शरीरसे तो—

इन्द्रियाणि	=इन्द्रियोंको	परम्	=परे
पराणि	=परे (श्रेष्ठ बलवान् और सूक्ष्म)	मन	=मन है
		तु	=और
		मनम	=मनसे
आहु	=कहते हैं	परा	=परे
	(और)	बुद्धि	=बुद्धि है
इन्द्रियेभ्य	=इन्द्रियोंसे	तु	=और

यः	=जो	परतः	=अत्यन्त परे है
बुद्धेः	=बुद्धिसे (भी)	सः	=वह (आत्मा है)

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥

एवम्, बुद्धेः, परम्, बुद्ध्वा, संस्तभ्य, आत्मानम्, आत्मना,
जहि, शत्रुम्, महाबाहो, कामरूपम्, दुरासदम् ॥ ४३ ॥

एवम्	=इस प्रकार	आत्मानम्	=मनको
बुद्धेः	=बुद्धिसे	संस्तभ्य	=वशमें करके
परम्	=परे अर्थात् सूक्ष्म तथा सब प्रकार बलवान् और श्रेष्ठ अपने आत्माको	महाबाहो	=हे महाबाहो (अपनी शक्तिको समझकर इस)
		दुरासदम्	=दुर्जय
बुद्ध्वा	=जानकर (और)	कामरूपम्	=कामरूप
		शत्रुम्	=शत्रुको
आत्मना	=बुद्धिके द्वारा	जहि	=मार

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्म-
विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-
संवादे कर्मयोगो नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥

इमम्, विवस्वते, योगम्, प्रोक्तवान्, अहम्, अव्ययम्,
विवस्वान्, मनवे, प्राह, मनु, इक्ष्वाकवे, अब्रवीत् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त श्रीकृष्ण महाराज बोले हे अर्जुन-

अहम् =मैंने
इमम् =इस
अव्ययम् =अविनाशी
योगम् =योगको
(कल्पके आदिमें)
विवस्वते =सूर्यके प्रति
प्रोक्तवान् =कहा था (और)
विवस्वान् =सूर्यने
(अपने पुत्र)
मनवे =मनुके प्रति
प्राह =कहा (और)
मनु =मनुने
इक्ष्वाकवे =(अपने पुत्र) राजा इक्ष्वाकुके प्रति
अब्रवीत् =कहा

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥

एवम्, परम्पराप्राप्तम्, इमम्, राजर्षय, विदु,
स, कालेन, इह, महता, योग, नष्ट, परतप ॥ २ ॥

एवम्	=इस प्रकार	सः	=वह
परम्परा-प्राप्तम्	=परम्परासे प्राप्त हुए	योगः	=योग
इमम्	=इस योगको	महता	=बहुत
राजर्षयः	=राजर्षियोंने	कालेन	=कालसे
विदुः	=जाना	इह	=इस (पृथिवी) लोकमें
	(परन्तु)		
परंतप	=हे अर्जुन	नष्टः	=लोप (प्रायः) हो गया था

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥

स, एव, अयम्, मया, ते, अद्य, योगः, प्रोक्तः, पुरातनः,
भक्तः, असि, मे, सखा, च, इति, रहस्यम्, हि, एतत्, उत्तमम् ॥३॥

सः	=वह	हि	=क्योंकि (तू)
एव	=ही	मे	=मेरा
अयम्	=यह	भक्तः	=भक्त
पुरातनः	=पुरातन	च	=और
योगः	=योग	सखा	=प्रिय सखा
अद्य	=अब	असि	=है
मया	=मैंने	इति	=इसलिये
ते	=तेरे लिये		(तथा)
प्रोक्तः	=वर्णन किया है	एतत्	=यह योग

उत्तमम्	=बहुत उत्तम (और)	रहस्यम्	= रहस्य अर्थात् अति मर्मका विषय है

अर्जुन उवाच

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥

अपरम्, भवत., जन्म, परम्, जन्म, विवस्वत,
कथम्, एतत्, विजानीयाम्, त्वम्, आदौ, प्रोक्तवान्, इति ॥४॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजके वचन सुनकर अर्जुनने पूछा हे भगवन्-

भवत	=आपका	एतत्	=इस योगको (कल्पके)
जन्म	=जन्म (तो)	आदौ	=आदिमें
अपरम्	= आधुनिक अर्थात् अब हुआ है (और)	त्वम्	=आपने
विवस्वत	=सूर्यका	प्रोक्तवान्	=कहा था
जन्म	=जन्म	इति	=यह (मैं)
परम्	=बहुत पुराना है (इसलिये)	कथम्	=कैसे
		विजानीयाम्	=जानूं

श्रीभगवानुवाच

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥

बहूनि, मे, व्यतीतानि, जन्मानि, तव, च, अर्जुन,
तानि, अहम्, वेद, सर्वाणि, न, त्वम्, वेत्थ, परंतप ॥ ५ ॥

इसपर श्रीकृष्ण महाराज बोले-

अर्जुन	=हे अर्जुन	परंतप	=हे परंतप
मे	=मेरे	तानि	=उन
च	=और	सर्वाणि	=सबको
तव	=तेरे	त्वम्	=तू
बहूनि	=बहुतसे	न	=नहीं
जन्मानि	=जन्म	वेत्थ	=जानता है (और)
व्यतीतानि	=हो चुके हैं	अहम्	=मैं
	(परन्तु)	वेद	=जानता हूं

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा
भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय
संभवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

अज, अपि, सन्, अव्ययात्मा, भूतानाम्, ईश्वर, अपि, सन्,
प्रकृतिम्, स्वाम्, अधिष्ठाय संभवामि, आत्ममायया ॥ ६ ॥

तथा मेरा जन्म प्राकृत मनुष्योंके सदृश नहीं है-

	(मैं)	अपि	=भी (तथा)
अव्ययात्मा	=अविनाशी-स्वरूप	भूतानाम्	=सब भूत-प्राणियोंका
अज	=अजन्मा	ईश्वर	=ईश्वर
सन्	=होनेपर	सन्	=होनेपर

अपि	=भी	अधिष्ठाय	=आधीनकरके
स्वाम्	=अपनी	आत्ममायया	=योगमायासे
प्रकृतिम्	=प्रकृतिको	सम्भवामि	=प्रकट होता हू

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

यदा, यदा, हि, धर्मस्य, ग्लानि, भवति, भारत,
अभ्युत्थानम्, अधर्मस्य, तदा, आत्मानम्, सृजामि, अहम् ॥७॥

भारत	=हे भारत	भवति	=होती है
यदा	=जब	तदा	=तब तब
यदा	=जब	हि	=ही
धर्मस्य	=धर्मकी	अहम्	=मै
ग्लानि	=हानि (और)	आत्मानम्	=अपने रूपको
अधर्मस्य	=अधर्मकी	सृजामि	=रचता हू अर्थात् प्रकट करता हू
अभ्युत्थानम्	=वृद्धि		

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

परित्राणाय, साधूनाम्, विनाशाय, च, दुष्कृताम्,
धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि, युगे, युगे ॥ ८ ॥

क्योंकि–

साधूनाम् =साधुपुरुषोंका	विनाशाय = { नाश करनेके लिये (तथा)
परित्राणाय = { उद्धार करनेके लिये	धर्मसंस्थापनार्थाय = { धर्म स्थापन करनेके लिये
च =और	युगे =युग
दुष्कृताम् = { दूषित कर्म करनेवालोंका	युगे =युगमें
	सम्भवामि =प्रकट होता हूं

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

जन्म, कर्म, च, मे, दिव्यम्, एवम, य, वेत्ति, तत्त्वत,
त्यक्त्वा, देहम्, पुन, जन्म, न, एति, माम्, एति, स, अर्जुन॥९॥

इसलिये–

अर्जुन =हे अर्जुन	दिव्यम् = { दिव्य अर्थात् अलौकिक है
मे =मेरा (वह)	एवम् =इस प्रकार
जन्म =जन्म	य' =जो पुरुष
च =और	तत्त्वत =तत्त्वसे*
कर्म =कर्म	

---

* सर्वशक्तिमान् सच्चिदानन्दघन परमात्मा अज अविनाशी और सर्वभूतोंके परमगति तथा परम आश्रय हैं, वे केवल धर्मको स्थापन करने और ससारका उद्धार करनेके लिये ही अपनी योगमायासे सगुणरूप होकर प्रकट होते हैं इसलिये

वेत्ति	=जानता है	न	=नहीं
स	=वह	एति	=प्राप्त होता है
देहम्	=शरीरको		(किन्तु)
त्यक्त्वा	=त्यागकर	माम्	=मुझे
पुन	=फिर		(ही)
जन्म	=जन्मको	एति	=प्राप्त होता है

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥

वीतरागभयक्रोधा, मन्मया, माम्, उपाश्रिता,
बहव, ज्ञानतपसा, पूता, मद्भावम्, आगता ॥१०॥

और हे अर्जुन! पहिले भी-

वीतराग-भयक्रोधा	= राग भय और क्रोधसे रहित	उपाश्रिता	=शरण हुए
		बहव	=बहुतसे पुरुष
मन्मया	= अनन्यभावसे मेरेमें स्थिति-वाले	ज्ञानतपसा	=ज्ञानरूप तपसे
		पूता	=पवित्र हुए
		मद्भावम्	=मेरे स्वरूपको
माम्	=मेरे	आगता	=प्राप्त हो चुके हैं

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

परमेश्वरके समान सुहृद् प्रेमी और पतितपावन दूसरा कोई नहीं है ऐसा समझकर जो पुरुष परमेश्वरका अनन्य प्रेमसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ आसक्तिरहित संसारमें बर्तता है वही उनको तत्त्वसे जानता है।

ये, यथा, माम्, प्रपद्यन्ते, तान्, तथा, एव, भजामि, अहम्, मम, वर्त्म, अनुवर्तन्ते, मनुष्याः, पार्थ, सर्वशः ॥११॥

क्योंकि-

पार्थ	=हे अर्जुन	भजामि	=भजता हूं
ये	=जो		(इस रहस्यको
माम्	=मेरेको		जानकर ही)
यथा	=जैसे	मनुष्याः	=बुद्धिमान् मनुष्यगण
प्रपद्यन्ते	=भजते हैं		
अहम्	=मैं (भी)	सर्वशः	=सब प्रकारसे
तान्	=उनको	मम	=मेरे
तथा	=वैसे	वर्त्म	=मार्गके
एव	=ही	अनुवर्तन्ते	=अनुसार बर्तते हैं

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥

काङ्क्षन्तः, कर्मणाम्, सिद्धिम्, यजन्ते, इह, देवताः, क्षिप्रम्, हि, मानुषे, लोके, सिद्धिः, भवति, कर्मजा ॥१२॥

और जो मेरेको तत्त्वसे नहीं जानते हैं, वे पुरुष-

इह	=इस	देवताः	=देवताओंको
मानुषे	=मनुष्य	यजन्ते	=पूजते हैं
लोके	=लोकमें		(और उनके)
कर्मणाम्	=कर्मोंके		
सिद्धिम्	=फलको	कर्मजा	=कर्मोंसे उत्पन्न हुई
काङ्क्षन्तः	=चाहते हुए		

सिद्धि	=सिद्धि (भी)	हि	=ही
क्षिप्रम्	=शीघ्र	भवति	=होती है

परन्तु उनको मेरी प्राप्ति नहीं होती इसलिये तू मेरेको ही सब प्रकारसे भज।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥

चातुर्वर्ण्यम्, मया, सृष्टम्, गुणकर्मविभागशः, तस्य, कर्तारम्, अपि, माम्, विद्धि, अकर्तारम्, अव्ययम्॥१३॥

तथा हे अर्जुन-

गुणकर्मविभागशः	=गुण और कर्मोंके विभागसे	तस्य	=उनके
		कर्तारम्	=कर्ताको
		अपि	=भी
चातुर्वर्ण्यम्	=ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र	माम्	=मुझ
		अव्ययम्	=अविनाशी परमेश्वरको (तू)
मया	=मेरेद्वारा	अकर्तारम्	=अकर्ता (ही)
सृष्टम्	=रचे गये हैं	विद्धि	=जान

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥

न, माम्, कर्माणि, लिम्पन्ति, न, मे, कर्मफले, स्पृहा, इति, माम्, यः, अभिजानाति, कर्मभिः, न, सः, बध्यते॥१४॥

क्योंकि—

कर्मफले	=कर्मोंके फलमें	इति	=इस प्रकार
मे	=मेरी	य	=जो
स्पृहा	=स्पृहा	माम्	=मेरेको
न	=नहीं है (इसलिये)	अभिजानाति	=तत्त्वसे जानता है
माम्	=मेरेको	स	=वह (भी)
कर्माणि	=कर्म	कर्मभि	=कर्मोंसे
न लिम्पन्ति	=लिपायमान नहीं करते	न	=नहीं
		बध्यते	=बधता है

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥

एवम्, ज्ञात्वा, कृतम्, कर्म, पूर्वैं, अपि, मुमुक्षुभि,
कुरु, कर्म, एव, तस्मात्, त्वम्, पूर्वैं, पूर्वतरम, कृतम् ॥१५॥

तथा—

पूर्वैं	=पहिले होनेवाले	तस्मात्	=इससे
मुमुक्षुभि	=मुमुक्षु पुरुषों-द्वारा	त्वम्	=तू (भी)
		पूर्वैं	=पूर्वजोंद्वारा
अपि	=भी	पूर्वतरम् कृतम्	=सदासे किये हुए
एवम्	=इस प्रकार		
ज्ञात्वा	=जानकर (ही)	कर्म	=कर्मको
कर्म	=कर्म	एव	=ही
कृतम्	=किया गया है	कुरु	=कर

किं कर्म किमकर्मेति
कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि
यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१६॥

किम्, कर्म, किम्, अकर्म, इति, कवय, अपि, अत्र, मोहिता,
तत्, ते, कर्म, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात् ॥१६॥

परन्तु-

कर्म	=कर्म	कर्म	=कर्म अर्थात् कर्मोंका तत्त्व
किम्	=क्या है (और)		
अकर्म	=अकर्म	ते	=तेरे लिये
किम्	=क्या है		
इति	=ऐसे	प्रवक्ष्यामि	=अच्छी प्रकार कहूंगा (कि)
अत्र	=इस विषयमें	यत्	=जिसको
कवय	=बुद्धिमान् पुरुष	ज्ञात्वा	=जानकर (तू)
अपि	=भी		
मोहिता	=मोहित हैं (इसलिये मैं)	अशुभात्	=अशुभ अर्थात् संसारबन्धनसे
तत्	=वह	मोक्ष्यसे	=छूट जायगा

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥

कर्मण, हि, अपि, बोद्धव्यम्, बोद्धव्यम्, च, विकर्मण,
अकर्मण, च, बोद्धव्यम्, गहना, कर्मण, गति ॥१७॥

कर्मण	=कर्मका स्वरूप	विकर्मण	=निषिद्ध कर्मका स्वरूप (भी)
अपि	=भी	बोद्धव्यम्	=जानना चाहिये
बोद्धव्यम्	=जानना चाहिये	हि	=क्योंकि
च	=और	कर्मण	=कर्मकी
अकर्मण	=अकर्मका स्वरूप (भी)	गति	=गति
बोद्धव्यम्	=जानना चाहिये	गहना	=गहन है
च	=तथा		

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥

कर्मणि, अकर्म, य , पश्येत्, अकर्मणि, च, कर्म, य ,
स , बुद्धिमान्, मनुष्येषु, स , युक्त , कृत्स्नकर्मकृत् ॥१८॥

य	=जो पुरुष	य	=जो पुरुष
कर्मणि	=कर्ममें अर्थात् अहंकाररहित की हुई संपूर्ण चेष्टाओंमें	अकर्मणि	=अकर्म अर्थात् अज्ञानी पुरुष-द्वारा किये हुए संपूर्ण क्रियाओंके त्यागमें (भी)
अकर्म	=अकर्म अर्थात् वास्तवमें उनका न होनापना	कर्म	=कर्मको अर्थात् त्यागरूप क्रियाको (देखे)
पश्येत्	=देखे		
च	=और	स	=वह पुरुष

मनुष्येषु	= मनुष्योंमें	युक्त	= योगी
बुद्धिमान्	= बुद्धिमान् है (और)	कृत्स्न-कर्मकृत्	= सपूर्ण कर्मोंका करनेवाला है
सः	= वह		

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥

यस्य, सर्वे, समारम्भा, कामसकल्पवर्जिता,
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम्, तम्, आहु, पण्डितम्, बुधा ॥ १९ ॥

और हे अर्जुन-

यस्य	= जिसके	ज्ञानाग्नि-दग्ध-कर्माणम्	= ज्ञानरूप अग्निद्वारा भस्म हुए कर्मोंवाले पुरुषको
सर्वे	= सपूर्ण	बुधा	= ज्ञानीजन (भी)
समारम्भा	= कार्य	पण्डितम्	= पण्डित
कामसकल्प-वर्जिता	= कामना और सकल्पसे रहित हैं (ऐसे)	आहु	= कहते हैं
तम्	= उस		

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ॥

त्यक्त्वा, कर्मफलासङ्गम्, नित्यतृप्त, निराश्रय,
कर्मणि, अभिप्रवृत्त, अपि, न, एव, किंचित्, करोति, स ॥ २० ॥

और जो पुरुष-

निराश्रय	= सासारिक आश्रयसे रहित	नित्य-तृप्त	= सदा परमानन्द परमात्मामें तृप्त है

स	=वह	अभिप्रवृत्तः	=अच्छी प्रकार वर्तता हुआ
कर्म-फलासङ्गम्	=कर्मोंके फल और सङ्ग अर्थात् कर्तृत्व अभिमानको	अपि	=भी
		किंचित्	=कुछ
		एव	=भी
त्यक्त्वा	=त्यागकर	न	=नहीं
कर्मणि	=कर्ममें	करोति	=करता है

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥

निराशीः, यतचित्तात्मा, त्यक्तसर्वपरिग्रहः,
शारीरम्, केवलम्, कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम्॥२१॥

और-

यत-चित्तात्मा	=जीत लिया है अन्तःकरण और शरीर जिसने (तथा)	केवलम्	=केवल
		शारीरम्	=शरीरसम्बन्धी
		कर्म	=कर्मको
त्यक्तसर्व-परिग्रह	=त्याग दी है सम्पूर्ण भोगोंकी सामग्री जिसने (ऐसा)	कुर्वन्	=करता हुआ (भी)
		किल्बिषम्	=पापको
निराशी	=आशारहित पुरुष	न	=नहीं
		आप्नोति	=प्राप्त होता है

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥

यदृच्छालाभसंतुष्ट, द्वन्द्वातीत, विमत्सरः,
समः, सिद्धौ, असिद्धौ, च, कृत्वा, अपि, न, निबध्यते ॥ २२ ॥

और—

यदृच्छालाभसंतुष्ट = अपने आप जो कुछ आ प्राप्त हो उसमें ही संतुष्ट रहनेवाला (और)
द्वन्द्वातीत = हर्षशोकादि द्वन्द्वोंसे अतीत हुआ (तथा)
विमत्सरः = मत्सरता अर्थात् ईर्षासे रहित
सिद्धौ = सिद्धि
च = और
असिद्धौ = असिद्धिमें
समः = समत्वभाववाला पुरुष
(कर्मोंको)
कृत्वा = करके
अपि = भी
न = नहीं
निबध्यते = बंधता है

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥

गतसङ्गस्य, मुक्तस्य, ज्ञानावस्थितचेतसः,
यज्ञाय, आचरतः, कर्म, समग्रम्, प्रविलीयते ॥ २३ ॥

क्योंकि—

गतसङ्गस्य = आसक्तिसे रहित
ज्ञानावस्थितचेतस = ज्ञानमें स्थित हुए चित्तवाले
यज्ञाय = यज्ञके लिये
आचरत: = आचरण करते हुए
मुक्तस्य = मुक्त पुरुषके
समग्रम् = संपूर्ण
कर्म = कर्म
प्रविलीयते = नष्ट हो जाते हैं।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

ब्रह्म, अर्पणम्, ब्रह्म, हवि:, ब्रह्माग्नौ, ब्रह्मणा, हुतम्,
ब्रह्म, एव, तेन, गन्तव्यम्, ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥२४॥

उन यज्ञके लिये आचरण करनेवाले पुरुषोंमेंसे कोई तो इस भावसे यज्ञ करते हैं कि—

अर्पणम् = अर्पण अर्थात् स्रुवादिक (भी)
ब्रह्म = ब्रह्म है (और)
हवि = हवि अर्थात् हवन करने योग्य द्रव्य (भी)
ब्रह्म = ब्रह्म है (और)
ब्रह्माग्नौ = ब्रह्मरूप अग्निमें
ब्रह्मणा = ब्रह्मरूप कर्ताके द्वारा
(जो)
हुतम् = हवन किया गया है
(वह भी ब्रह्म ही है इसलिये)
ब्रह्मकर्मसमाधिना = ब्रह्मरूप कर्ममें समाधिस्थ हुए
तेन = उस पुरुषद्वारा
(जो)
गन्तव्यम् = प्राप्त होने योग्य है

ब्रह्म	= (वह भी) ब्रह्म	एव	= ही है

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥२५॥

दैवम्, एव, अपरे, यज्ञम्, योगिन, पर्युपासते, ब्रह्माग्नौ, अपरे, यज्ञम्, यज्ञेन, एव, उपजुह्वति ॥२५॥

और—

अपरे	= दूसरे	अपरे	= दूसरे (ज्ञानीजन)
योगिन	= योगीजन		
दैवम्	= देवताओंके पूजनरूप	ब्रह्माग्नौ	= परब्रह्म परमात्मारूप अग्निमें
यज्ञम्	= यज्ञको		
एव	= ही	यज्ञेन	= यज्ञके द्वारा
पर्युपासते	= अच्छी प्रकार उपासते हैं अर्थात् करते हैं (और)	एव	= ही
		यज्ञम्	= यज्ञको
		उपजुह्वति	= हवन* करते हैं

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥

श्रोत्रादीनि, इन्द्रियाणि, अन्ये, संयमाग्निषु, जुह्वति, शब्दादीन्, विषयान्, अन्ये, इन्द्रियाग्निषु, जुह्वति ॥२६॥

* परब्रह्म परमात्मामें ज्ञानद्वारा एकीभावसे स्थित होना ही ब्रह्मरूप अग्निमें यज्ञके द्वारा यज्ञको हवन करना है।

और—

अन्ये	= अन्य योगीजन	अन्ये	= और दूसरे योगीलोग
श्रोत्रादीनि	= श्रोत्रादिक	शब्दादीन्	= शब्दादिक
इन्द्रियाणि	= सब इन्द्रियोंको	विषयान्	= विषयोंको
संयमाग्निषु	= संयम अर्थात् स्वाधीनतारूप अग्निमें	इन्द्रियाग्निषु	= इन्द्रियरूप अग्निमें
जुह्वति	= हवन करते हैं अर्थात् इन्द्रियोंको विषयोंसे रोककर अपने वशमें कर लेते हैं	जुह्वति	= हवन करते हैं अर्थात् रागद्वेषरहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंको ग्रहण करते हुए भी भस्मरूप करते हैं

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते॥

सर्वाणि, इन्द्रियकर्माणि, प्राणकर्माणि, च, अपरे, आत्मसंयमयोगाग्नौ, जुह्वति, ज्ञानदीपिते ॥२७॥

और—

अपरे	= दूसरे योगीजन	प्राणकर्माणि	= प्राणोंके व्यापारको
सर्वाणि	= सम्पूर्ण		
इन्द्रियकर्माणि	= इन्द्रियोंकी चेष्टाओंको		
च	= तथा	ज्ञानदीपिते	= ज्ञानसे प्रकाशित हुई

आत्मसंयम-योगाग्नौ	= परमात्मामें स्थितिरूप योगाग्निमें	जुह्वति	= हवन करते हैं*

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥

द्रव्ययज्ञा, तपोयज्ञा, योगयज्ञा, तथा, अपरे,
स्वाध्यायज्ञानयज्ञा, च, यतय, संशितव्रता ॥२८॥

और-

अपरे	= दूसरे (कई पुरुष)	संशित-व्रता	= अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतोंसे युक्त
द्रव्य-यज्ञा	= ईश्वर अर्पण बुद्धिसे लोकसेवामें द्रव्य लगानेवाले हैं	यतय	= यत्नशील पुरुष
तथा	= वैसे ही (कई पुरुष)		
तपो-यज्ञा	= स्वधर्मपालनरूप तपयज्ञको करने-वाले हैं	स्वाध्याय-ज्ञानयज्ञा	= भगवान्के नामका जप तथा भगवत्-प्राप्तिविषयक शास्त्रोंका अध्ययनरूप ज्ञानयज्ञके करनेवाले हैं
	(और कई)		
योग-यज्ञा	= अष्टाङ्ग योगरूप यज्ञको करनेवाले हैं		
च	= और (दूसरे)		

---

* सच्चिदानन्दघन परमात्माके सिवाय अन्य किसीका भी न चिन्तन करना ही उन सबका हवन करना है ।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥

अपाने, जुह्वति, प्राणम्, प्राणे, अपानम्, तथा, अपरे,
प्राणापानगती, रुद्ध्वा, प्राणायामपरायणा ॥२९॥

और दूसरे योगीजन-

अपाने	=अपानवायुमें	अपरे	=अन्य योगीजन
प्राणम्	=प्राणवायुको	प्राणापान-गती	=प्राण और अपानकी गतिको
जुह्वति	=हवन करते हैं		
तथा	=वैसे ही (अन्य योगीजन)	रुद्ध्वा	=रोककर
प्राणे	=प्राणवायुमें	प्राणायाम-परायणा	=प्राणायामके परायण (होते हैं)
अपानम्	=अपानवायुको		
(जुह्वति)	=हवन करते हैं (तथा)		

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः॥

अपरे, नियताहारा, प्राणान्, प्राणेषु, जुह्वति,
सर्वे, अपि, एते, यज्ञविद, यज्ञक्षपितकल्मषा ॥३०॥

और-

अपरे	=दूसरे	नियताहारा	=नियमित आहार*करने-वाले योगीजन

* गीता अध्याय ६ श्लोक १७ में देखना चाहिये।

प्राणान्	=प्राणोंको	एते	=यह
प्राणेषु	=प्राणोंमें ही	सर्वे	=सब
जुह्वति	=हवन करते हैं (इस प्रकार)	अपि	=ही (पुरुष)
यज्ञक्षपित-कल्मषा	=यज्ञोंद्वारा नाश हो गया है पाप जिनका (ऐसे)	यज्ञविद	=यज्ञोंको जानने-वाले हैं

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥

यज्ञशिष्टामृतभुज, यान्ति, ब्रह्म, सनातनम्, न, अयम्, लोक, अस्ति, अयज्ञस्य, कुत, अन्य, कुरुसत्तम ॥३१॥

और–

कुरुसत्तम	=हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन		(और)
		अयज्ञस्य	=यज्ञरहित पुरुषको
यज्ञ-शिष्टामृत-भुज	=यज्ञोंके परिणामरूप ज्ञानामृतको भोगनेवाले योगीजन	अयम्	=यह
		लोक	=मनुष्यलोक (भी सुखदायक)
		न	=नहीं
		अस्ति	=है (फिर)
सनातनम्	=सनातन	अन्य	=परलोक
ब्रह्म	=परब्रह्म परमात्माको	कुत	=कैसे (सुखदायक होगा)
यान्ति	=प्राप्त होते हैं		

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥

एवम्, बहुविधा, यज्ञाः, वितता, ब्रह्मणः, मुखे,
कर्मजान्, विद्धि, तान्, सर्वान्, एवम्, ज्ञात्वा, विमोक्ष्यसे ॥३२॥

एवम्	=ऐसे	कर्मजान्	=शरीर मन और इन्द्रियोंकी क्रियाद्वारा ही उत्पन्न होनेवाले
बहुविधा	=बहुत प्रकारके	विद्धि	=जान
यज्ञा	=यज्ञ	एवम्	=इस प्रकार (तत्त्वसे)
ब्रह्मण	=वेदकी	ज्ञात्वा	=जानकर (निष्काम कर्मयोगद्वारा)
मुखे	=वाणीमें	विमोक्ष्यसे	=संसारबन्धनसे मुक्त हो जायगा
वितता	=विस्तार किये गये हैं		
तान्	=उन		
सर्वान्	=सबको		

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥

श्रेयान्, द्रव्यमयात्, यज्ञात्, ज्ञानयज्ञ, परंतप,
सर्वम्, कर्म, अखिलम्, पार्थ, ज्ञाने, परिसमाप्यते ॥३३॥

और-

परंतप = हे अर्जुन
द्रव्यमयात् = सांसारिक वस्तुओंसे सिद्ध होनेवाले
यज्ञात् = यज्ञसे
ज्ञानयज्ञः = ज्ञानरूप यज्ञ (सब प्रकार)
श्रेयान् = श्रेष्ठ है (क्योंकि)

पार्थ = हे पार्थ
सर्वम् = संपूर्ण
अखिलम् = यावन्मात्र
कर्म = कर्म
ज्ञाने = ज्ञानमें
परिसमाप्यते = शेष होते हैं अर्थात् ज्ञान उनकी पराकाष्ठा है

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

तत्, विद्धि, प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन, सेवया,
उपदेक्ष्यन्ति, ते, ज्ञानम्, ज्ञानिनः, तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥

इसलिये तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी पुरुषोंसे-

प्रणिपातेन = भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम (तथा)
सेवया = सेवा (और)
परिप्रश्नेन = निष्कपट भावसे किये हुए प्रश्नद्वारा
तत् = उस ज्ञानको
विद्धि = जान

ते = वे
तत्त्वदर्शिनः = मर्मको जाननेवाले
ज्ञानिनः = ज्ञानीजन (तुझे उस)
ज्ञानम् = ज्ञानका
उपदेक्ष्यन्ति = उपदेश करेंगे

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥

यत्, ज्ञात्वा, न, पुनः, मोहम्, एवम्, यास्यसि, पाण्डव,
येन, भूतानि, अशेषेण, द्रक्ष्यसि, आत्मनि, अथो, मयि ॥३५॥

कि—

यत्	=जिसको	आत्मनि	=अपने अन्तर्गत समष्टिबुद्धिके आधार
ज्ञात्वा	=जानकर (तू)		
पुनः	=फिर	अशेषेण	=संपूर्ण
एवम्	=इस प्रकार	भूतानि	=भूतोंको
मोहम्	=मोहको		
न	=नहीं	द्रक्ष्यसि	=देखेगा* (और)
यास्यसि	=प्राप्त होगा (और)	अथो	=उसके उपरान्त
पाण्डव	=हे अर्जुन		
येन	=जिस ज्ञानके द्वारा (सर्वव्यापी अनन्त चेतन-रूप हुआ)	मयि	=मेरेमें अर्थात् सच्चिदानन्द-स्वरूपमें एकी-भाव हुआ सच्चिदानन्दमय ही देखेगा †

* गीता अध्याय ६ श्लोक २९ में देखना चाहिये ।

† गीता अध्याय ६ श्लोक ३० में देखना चाहिये ।

ज्ञानाग्निः	=ज्ञानरूप अग्नि	भस्मसात्	=भस्ममय
सर्वकर्माणि	=संपूर्ण कर्मोंको	कुरुते	=कर देता है

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥

न, हि, ज्ञानेन, सदृशम्, पवित्रम्, इह, विद्यते, तत्, स्वयम्, योगसंसिद्धः, कालेन, आत्मनि, विन्दति ॥३८॥

इसलिये–

इह	=इस संसारमें	कालेन	=कितनेक कालसे
ज्ञानेन	=ज्ञानके	स्वयम्	=अपने आप
सदृशम्	=समान	योगसंसिद्धः	=समत्वबुद्धिरूप योगके द्वारा अच्छी प्रकार शुद्धान्तःकरण हुआ पुरुष
पवित्रम्	=पवित्र करनेवाला		
हि	=निःसन्देह (कुछ भी)		
न	=नहीं		
विद्यते	=है	आत्मनि	=आत्मामें
तत्	=उस ज्ञानको	विन्दति	=अनुभव करता है

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं
तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्ति-
मचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥

श्रद्धावान्, लभते, ज्ञानम्, तत्पर, संयतेन्द्रिय,
ज्ञानम्, लब्ध्वा, पराम्, शान्तिम्, अचिरेण, अधिगच्छति ॥३९॥

और हे अर्जुन–

संयतेन्द्रिय	=जितेन्द्रिय	अचिरेण	=तत्क्षण (भगवत्-प्राप्तिरूप)
तत्परः	=तत्पर हुआ		
श्रद्धावान्	=श्रद्धावान् पुरुष		
ज्ञानम्	=ज्ञानको	पराम्	=परम
लभते	=प्राप्त होता है	शान्तिम्	=शान्तिको
ज्ञानम्	=ज्ञानको	अधिगच्छति	={ प्राप्त हो जाता है
लब्ध्वा	=प्राप्त होकर		

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥

अज्ञ, च, अश्रद्दधान, च, संशयात्मा, विनश्यति,
न, अयम्, लोक, अस्ति, न, पर, न, सुखम्, संशयात्मन ॥४०॥

और हे अर्जुन–

अज्ञ	={ भगवत्-विषयको न जाननेवाला	विनश्यति	={ परमार्थसे भ्रष्ट हो जाता है
च	=तथा		(उनमें भी)
अश्रद्दधान	=श्रद्धारहित		
च	=और		
संशयात्मा	={ संशययुक्त पुरुष	संशयात्मनः	={ संशययुक्त पुरुषके लिये तो

न	=न	परः	=परलोक
सुखम्	=सुख है (और)	अस्ति	=है अर्थात् यह लोक और परलोक दोनों ही उसके लिये भ्रष्ट हो जाते हैं
न	=न		
अयम्	=यह		
लोकः	=लोक है		
न	=न		

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥

योगसंन्यस्तकर्माणम्, ज्ञानसंछिन्नसंशयम्,
आत्मवन्तम्, न, कर्माणि, निबध्नन्ति, धनंजय ॥४१॥

और—

धनंजय	=हे धनंजय	ज्ञान-संछिन्न-संशयम्	=ज्ञानद्वारा नष्ट हो गये हैं सब संशय जिसके ऐसे
योग-संन्यस्त-कर्माणम्	=समत्वबुद्धिरूप योगद्वारा भगवत्-अर्पण कर दिये हैं संपूर्ण कर्म जिसने	आत्मवन्तम्	=परमात्म-परायण पुरुषको
		कर्माणि	=कर्म
		न	=नहीं
(और)		निबध्नन्ति	=बाँधते हैं

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥

तस्मात्, अज्ञानसम्भूतम्, हृत्स्थम्, ज्ञानासिना, आत्मन,
छित्त्वा, एनम्, संशयम्, योगम्, आतिष्ठ, उत्तिष्ठ, भारत ॥४२॥

तस्मात् = इससे
भारत = { हे भरतवंशी अर्जुन (तू)
योगम् = { समत्वबुद्धिरूप योगमें
आतिष्ठ = स्थित हो
(और)
अज्ञान-सम्भूतम् = { अज्ञानसे उत्पन्न हुए

हृत्स्थम् = हृदयमें स्थित
एनम् = इस
आत्मन = अपने
संशयम् = संशयको
ज्ञानासिना = { ज्ञानरूप तलवारद्वारा
छित्त्वा = छेदनकरके
(युद्धके लिये)
उत्तिष्ठ = खड़ा हो

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-
संवादे ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या
तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके
संवादमें "ज्ञान-कर्म-संन्यासयोग"
नामक चौथा अध्याय।

हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

अथ पञ्चमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥

सन्यासम्, कर्मणाम्, कृष्ण, पुन, योगम्, च, शससि,
यत्, श्रेय, एतयो, एकम्, तत्, मे, ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

उसके उपरान्त अर्जुनने पूछा–

कृष्ण	= हे कृष्ण (आप)	एतयो	= इन दोनोंमें
कर्मणाम्	= कर्मोंके	एकम्	= एक
सन्यासम्	= सन्यासकी	यत्	= जो
च	= और	सुनिश्चितम्	= { निश्चय किया हुआ
पुन	= फिर	श्रेय	= कल्याणकारक (होवे)
योगम्	= { निष्काम कर्मयोगकी	तत्	= उसको
शससि	= प्रशंसा करते हो (इसलिये)	मे	= मेरे लिये
		ब्रूहि	= कहिये

श्रीभगवानुवाच

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥

संन्यास', कर्मयोग, च, निःश्रेयसकरौ, उभौ,
तयो, तु, कर्मसन्न्यासात्, कर्मयोग, विशिष्यते ॥ २ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण महाराज बोले हे अर्जुन-

सन्न्यास	= कर्मोंका संन्यास*	तु	= परन्तु
च	= और	तयो	= उन दोनोंमें भी
कर्मयोग	= निष्काम कर्मयोग†	कर्म-सन्न्यासात्	= कर्मोंके सन्न्याससे
उभौ	= यह दोनों ही	कर्मयोग	= निष्काम कर्म-योग (साधनमें सुगम होनेसे)
निःश्रेयसकरौ	= परम कल्याणके करनेवाले हैं	विशिष्यते	= श्रेष्ठ है

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥

ज्ञेय, स, नित्यसन्न्यासी, य, न, द्वेष्टि, न, काङ्क्षति,
निर्द्वन्द्व', हि, महाबाहो, सुखम्, बन्धात्, प्रमुच्यते ॥३॥

इसलिये-

महाबाहो	= हे अर्जुन	द्वेष्टि	= द्वेष करता है (और)
य	= जो पुरुष		
न	= न (किसीसे)	न	= न (किसीकी)

---

* अर्थात् मन, इन्द्रियों और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनका त्याग ।

† अर्थात् समत्वबुद्धिसे भगवत्-अर्थ कर्मोंका करना ।

काङ्क्षति =आकाङ्क्षा करता है
सः =वह
(निष्काम कर्मयोगी)
नित्य-संन्यासी ={सदा संन्यासी ही
ज्ञेय. =समझने योग्य है
हि =क्योंकि
निर्द्वन्द्वः ={रागद्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित हुआ पुरुष
सुखम् =सुखपूर्वक
बन्धात् ={संसाररूप बन्धनसे
प्रमुच्यते =मुक्त हो जाता है

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥

सांख्ययोगौ, पृथक्, बाला., प्रवदन्ति, न, पण्डिता.,
एकम्, अपि, आस्थित., सम्यक्, उभयो., विन्दते, फलम् ॥ ४ ॥

और हे अर्जुन—

(ऊपर कहे हुए)
सांख्ययोगौ ={संन्यास और निष्काम कर्मयोगको
बालाः =मूर्खलोग
पृथक् =अलग अलग (फलवाले)
प्रवदन्ति =कहते हैं
न =न कि
पण्डिताः =पण्डितजन
(क्योंकि दोनोंमेंसे)
एकम् =एकमें
अपि =भी
सम्यक् =अच्छी प्रकार
आस्थित. =स्थित हुआ (पुरुष)

उभयो	=दोनोंके	विन्दते	=प्राप्त होता है
फलम्	=फलरूप परमात्माको		

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥

यत्, साख्यै, प्राप्यते, स्थानम्, तत्, योगै, अपि, गम्यते,
एकम्, साख्यम्, च, योगम्, च, य, पश्यति, स, पश्यति॥५॥

तथा–

साख्यै	=ज्ञानयोगियोंद्वारा	य	=जो (पुरुष)
यत्	=जो	साख्यम्	=ज्ञानयोग
स्थानम्	=परमधाम	च	=और
प्राप्यते	=प्राप्त किया जाता है	योगम्	=निष्काम कर्मयोगको (फलरूपमे)
योगै	=निष्काम कर्मयोगियोंद्वारा	एकम्	=एक
अपि	=भी	पश्यति	=देखता है
तत्	=वही	स	=वह
गम्यते	=प्राप्त किया जाता है (इसलिये)	च	=ही (यथार्थ)
		पश्यति	=देखता है

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥

सन्यास, तु, महाबाहो, दुःखम्, आप्तुम्, अयोगतः,
योगयुक्तः, मुनिः, ब्रह्म, नचिरेण, अधिगच्छति ॥ ६॥

तु	= परन्तु	दुःखम्	= कठिन है (और)
महाबाहो	= हे अर्जुन	मुनिः	= भगवत्-स्वरूपको मनन करनेवाला
अयोगतः	= निष्काम कर्म-योगके बिना	योगयुक्तः	= निष्काम कर्मयोगी
सन्यासः	= सन्यास अर्थात् मन इन्द्रियों और शरीरद्वारा होनेवाले संपूर्ण कर्मोंमें कर्तापनका त्याग	ब्रह्म	= परब्रह्म परमात्माको
		नचिरेण	= शीघ्र ही
आप्तुम्	= प्राप्त होना	अधिगच्छति	= प्राप्त हो जाता है

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥७॥

योगयुक्तः, विशुद्धात्मा, विजितात्मा, जितेन्द्रियः,
सर्वभूतात्मभूतात्मा, कुर्वन्, अपि, न, लिप्यते ॥ ७ ॥

तथा—

विजितात्मा	= वशमें किया हुआ है शरीर जिसके ऐसा	जितेन्द्रियः	= जितेन्द्रिय (और)
		विशुद्धात्मा	= विशुद्ध अन्तः-करणवाला

(एव)

सर्वभूतात्मभूतात्मा	=	संपूर्ण प्राणियों के आत्मरूप परमात्मामें एकीभाव हुआ
योगयुक्त	=	निष्काम कर्मयोगी
कुर्वन्	=	कर्म करता हुआ
अपि	=	भी
न लिप्यते	=	लिपायमान नहीं होता

नैव किंचित्करोमीति
युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्र-
न्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्॥ ८॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्॥९॥

न, एव, किंचित्, करोमि, इति, युक्त, मन्येत, तत्त्ववित्, पश्यन्, शृण्वन्, स्पृशन्, जिघ्रन्, अश्नन्, गच्छन्, स्वपन्, श्वसन्, प्रलपन्, विसृजन्, गृह्णन्, उन्मिषन्, निमिषन्, अपि, इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेषु, वर्तन्ते, इति, धारयन्॥ ८-९॥

और हे अर्जुन-

तत्त्ववित्	=	तत्त्वको जाननेवाला
युक्तः	=	सांख्ययोगी तो
पश्यन्	=	देखता हुआ
शृण्वन्	=	सुनता हुआ
स्पृशन्	=	स्पर्श करता हुआ
जिघ्रन्	=	सूँघता हुआ

अश्नन्	= भोजन करता हुआ	अपि	= भी
		इन्द्रियाणि	= सब इन्द्रियां
गच्छन्	= गमन करता हुआ	इन्द्रियार्थेषु	= अपने अपने अर्थोंमें
स्वपन्	= सोता हुआ	वर्तन्ते	= वर्त रही हैं
श्वसन्	= श्वास लेता हुआ	इति	= इस प्रकार
प्रलपन्	= बोलता हुआ	धारयन्	= समझता हुआ
विसृजन्	= त्यागता हुआ	एव	= निःसन्देह
		इति	= ऐसे
गृह्णन्	= ग्रहण करता हुआ (तथा)	मन्येत	= माने कि (मैं)
उन्मिषन्	= आखोंको खोलता (और)	किंचित्	= कुछ
		न	= नहीं
निमिषन्	= मीचता हुआ	करोमि	= करता हू

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

ब्रह्मणि, आधाय, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, करोति, यः,
लिप्यते, न, सः, पापेन, पद्मपत्रम्, इव, अम्भसा ॥ १० ॥

परन्तु हे अर्जुन ! देहाभिमानियोंद्वारा यह साधन होना कठिन है और निष्काम कर्मयोग सुगम है क्योंकि–

यः	= जो पुरुष	आधाय	= अर्पणकरके (और)
कर्माणि	= सब कर्मोंको		
ब्रह्मणि	= परमात्मामें	सङ्गम्	= आसक्तिको

त्यक्त्वा	=त्यागकर	इव	=सदृश
करोति	=कर्म करता है		
स	=वह पुरुष	पापेन	=पापसे
अम्भसा	=जलसे		
पद्मपत्रम्	=कमलके पत्तेकी	न लिप्यते	=लिपायमान नहीं होता

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥

कायेन, मनसा, बुद्ध्या, केवलै, इन्द्रियै, अपि,
योगिन, कर्म, कुर्वन्ति, सङ्गम्, त्यक्त्वा, आत्मशुद्धये ॥ ११ ॥

इसलिये-

योगिन	=निष्काम कर्मयोगी (ममत्वबुद्धिरहित)	अपि	=भी
		सङ्गम्	=आसक्तिको
केवलै	=केवल	त्यक्त्वा	=त्यागकर
इन्द्रियै	=इन्द्रिय	आत्मशुद्धये	=अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये
मनसा	=मन		
बुद्ध्या	=बुद्धि (और)	कर्म	=कर्म
कायेन	=शरीरद्वारा	कुर्वन्ति	=करते हैं

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥

युक्त, कर्मफलम्, त्यक्त्वा, शान्तिम्, आप्नोति, नैष्ठिकीम्,
अयुक्त, कामकारेण, फले, सक्त, निबध्यते ॥ १२ ॥

इसीसे—

युक्तः = निष्काम कर्मयोगी
कर्मफलम् = कर्मोंके फलको
त्यक्त्वा = परमेश्वरके अर्पण करके
नैष्ठिकीम् = भगवत्प्राप्तिरूप
शान्तिम् = शान्तिको
आप्नोति = प्राप्त होता है (और)
अयुक्तः = सकामी पुरुष
फले = फलमें
सक्तः = आसक्त हुआ
कामकारेण = कामनाके द्वारा
निबध्यते = बंधता है

इसलिये निष्काम कर्मयोग उत्तम है।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्॥

सर्वकर्माणि, मनसा, संन्यस्य, आस्ते, सुखम्, वशी, नवद्वारे, पुरे, देही, न, एव, कुर्वन्, न, कारयन् ॥ १३ ॥

और हे अर्जुन—

वशी = वशमें है अन्तःकरण जिसके ऐसा सांख्ययोगका आचरण करनेवाला
देही = पुरुष (तो)
एव = निःसन्देह
न = न
कुर्वन् = करता हुआ (और)
न = न
कारयन् = करवाता हुआ
नवद्वारे = नवद्वारोंवाले
पुरे = शरीररूप घरमें
सर्वकर्माणि = सब कर्मोंको

मनसा =मनसे	सुखम् =आनन्दपूर्वक
संन्यस्य =त्यागकर अर्थात्	(सच्चिदानन्दघन
इन्द्रिया इन्द्रियोंके	परमात्माके
अर्थोंमें वर्तती हैं	स्वरूपमें)
ऐसा मानता हुआ	आस्ते =स्थित रहता है

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥

न, कर्तृत्वम्, न, कर्माणि, लोकस्य, सृजति, प्रभुः,
न, कर्मफलसंयोगम्, स्वभावः, तु, प्रवर्तते ॥ १४ ॥

और-

प्रभुः =परमेश्वर (भी)	(वास्तवमें)
लोकस्य =भूतप्राणियोंके	सृजति =रचता है
न =न	तु =किन्तु
कर्तृत्वम् =कर्तापनको (और)	(परमात्माके
न =न	सकाशसे)
कर्माणि =कर्मोंको (तथा)	स्वभावः =प्रकृति (ही)
न =न	प्रवर्तते =वर्तती है अर्थात्
कर्मफल-संयोगम् = { कर्मोंके फलके संयोगको	गुण ही गुणोंमें वर्त रहे हैं

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥

न, आदत्ते, कस्यचित्, पापम्, न, च, एव, सुकृतम्, विभुः,
अज्ञानेन, आवृतम्, ज्ञानम्, तेन, मुह्यन्ति, जन्तवः ॥ १५ ॥

और—

विभु.	= सर्वव्यापी परमात्मा	एव	= भी
न	= न	आदत्ते	= ग्रहण करता है (किन्तु)
कस्यचित्	= किसीके	अज्ञानेन	= मायाके द्वारा
पापम्	= पापकर्मको	ज्ञानम्	= ज्ञान
च	= और	आवृतम्	= ढका हुआ है
न	= न	तेन	= इससे
	(किसीके)	जन्तव	= सब जीव
सुकृतम्	= शुभकर्मको	मुह्यन्ति	= मोहित हो रहे हैं

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥

ज्ञानेन, तु, तत्, अज्ञानम्, येषाम्, नाशितम्, आत्मन, तेषाम्, आदित्यवत्, ज्ञानम्, प्रकाशयति, तत्परम् ॥१६॥

तु	= परन्तु		(वह)
येषाम्	= जिनका	ज्ञानम्	= ज्ञान
तत्	= वह	आदित्यवत्	= सूर्यके सदृश
आत्मन	= अन्तःकरणका		
अज्ञानम्	= अज्ञान		
ज्ञानेन	= आत्मज्ञानद्वारा	तत्परम्	= उस सच्चिदानन्द-घन परमात्माको
नाशितम्	= नाश हो गया है		
तेषाम्	= उनका	प्रकाशयति	= प्रकाशता है*

* अर्थात् परमात्माके स्वरूपको साक्षात् कराता है ।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥१७॥

तद्बुद्धय, तदात्मान, तन्निष्ठा, तत्परायणा,
गच्छन्ति, अपुनरावृत्तिम्, ज्ञाननिर्धूतकल्मषा ॥१७॥

और हे अर्जुन-

तद्बुद्धय	= तद्रूप है बुद्धि जिनकी (तथा)	तत्परायणा	= तत्परायण पुरुष
तदात्मान	= तद्रूप है मन जिनका (और)	ज्ञाननिर्धूतकल्मषा	= ज्ञानके द्वारा पापरहित हुए
तन्निष्ठा	= उस सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही है निरन्तर एकीभावसे स्थिति जिनकी ऐसे	अपुनरावृत्तिम्	= अपुनरावृत्तिको अर्थात् परमगतिको
		गच्छन्ति	= प्राप्त होते हैं

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

विद्याविनयसम्पन्ने, ब्राह्मणे, गवि, हस्तिनि,
शुनि, च, एव, श्वपाके, च, पण्डिता, समदर्शिन ॥१८॥

ऐसे वे-

पण्डिता	= ज्ञानीजन	विद्याविनयसम्पन्ने	= विद्या और विनययुक्त

ब्राह्मणे	=ब्राह्मणमें	श्वपाके	=चाण्डालमें
च	=तथा	च	=भी
गवि	=गौ	समदर्शिन	=समभावसे* देखनेवाले
हस्तिनि	=हाथी		
शुनि	=कुत्ते (और)	एव	=ही (होते हैं)

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

इह, एव, तैः, जितः, सर्गः, येषाम्, साम्ये, स्थितम्, मनः,
निर्दोषम्, हि, समम्, ब्रह्म, तस्मात्, ब्रह्मणि, ते, स्थिताः ॥१९॥

इसलिये–

येषाम्	=जिनका	हि	=क्योंकि
मनः	=मन	ब्रह्म	=सच्चिदानन्दघन परमात्मा
साम्ये	=समत्वभावमें		
स्थितम्	=स्थित है	निर्दोषम्	=निर्दोष (और)
तैः	=उनके द्वारा	समम्	=सम है
इह	=इस जीवित अवस्थामें	तस्मात्	=इससे
		ते	=वे
एव	=ही	ब्रह्मणि	=सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही
सर्गः	=सम्पूर्ण संसार		
जितः	=जीत लिया गया	स्थिताः	=स्थित हैं†

* इसका विस्तार गीता अध्याय ६ श्लोक ३२ की टिप्पणीमें देखना चाहिये।

† अर्थात् वे जीते हुए ही संसारसे मुक्त हैं।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥

न, प्रहृष्येत्, प्रियम्, प्राप्य, न, उद्विजेत्, प्राप्य, च, अप्रियम्, स्थिरबुद्धि, असमूढ, ब्रह्मवित्, ब्रह्मणि, स्थित ॥२०॥

और जो पुरुष-

प्रियम्	= प्रियको अर्थात् जिसको लोग प्रिय समझते हैं उसको
प्राप्य	= प्राप्त होकर
न प्रहृष्येत्	= हर्षित नहीं हो
च	= और
अप्रियम्	= अप्रियको अर्थात् जिसको लोग अप्रिय समझते हैं उसको
प्राप्य	= प्राप्त होकर
न उद्विजेत्	= उद्वेगवान् न हो (ऐसा)
स्थिरबुद्धि	= स्थिरबुद्धि
असंमूढ	= संशयरहित
ब्रह्मवित्	= ब्रह्मवेत्ता पुरुष
ब्रह्मणि	= सच्चिदानन्द-घन परब्रह्म परमात्मामें
स्थित	= एकीभावसे नित्य स्थित है

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा
विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा
सुखमक्षयमश्नुते ॥ २१ ॥

बाह्यस्पर्शेषु, असक्तात्मा, विन्दति आत्मनि, यत्, सुखम्, स, ब्रह्मयोगयुक्तात्मा, सुखम्, अक्षयम्, अश्नुते ॥२१॥

और—

बाह्यस्पर्शेषु	= बाहरके विषयोंमें अर्थात् सांसारिक भोगोंमें	विन्दति	= प्राप्त होता है (और)
असक्तात्मा	= आसक्तिरहित अन्तःकरणवाला पुरुष	सः	= वह पुरुष
आत्मनि	= अन्तःकरणमें	ब्रह्मयोगयुक्तात्मा	= सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मारूप योगमें एकीभावसे स्थित हुआ
यत्	= जो	अक्षयम्	= अक्षय
सुखम्	= भगवत्-ध्यान-जनित आनन्द है	सुखम्	= आनन्दको
(तत्)	= उसको	अश्नुते	= अनुभव करता है

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

ये, हि, संस्पर्शजाः, भोगाः, दुःखयोनयः, एव, ते, आद्यन्तवन्तः, कौन्तेय, न, तेषु, रमते, बुधः ॥२२॥

और—

ये	= जो	संस्पर्शजाः	= इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले
(यह)			

भोगा = सब भोग हैं
ते = वे
(यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुख-रूप भासते हैं तो भी)
हि = निःसन्देह
दुःखयोनय एव = दुःखके ही हेतु हैं
(और)
आद्यन्तवन्त = आदि अन्त-वाले अर्थात् अनित्य हैं
(इसलिये)
कौन्तेय = हे अर्जुन
बुध = बुद्धिमान् विवेकी पुरुष
तेषु = उनमें
न = नहीं
रमते = रमता

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥

शक्नोति, इह, एव, य, सोढुम्, प्राक्, शरीरविमोक्षणात्, कामक्रोधोद्भवम्, वेगम्, स, युक्त, स, सुखी, नर ॥२३॥

य = जो मनुष्य
शरीर-विमोक्षणात् = शरीरके नाश होनेसे
प्राक् = पहिले
एव = ही
काम-क्रोधोद्भवम् = काम और क्रोधसे उत्पन्न हुए
वेगम् = वेगको
सोढुम् = सहन करनेमें
शक्नोति = समर्थ है अर्थात् काम क्रोधको जिसने सदाके लिये जीत लिया है
स = वह

नरः	=मनुष्य		(और)
इह	=इस लोकमें	सः	=वही
युक्तः	=योगी है	सुखी	=सुखी है

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥

य, अन्तःसुख, अन्तराराम, तथा, अन्तर्ज्योतिः, एव, य, स, योगी, ब्रह्मनिर्वाणम्, ब्रह्मभूतः, अधिगच्छति ॥२४॥

यः	=जो पुरुष	अन्तर्ज्योतिः	=आत्मामें ही ज्ञानवाला है
एव	=निश्चयकरके		(ऐसा)
अन्तःसुखः	=अन्तर आत्मामें ही सुखवाला है	सः	=वह
	(और)	ब्रह्मभूतः	=सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभाव हुआ
अन्तरारामः	=आत्मामें ही आरामवाला है	योगी	=सांख्ययोगी
तथा	=तथा	ब्रह्मनिर्वाणम्	=शान्त ब्रह्मको
यः	=जो	अधिगच्छति	=प्राप्त होता है

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥

लभन्ते, ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋषयः, क्षीणकल्मषाः, छिन्नद्वैधाः, यतात्मानः, सर्वभूतहिते, रताः ॥२५॥

और-

क्षीण-कल्मषा	=	नाश हो गये हैं सब पाप जिनके
		(तथा)
छिन्नद्वैधा	=	ज्ञानकरके निवृत्त हो गया है संशय जिनका
		(और)
सर्वभूत-हिते रता	=	संपूर्ण भूत-प्राणियोंके हितमें है रति जिनकी
यतात्मान	=	एकाग्र हुआ है भगवान्के ध्यानमें चित्त जिनका
		(ऐसे)
ऋषय	=	ब्रह्मवेत्ता पुरुष
ब्रह्म-निर्वाणम्	=	शान्त परब्रह्मको
लभन्ते	=	प्राप्त होते हैं

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥

कामक्रोधवियुक्तानाम्, यतीनाम्, यतचेतसाम्,

अभित., ब्रह्मनिर्वाणम्, वर्तते, विदितात्मनाम् ॥२६॥

और-

कामक्रोध-वियुक्तानाम्	=	काम क्रोधसे रहित
यतचेतसाम्	=	जीते हुए चित्तवाले
विदितात्मनाम्	=	परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार किये हुए

यतीनाम् = ज्ञानी पुरुषोंके लिये | ब्रह्म-निर्वाणम् = शान्त परब्रह्म परमात्मा ही
अभितः = सब ओरसे | वर्तते = प्राप्त है

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥

स्पर्शान्, कृत्वा, बहिः, बाह्यान्, चक्षुः, च, एव, अन्तरे, भ्रुवोः, प्राणापानौ, समौ, कृत्वा, नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ २७ ॥

और हे अर्जुन--

बाह्यान् = बाहरके
स्पर्शान् = विषय भोगोंको
(न चिन्तन करता हुआ)
बहिः = बाहर
एव = ही
कृत्वा = त्यागकर
च = और
चक्षुः = नेत्रोंकी दृष्टिको
भ्रुवोः = भृकुटीके
अन्तरे = बीचमें
(स्थित करके)
(तथा)
नासाभ्यन्तर-चारिणौ = नासिकामें विचरनेवाले
प्राणापानौ = प्राण और अपान-वायुको
समौ = सम
कृत्वा = करके

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धि, मुनि, मोक्षपरायण,

विगतेच्छाभयक्रोध, य, सदा, मुक्त, एव, स ॥२८॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धि = जीती हुई हैं इन्द्रिया मन और बुद्धि जिसकी ऐसा

य = जो

मोक्षपरायण = मोक्षपरायण

मुनि = मुनि*

विगतेच्छाभयक्रोध = इच्छा भय और क्रोधसे रहित है

स = वह

सदा = सदा

मुक्त = मुक्त

एव = ही है

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥

भोक्तारम्, यज्ञतपसाम्, सर्वलोकमहेश्वरम्,

सुहृदम्, सर्वभूतानाम्, ज्ञात्वा, माम्, शान्तिम्, ऋच्छति ॥२९॥

और हे अर्जुन ! मेरा भक्त-

माम् = मेरेको

यज्ञतपसाम् = यज्ञ और तपोंका

भोक्तारम् = भोगनेवाला

(और)

सर्वलोकमहेश्वरम् = संपूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर

---

* परमेश्वरके स्वरूपका निरन्तर मनन करनेवाला ।

	(तथा)		(ऐसा)	
सर्वभूतानाम्	=	सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका	ज्ञात्वा	= तत्त्वसे जानकर
सुहृदम्	=	सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित प्रेमी	शान्तिम्	= शान्तिको
			ऋच्छति	= प्राप्त होता है

और सच्चिदानन्दघन परिपूर्ण शान्त आत्माके सिवाय उसकी दृष्टिमें और कुछ भी नहीं रहता केवल वासुदेव ही वासुदेव रह जाता है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्म-
विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-
संवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या
तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और
अर्जुनके संवादमें "कर्म-संन्यास-
योग" नामक पाँचवाँ अध्याय।

हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥

अनाश्रित', कर्मफलम्, कार्यम्, कर्म, करोति, य,
स, सन्यासी, च, योगी, च, न, निरग्नि, न, च, अक्रिय ॥१॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण महाराज बोले हे अर्जुन-

य	=जो पुरुष	निरग्नि	= { अग्निको त्यागनेवाला
कर्मफलम्	=कर्मके फलको		
अनाश्रित	=न चाहता हुआ		(सन्यासी योगी)
कार्यम्	=करने योग्य	न	=नहीं है
कर्म	=कर्म	च	=तथा (केवल)
करोति	=करता है		
स	=वह	अक्रिय	= { क्रियाओंको त्यागनेवाला
सन्यासी	=सन्यासी		(भी सन्यासी
च	=और		योगी)
योगी	=योगी है		
च	=और (केवल)	न	=नहीं है

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥

यम्, संन्यासम्, इति, प्राहुः, योगम्, तम्, विद्धि, पाण्डव, न, हि, असंन्यस्तसंकल्पः, योगी, भवति, कश्चन ॥ २ ॥

इसलिये—

पाण्डव	=हे अर्जुन	हि	=क्योंकि
यम्	=जिसको	असंन्यस्तसंकल्पः	=संकल्पोंको न त्यागनेवाला
संन्यासम्	=संन्यास*		
इति	=ऐसा	कश्चन	=कोई भी पुरुष
प्राहुः	=कहते हैं		
तम्	=उसीको (तू)	योगी	=योगी
योगम्	=योग†	न	=नहीं
विद्धि	=जान	भवति	=होता

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥

आरुरुक्षोः, मुनेः, योगम्, कर्म, कारणम्, उच्यते, योगारूढस्य, तस्य, एव, शमः, कारणम्, उच्यते ॥ ३ ॥

और—

योगम्	=समत्वबुद्धिरूप योगमें	मुनेः	=मननशील पुरुषके लिये
आरुरुक्षोः	=आरूढ होनेकी इच्छावाले		(योगकी प्राप्तिमें)

*-† गीता अ० ३ श्लोक ३ की टिप्पणीमें इसका खुलासा अर्थ लिखा है।

कर्म	= निष्कामभावसे कर्म करना ही	योगारूढस्य	= योगारूढ पुरुषके लिये
कारणम्	= हेतु	शम	= सर्वसंकल्पोंका अभाव
उच्यते	= कहा है (और योगारूढ हो जानेपर)	एव	= ही (कल्याणमें)
		कारणम्	= हेतु
तस्य	= उस	उच्यते	= कहा है

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥

यदा, हि, न, इन्द्रियार्थेषु, न, कर्मसु, अनुषज्जते, सर्वसंकल्पसन्यासी, योगारूढ, तदा, उच्यते ॥ ४ ॥

और—

यदा	= जिस कालमें	हि	= ही
न	= न (तो)	अनुषज्जते	= आसक्त होता है
इन्द्रियार्थेषु	= इन्द्रियोंके भोगोंमें	तदा	= उस कालमें
(अनुषज्जते)	= आसक्त होता है (तथा)	सर्वसंकल्पसन्यासी	= सर्वसंकल्पोंका त्यागी पुरुष
न	= न	योगारूढ	= योगारूढ
कर्मसु	= कर्मोंमें	उच्यते	= कहा जाता है

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

उद्धरेत्, आत्मना, आत्मानम्, न, आत्मानम्, अवसादयेत्, आत्मा, एव, हि आत्मन, बन्धु, आत्मा, एव, रिपु, आत्मनः ॥

और यह योगारूढता कल्याणमे हेतु कही है इसलिये मनुष्यको चाहिये कि-

आत्मना	=अपनेद्वारा	हि	=क्योंकि (यह)
आत्मानम्	=आपका (संसारसमुद्रसे)	आत्मा	=जीवात्मा आप
		एव	=ही (तो)
उद्धरेत्	=उद्धार करे (और)	आत्मन	=अपना
		बन्धु	=मित्र है (और)
आत्मानम्	= { अपने आत्माको	आत्मा	=आप
		एव	=ही
न अवसादयेत्	= { अधोगतिमें न पहुंचावे	आत्मन	=अपना
		रिपु	=शत्रु है

अर्थात् और कोई दूसरा शत्रु या मित्र नहीं है

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥

बन्धुः, आत्मा, आत्मन, तस्य, येन, आत्मा, एव, आत्मना, जित, अनात्मन, तु, शत्रुत्वे, वर्तेत, आत्मा, एव, शत्रुवत् ॥६॥

तस्य	=उस		(वह)
		आत्मा	=आप
आत्मन	=जीवात्माका तो	एव	=ही

बन्धुः =मित्र है (कि)
येन =जिस
आत्मना =जीवात्माद्वारा
आत्मा = { मन और इन्द्रियोंसहित शरीर }
जित =जीता हुआ है
तु =और
अनात्मन = { जिसके द्वारा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर नहीं जीता गया है उसका (वह) }
आत्मा =आप
एव =ही
शत्रुवत =शत्रुके सदृश
शत्रुत्वे =शत्रुतामें
वर्तेत =वर्तता है

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः॥

जितात्मन, प्रशान्तस्य, परमात्मा, समाहित,
शीतोष्णसुखदुःखेषु, तथा, मानापमानयो ॥ ७ ॥

और हे अर्जुन-

शीतोष्णसुखदुःखेषु = { सर्दी गर्मी और सुख-दुःखादिकोंमें }
तथा =तथा
मानापमानयो = { मान और अपमानमें }
प्रशान्तस्य = { जिसके अन्तःकरणकी वृत्तिया अच्छी प्रकार शान्त हैं अर्थात् विकाररहित हैं (ऐसे) }

जितात्मन = { स्वाधीन आत्मावाले पुरुषके

(ज्ञानमें)

परमात्मा = { सच्चिदानन्द-घन परमात्मा

समाहित = { सम्यक् प्रकारसे स्थित है अर्थात् उसके ज्ञानमें परमात्माके सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा, कूटस्थ, विजितेन्द्रिय,
युक्तः, इति, उच्यते, योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चन ॥ ८ ॥

और-

ज्ञान-विज्ञान-तृप्तात्मा = { ज्ञान विज्ञानसे तृप्त है अन्त-करण जिसका

(तथा)

कूटस्थ = { विकाररहित है स्थिति जिसकी

(और)

विजितेन्द्रियः = { अच्छी प्रकार जीती हुई हैं इन्द्रियां जिसकी

(तथा)

समलोष्टाश्म-काञ्चन = { समान है मिट्टी पत्थर और सुवर्ण जिसके (वह)

योगी = योगी

युक्त = { युक्त अर्थात् भगवत्की प्राप्तिवाला है

इति = ऐसे

उच्यते = कहा जाता है

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥९॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु,
साधुषु, अपि, च, पापेषु, समबुद्धिः, विशिष्यते ॥ ९ ॥

और जो पुरुष-

सुहृद्	=सुहृद्*	साधुषु	=धर्मात्माओंमें
मित्र	=मित्र	च	=और
अरि	=वैरी	पापेषु	=पापियोंमें
उदासीन	=उदासीन†	अपि	=भी
मध्यस्थ	=मध्यस्थ‡	समबुद्धिः	=समान भाव वाला है
द्वेष्य	=द्वेषी (और)		(वह)
बन्धुषु	=बन्धुगणोंमें (तथा)	विशिष्यते	=अति श्रेष्ठ है

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥

योगी, युञ्जीत, सततम्, आत्मानम्, रहसि, स्थितः,
एकाकी, यतचित्तात्मा, निराशीः, अपरिग्रहः ॥१०॥

---

* स्वार्थरहित सबका हित करनेवाला ।

† पक्षपातरहित ।

‡ दोनों ओरकी भलाई चाहनेवाला ।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥१२॥

तत्र, एकाग्रम्, मन, कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियक्रिय,,
उपविश्य, आसने, युञ्ज्यात्, योगम्, आत्मविशुद्धये ॥१२॥

और-

तत्र =उस
आसने =आसनपर
उपविश्य =बैठकर
(तथा)
मन =मनको
एकाग्रम् =एकाग्र
कृत्वा =करके

यतचित्तेन्द्रियक्रिय = चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको वशमें किया हुआ
आत्मविशुद्धये = अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये
योगम् =योगका
युञ्ज्यात् =अभ्यास करे

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥

समम्, कायशिरोग्रीवम्, धारयन्, अचलम्, स्थिर,
सम्प्रेक्ष्य, नासिकाग्रम्, स्वम्, दिश, च, अनवलोकयन् ॥१३॥

उसकी विधि इस प्रकार है कि-

कायशिरोग्रीवम् = काया शिर और ग्रीवाको
समम् =समान
च =और

अचलम् =अचल

धारयन् =धारण किये हुए

स्थिरः =दृढ़

(होकर)

स्वम् =अपने

नासिकाग्रम् = { नासिकाके अग्रभागको

संप्रेक्ष्य =देखकर

दिशः = { अन्य दिशाओंको

अनवलोकयन् = { न देखता हुआ

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥

प्रशान्तात्मा, विगतभी, ब्रह्मचारिव्रते, स्थित,
मन, संयम्य, मच्चित्त, युक्त, आसीत, मत्पर. ॥१४॥

और-

ब्रह्मचारिव्रते = { ब्रह्मचर्यके व्रतमें

स्थित = { स्थित रहता हुआ

विगतभी =भयरहित

(तथा)

प्रशान्तात्मा = { अच्छी प्रकार शान्त अन्तःकरणवाला

(और)

युक्तः =सावधान

(होकर)

मन =मनको

संयम्य =वशमें करके

मच्चित्त = { मेरेमें लगे हुए चित्तवाला

(और)

मत्पर =मेरे परायण हुआ

आसीत =स्थित होवे

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति॥

युञ्जन्, एवम्, सदा, आत्मानम्, योगी, नियतमानसः, शान्तिम्, निर्वाणपरमाम्, मत्संस्थाम्, अधिगच्छति ॥१५॥

एवम्	= इस प्रकार	योगी	= योगी
आत्मानम्	= आत्माको	मत्संस्थाम्	= मेरेमें स्थितिरूप
सदा	= निरन्तर		
युञ्जन्	= (परमेश्वरके स्वरूपमें) लगाता हुआ	निर्वाणपरमाम्	= परमानन्द पराकाष्ठावाली
नियतमानसः	= स्वाधीन मनवाला	शान्तिम्	= शान्तिको
		अधिगच्छति	= प्राप्त होता है

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥

न, अति, अश्नतः, तु, योगः, अस्ति, न, च, एकान्तम्, अनश्नतः, न, च, अति, स्वप्नशीलस्य, जाग्रतः, न, एव, च, अर्जुन ॥१६॥

[illegible]:-

[illegible]

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥

यदा, विनियतम्, चित्तम्, आत्मनि, एव, अवतिष्ठते, निःस्पृह, सर्वकामेभ्य, युक्त, इति, उच्यते, तदा ॥१८॥

इस प्रकार योगके अभ्याससे—

विनियतम्	= अत्यन्त वशमें किया हुआ	तदा	= उस कालमें
चित्तम्	= चित्त	सर्वकामेभ्य	= संपूर्ण कामनाओंसे
यदा	= जिस कालमें	निःस्पृह	= स्पृहारहित हुआ पुरुष
आत्मनि	= परमात्मामें	युक्त	= योगयुक्त
एव	= ही	इति	= ऐसा
अवतिष्ठते	= भली प्रकार स्थित हो जाता है	उच्यते	= कहा जाता है

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥

यथा, दीप, निवातस्थ, न, इङ्गते, सा, उपमा, स्मृता योगिन, यतचित्तस्य, युञ्जत, योगम्, आत्मन ॥१९॥

और—

यथा	= जिस प्रकार	दीप	= दीपक
निवातस्थ	= वायुरहित स्थानमें स्थित	न	= नहीं

इङ्गते = चलायमान होता है

सा = वैसी ही

उपमा = उपमा

आत्मन = परमात्माके

योगम् युञ्जत = ध्यानमें लगे हुए

योगिन = योगीके

यतचित्तस्य = जीते हुए चित्तकी

स्मृता = कही गई है

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥

यत्र, उपरमते, चित्तम्, निरुद्धम्, योगसेवया, यत्र, च, एव, आत्मना, आत्मानम्, पश्यन्, आत्मनि, तुष्यति॥२०॥

और हे अर्जुन-

यत्र = जिस अवस्थामें

योगसेवया = योगके अभ्याससे

निरुद्धम् = निरुद्ध हुआ

चित्तम् = चित्त

उपरमते = उपराम हो जाता है

च = और

यत्र = जिस अवस्थामें (परमेश्वरके ध्यानसे)

आत्मना = शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा

आत्मानम् = परमात्माको

पश्यन् = साक्षात् करता हुआ

आत्मनि = सच्चिदानन्दघन परमात्मामें

एव = ही

तुष्यति = संतुष्ट होता है

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥

सुखम्, आत्यन्तिकम्, यत्, तत्, बुद्धिग्राह्यम्, अतीन्द्रियम्, वेत्ति, यत्र, न, च, एव, अयम्, स्थित, चलति, तत्त्वत ॥२१॥

तथा–

अतीन्द्रियम् = इन्द्रियोंसे अतीत
बुद्धिग्राह्यम् = केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करने योग्य
यत् = जो
आत्यन्तिकम् = अनन्त
सुखम् = आनन्द है
तत् = उसको
यत्र = जिस अवस्थामें
वेत्ति = अनुभव करता है
च = और
(यत्र) = जिस अवस्थामें
स्थित = स्थित हुआ
अयम् = यह योगी
तत्त्वत = भगवत्स्वरूपसे
न एव = नहीं
चलति = चलायमान होता है

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥

यम्, लब्ध्वा, च, अपरम्, लाभम्, मन्यते, न, अधिकम्, तत, यस्मिन्, स्थित, न, दुःखेन, गुरुणा, अपि, विचाल्यते ॥२२॥

और—

यम्	= (परमेश्वरकी प्राप्तिरूप) जिस लाभको	च	= और
लब्ध्वा	= प्राप्त होकर	यस्मिन्	= (भगवत्प्राप्तिरूप) जिस अवस्थामें
ततः	= उससे	स्थितः	= स्थित हुआ योगी
अधिकम्	= अधिक	गुरुणा	= बड़े भारी
अपरम्	= दूसरा (कुछ भी)	दुःखेन	= दुःखसे
लाभम्	= लाभ	अपि	= भी
न	= नहीं	न	= चलायमान नहीं होता है
मन्यते	= मानता है	विचाल्यते	

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥

तम्, विद्यात्, दुःखसंयोगवियोगम्, योगसंज्ञितम्,
सः, निश्चयेन, योक्तव्यः, योगः, अनिर्विण्णचेतसा ॥२३॥

और जो—

दुःखसंयोगवियोगम्	= दुःखरूप संसारके संयोगसे रहित है (तथा)	तम्	= उसको
		विद्यात्	= जानना चाहिये
		सः	= वह
योगसंज्ञितम्	= जिसका नाम योग है	योगः	= योग

अनिर्विण्ण-चेतसा = न उकताये हुए चित्तसे अर्थात् तत्पर हुए चित्तसे | निश्चयेन = निश्चयपूर्वक | योक्तव्य = करना कर्तव्य है

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः॥

संकल्पप्रभवान्, कामान्, त्यक्त्वा, सर्वान्, अशेषत,
मनसा, एव, इन्द्रियग्रामम्, विनियम्य, समन्तत ॥२४॥

इसलिये मनुष्यको चाहिये कि—

संकल्प-प्रभवान् = संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली
सर्वान् = संपूर्ण
कामान् = कामनाओंको
अशेषत = निःशेषतासे अर्थात् वासना और आसक्ति-सहित
त्यक्त्वा = त्यागकर
(और)
मनसा = मनके द्वारा
इन्द्रियग्रामम् = इन्द्रियोंके समुदायको
समन्तत = सब ओरसे
एव = ही
विनियम्य = अच्छी प्रकार वशमें करके

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्॥

शनै, शनै, उपरमेत्, बुद्ध्या, धृतिगृहीतया,
आत्मसंस्थम्, मन, कृत्वा, न, किंचित्, अपि, चिन्तयेत् ॥२५॥

शनैः शनैः = { क्रम क्रमसे (अभ्यास करता हुआ)	मनः = मनको
उपरमेत् = { उपरामताको प्राप्त होवे	आत्मसंस्थम् = { परमात्मामें स्थित
(तथा)	कृत्वा = करके (परमात्माके सिवाय और)
धृतिगृहीतया } = धैर्ययुक्त	किंचित् = कुछ
	अपि = भी
बुद्ध्या = बुद्धिद्वारा	न चिन्तयेत् = चिन्तन न करे

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

यतः, यतः, निश्चरति, मनः, चञ्चलम्, अस्थिरम्,
ततः, ततः, नियम्य, एतत्, आत्मनि, एव, वशम्, नयेत् ॥२६॥

परन्तु जिसका मन वशमें नहीं हुआ हो उसको चाहिये कि—

एतत् = यह	निश्चरति = { सांसारिक पदार्थोंमें विचरता है
अस्थिरम् = { स्थिर न रहनेवाला (और)	
चञ्चलम् = चञ्चल	ततः = उस
मनः = मन	ततः = उससे
यतः यतः = { जिस जिस कारणसे	नियम्य = रोककर (वारम्बार)

आत्मनि	=परमात्मामें	वशम्	=निरोध
एव	=ही	नयेत्	=करे

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥

प्रशान्तमनसम्, हि, एनम्, योगिनम्, सुखम्, उत्तमम्, उपैति, शान्तरजसम्, ब्रह्मभूतम्, अकल्मषम् ॥२७॥

हि	=क्योंकि	एनम्	=इस
प्रशान्त-मनसम्	=जिसका मन अच्छी प्रकार शान्त है (और)	ब्रह्मभूतम्	=सच्चिदानन्द-घन ब्रह्मके साथ एकीभाव हुए
अकल्मषम्	=जो पापसे रहित है (और)	योगिनम्	=योगीको
		उत्तमम्	=अति उत्तम
शान्त-रजसम्	=जिसका रजो-गुण शान्त हो गया है ऐसे	सुखम्	=आनन्द
		उपैति	=प्राप्त होता है

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥

युञ्जन्, एवम्, सदा, आत्मानम्, योगी, विगतकल्मषः, सुखेन, ब्रह्मसंस्पर्शम्, अत्यन्तम्, सुखम्, अश्नुते ॥२८॥

और वह-

विगतकल्मषः = पापरहित
योगी = योगी
एवम् = इस प्रकार
सदा = निरन्तर
आत्मानम् = आत्माको
युञ्जन् = (परमात्मामें) लगाता हुआ

सुखेन = सुखपूर्वक
ब्रह्मसंस्पर्शम् = परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप
अत्यन्तम् = अनन्त
सुखम् = आनन्दको
अश्नुते = अनुभव करता है

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥

सर्वभूतस्थम्, आत्मानम्, सर्वभूतानि, च, आत्मनि,
ईक्षते, योगयुक्तात्मा, सर्वत्र, समदर्शन ॥२९॥

और हे अर्जुन-

योगयुक्तात्मा = सर्वव्यापी अनन्त चेतनमें एकीभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त हुए आत्मावाला
(तथा)
सर्वत्र = सबमें
समदर्शनः = समभावसे देखनेवाला योगी

आत्मानम् = आत्माको
सर्वभूतस्थम् = सपूर्ण भूतोंमें बर्फमें जलके सदृश व्यापक
(देखता है)
च = और
सर्वभूतानि = सपूर्ण भूतोंको
आत्मनि = आत्मामें
ईक्षते = देखता है

अर्थात् जैसे स्वप्नसे जगा हुआ पुरुष, स्वप्नके संसारको अपने अन्तर्गत संकल्पके आधार देखता है वैसे ही वह पुरुष संपूर्ण भूतोंको अपने सर्वव्यापी अनन्त चेतन आत्माके अन्तर्गत संकल्पके आधार देखता है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

य, माम्, पश्यति, सर्वत्र, सर्वम्, च, मयि, पश्यति,
तस्य, अहम्, न, प्रणश्यामि, सः, च, मे, न, प्रणश्यति॥३०॥

और—

यः	=जो पुरुष	पश्यति	=देखता है
सर्वत्र	=संपूर्ण भूतोंमें	तस्य	=उसके (लिये)
माम्	=सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही (व्यापक)	अहम्	=मैं
		न प्रणश्यामि	=अदृश्य नहीं होता हूँ
पश्यति	=देखता है	च	=और
च	=और	सः	=वह
सर्वम्	=संपूर्ण भूतोंको	मे	=मेरे (लिये)
मयि	=मुझ वासुदेवके अन्तर्गत*	न प्रणश्यति	=अदृश्य नहीं होता है—

क्योंकि वह मेरे [illegible] है।

---

* गीता अध्याय [illegible] श्लोक [illegible] देखना चाहिये।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥

सर्वभूतस्थितम्, यः, माम्, भजति, एकत्वम्, आस्थितः, सर्वथा, वर्तमानः, अपि, सः, योगी, मयि, वर्तते ॥३१॥

इस प्रकार—

यः	= जो पुरुष	भजति	= भजता है
एकत्वम्	= एकीभावसे	सः	= वह
आस्थितः	= स्थित हुआ	योगी	= योगी
सर्वभूतस्थितम्	= सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मारूपसे स्थित	सर्वथा	= सब प्रकारसे
		वर्तमानः	= बर्तता हुआ
		अपि	= भी
माम्	= मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको	मयि	= मेरेमें ही
		वर्तते	= बर्तता है—

क्योंकि उसके अनुभवमें मेरे सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

आत्मौपम्येन, सर्वत्र, समम्, पश्यति, यः, अर्जुन, सुखम्, वा, यदि, वा, दुःखम्, सः, योगी, परमः, मतः ॥३२॥

और—

अर्जुन	= हे अर्जुन	यः	= जो योगी

आत्मौपम्येन	={अपनी साहृश्यतासे*	यदि वा	=अथवा
सर्वत्र	=सपूर्ण भूतोंमें	दु खम	=दु खको (भी) (सबमें सम देखता है)
समम्	=सम	स	=वह
पश्यति	=देखता है	योगी	=योगी
वा	=और	परम	=परम श्रेष्ठ
सुखम्	=सुख	मत	=माना गया है

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः
साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि
चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥३३॥

य, अयम्, योग, त्वया, प्रोक्त, साम्येन, मधुसूदन, एतस्य, अहम्, न, पश्यामि, चञ्चलत्वात्, स्थितिम्, स्थिराम् ॥

इस प्रकार भगवान्‌के वाक्योंको सुनकर अर्जुन बोला—

मधुसूदन	=हे मधुसूदन	य	=जो

* जैसे मनुष्य अपने मस्तक हाथ पैर और गुदादिके साथ ब्राह्मण क्षत्रिय शूद्र और म्लेच्छादिकोंका-सा बर्ताव करता हुआ भी उनमें आत्मभाव अर्थात् अपनापना समान होनेसे, सुख और दु ख-को समान ही देखता है वैसे ही सब भूतोंमें देखना "अपनी साहृश्यतासे" सम देखना है।

अयम्	= यह	चञ्चलत्वात्	= चञ्चल होनेसे
योग	= ध्यानयोग	स्थिराम्	= { बहुत काल-तक ठहरने-वाली
त्वया	= आपने		
साम्येन	= समत्वभावसे		
प्रोक्त	= कहा है	स्थितिम्	= स्थितिको
एतस्य	= इसकी	न	= नहीं
अहम्	= मैं (मनके)	पश्यामि	= देखता हू

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

चञ्चलम्, हि, मन, कृष्ण, प्रमाथि, बलवत्, दृढम्,
तस्य, अहम्, निग्रहम्, मन्ये, वायो., इव, सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥

हि	= क्योंकि	बलवत्	= बलवान् है
कृष्ण	= हे कृष्ण (यह)	(अत)	= इसलिये
मन.	= मन	तस्य	= उसका
चञ्चलम्	= बडा चञ्चल (और)	निग्रहम्	= वशमें करना
		अहम्	= मैं
प्रमाथि	= { प्रमथन स्वभाव-वाला है (तथा)	वायो	= वायुकी
		इव	= भाति
		सुदुष्करम्	= अति दुष्कर
दृढम्	= बडा दृढ (और)	मन्ये	= मानता हू

श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

असशयम्, महाबाहो, मन, दुर्निग्रहम्, चलम्,
अभ्यासेन, तु, कौन्तेय, वैराग्येण, च, गृह्यते ॥ ३५ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले-

महाबाहो	=हे महाबाहो	कौन्तेय	=हे कुन्तीपुत्र अर्जुन
असशयम्	=नि सन्देह		
मन	=मन		
चलम्	=चञ्चल (और)	अभ्यासेन	=अभ्यास* अर्थात् स्थितिके लिये बारम्बार यत्न करनेसे
दुर्निग्रहम्	=कठिनतासे वशमें होनेवाला है	च	=और
		वैराग्येण	=वैराग्यसे
तु	=परन्तु	गृह्यते	=वशमें होता है

इसलिये इसको अवश्य वशमें करना चाहिये-

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥

असयतात्मना, योग, दुष्प्राप, इति, मे, मति,
वश्यात्मना, तु, यतता, शक्य, अवाप्तुम्, उपायत ॥ ३६ ॥

---

* गीता अ० १२ श्लोक ९ की टिप्पणीमें इसका विस्तार देखना चाहिये ।

क्योंकि—

असंयतात्मना	= मनको वशमें न करनेवाले पुरुषद्वारा	वश्यात्मना	= स्वाधीन मन-वाले
		यतता	= प्रयत्नशील पुरुषद्वारा
योग	= योग	उपायत	= साधन करनेसे
		अवाप्तुम्	= प्राप्त होना
दुष्प्राप	= दुष्प्राप्य है अर्थात् प्राप्त होना कठिन है	शक्य	= सहज है
		इति	= यह
		मे	= मेरा
तु	= और	मति	= मत है

अर्जुन उवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥

अयति, श्रद्धया, उपेत, योगात्, चलितमानस, अप्राप्य, योगसंसिद्धिम्, काम्, गतिम्, कृष्ण, गच्छति ॥ ३७॥

इसपर अर्जुन बोला—

कृष्ण	= हे कृष्ण	अयति	= शिथिल यत्नवाला
योगात्	= योगसे		
चलितमानस	= चलायमान हो गया है मन जिसका ऐसा	श्रद्धया उपेत	= श्रद्धायुक्त पुरुष

योगसंसिद्धिम्	= योगकी सिद्धिको अर्थात् भगवत्साक्षात्कारताको	अप्राप्य	= न प्राप्त होकर
		काम्	= किस
		गतिम्	= गतिको
		गच्छति	= प्राप्त होता है

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥

कच्चित्, न, उभयविभ्रष्टः, छिन्नाभ्रम्, इव, नश्यति,
अप्रतिष्ठः, महाबाहो, विमूढः, ब्रह्मणः, पथि ॥३८॥

और–

महाबाहो	= हे महाबाहो	इव	= भांति
कच्चित्	= क्या (वह)		
ब्रह्मणः	= भगवत्प्राप्तिके	उभयविभ्रष्टः	= दोनों ओरसे अर्थात् भगवत्प्राप्ति और सांसारिक भोगोंसे भ्रष्ट हुआ
पथि	= मार्गमें		
विमूढः	= मोहित हुआ		
अप्रतिष्ठः	= आश्रयरहित पुरुष		
छिन्नाभ्रम्	= छिन्नभिन्न बादलकी	न नश्यति	= नष्ट तो नहीं हो जाता है ?

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥

एतत्, मे, संशयम्, कृष्ण, छेत्तुम्, अर्हसि, अशेषतः,
त्वदन्यः, संशयस्य, अस्य, छेत्ता, न, हि, उपपद्यते ॥३९॥

कृष्ण	=हे कृष्ण	हि	=क्योंकि
मे	=मेरे	त्वदन्य	=आपके सिवाय दूसरा
एतत्	=इस		
संशयम्	=संशयको	अस्य	=इस
अशेषतः	=संपूर्णतासे	संशयस्य	=संशयका
छेत्तुम्	=छेदन करनेके लिये	छेत्ता	=छेदन करनेवाला
	(आप ही)	न उपपद्यते	=मिलना सम्भव नहीं है
अर्हसि	=योग्य हैं		

श्रीभगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥

पार्थ, न, एव, इह, न, अमुत्र, विनाशः, तस्य, विद्यते, न, हि, कल्याणकृत्, कश्चित्, दुर्गतिम्, तात गच्छति ॥४०॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले—

पार्थ	=हे पार्थ	एव	=ही
तस्य	=उस पुरुषका	विनाशः	=नाश
न	=न तो	विद्यते	=होता है
इह	=इस लोकमें (और)	हि	=क्योंकि
न	=न	तात	=हे प्यारे
अमुत्र	=परलोकमें	कश्चित्	=कोई भी

कल्याण-कृत्	= शुभ कर्म करनेवाला अर्थात् भगवत्-अर्थ कर्म करनेवाला	दुर्गतिम्	= दुर्गतिको
		न	= नहीं
		गच्छति	= प्राप्त होता है

प्राप्य पुण्यकृतां लोका-
नुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे
योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥

प्राप्य, पुण्यकृताम्, लोकान्, उषित्वा, शाश्वती, समा,
शुचीनाम्, श्रीमताम्, गेहे, योगभ्रष्ट, अभिजायते ॥४१॥

किन्तु वह-

योगभ्रष्ट	= योगभ्रष्ट पुरुष	समा	= वर्षोंतक
पुण्य-कृताम्	= पुण्यवानोंके	उषित्वा	= वास करके
लोकान्	= लोकोंको अर्थात् स्वर्गादिक उत्तम लोकोंको	शुचीनाम्	= शुद्ध आचरण-वाले
प्राप्य	= प्राप्त होकर (उनमें)	श्रीमताम्	= श्रीमान् पुरुषोंके
		गेहे	= घरमें
शाश्वती	= बहुत	अभिजायते	= जन्म लेता है

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥

अथवा, योगिनाम्, एव, कुले, भवति, धीमताम्,
एतत्, हि, दुर्लभतरम्, लोके, जन्म, यत्, ईदृशम् ॥४२॥

अथवा	=अथवा		(परन्तु)
	(वैराग्यवान् पुरुष उन लोकोंमें न जाकर)	ईदृशम्	=इस प्रकारका
		यत्	=जो
		एतत्	=यह
धीमताम्	=ज्ञानवान्	जन्म	=जन्म है (सो)
योगिनाम्	=योगियोंके	लोके	=संसारमें
एव	=ही	हि	=निःसन्देह
कुले	=कुलमें	दुर्लभतरम्	=अति दुर्लभ है
भवति	=जन्म लेता है		

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥

तत्र, तम्, बुद्धिसंयोगम्, लभते, पौर्वदेहिकम्,
यतते, च, ततः, भूयः, संसिद्धौ, कुरुनन्दन ॥४३॥

और वह पुरुष—

तत्र	=वहां	पौर्वदेहिकम्	= { पहिले शरीरमें साधन किये हुए
तम्	=उस		

बुद्धि-संयोगम् = बुद्धिके संयोगको अर्थात् समत्व-बुद्धियोगके संस्कारोंको	कुरुनन्दन = हे कुरुनन्दन
	ततः = उसके प्रभावसे
	भूयः = फिर
(अनायास ही)	(अच्छी प्रकार)
लभते = प्राप्त हो जाता है	संसिद्धौ = भगवत्प्राप्तिके निमित्त
च = और	यतते = यत्न करता है

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥

पूर्वाभ्यासेन, तेन, एव, ह्रियते, हि, अवशः, अपि, सः, जिज्ञासुः, अपि, योगस्य, शब्दब्रह्म, अतिवर्तते ॥४४॥

और-

सः = वह*	एव = ही
अवशः = विषयोंके वशमें हुआ	हि = निःसन्देह
अपि = भी	ह्रियते = भगवत्की ओर आकर्षित किया जाता है
तेन = उस	
पूर्वाभ्यासेन = पहिलेके अभ्याससे	(तथा)

* यहाँ "वह" शब्दसे श्रीमानोंके घरमें जन्म लेनेवाला योगभ्रष्ट पुरुष समझना चाहिये ।

योगस्य = समत्वबुद्धिरूप योगका

जिज्ञासु = जिज्ञासु

अपि = भी

शब्दब्रह्म = वेदमें कहे हुए सकाम कर्मोंके फलको

अतिवर्तते = उल्लंघन कर जाता है

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥

प्रयत्नात्, यतमान, तु, योगी, सशुद्धकिल्बिष,
अनेकजन्मससिद्ध, तत, याति, पराम्, गतिम् ॥४५॥

जब कि इस प्रकार मन्द प्रयत्न करनेवाला योगी भी परमगतिको प्राप्त हो जाता है तब क्या कहना है कि—

अनेकजन्मससिद्ध = अनेक जन्मोंसे अन्त करणकी शुद्धिरूप सिद्धिको प्राप्त हुआ

तु = और

प्रयत्नात् = अति प्रयत्नसे

यतमानः = अभ्यास करनेवाला

योगी = योगी

सशुद्धकिल्बिष = सपूर्ण पापोंसे अच्छी प्रकार शुद्ध होकर

तत = उस साधनके प्रभावसे

पराम् = परम

गतिम् = गतिको

याति = प्राप्त होता है अर्थात् परमात्माको प्राप्त होता है

तपस्विभ्योऽधिको योगी
ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी
तस्माद्योगी भवार्जुन ॥४६॥

तपस्विभ्य , अधिक , योगी, ज्ञानिभ्य , अपि, मत , अधिकः,
कर्मिभ्य , च, अधिक , योगी, तस्मात्, योगी, भव, अर्जुन ॥४६॥

क्योंकि—

योगी	=योगी	कर्मिभ्य	=सकाम कर्म करनेवालोंसे
तपस्विभ्य	=तपस्वियोंसे		(भी)
अधिक	=श्रेष्ठ है	योगी	=योगी
च	=और	अधिक	=श्रेष्ठ है
ज्ञानिभ्य	=शास्त्रके ज्ञान-वालोंसे	तस्मात्	=इससे
अपि	=भी	अर्जुन	=हे अर्जुन
अधिक	=श्रेष्ठ		(तू)
मत	=माना गया है	योगी	=योगी
	(तथा)	भव	=हो

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

योगिनाम्, अपि, सर्वेषाम्, मद्गतेन, अन्तरात्मना,
श्रद्धावान्, भजते, य , माम्, स , मे, युक्ततम., मत ॥४७॥

और हे प्यारे

सर्वेषाम्	=संपूर्ण	अन्तरात्मना	=अन्तरात्मासे
योगिनाम्	=योगियोंमें	माम्	=मेरेको
अपि	=भी	भजते	=निरन्तर भजता है
यः	=जो	सः	=वह योगी
श्रद्धावान्	=श्रद्धावान् योगी	मे	=मुझे
		युक्ततमः	=परमश्रेष्ठ
मद्गतेन	=मेरेमें लगे हुए	मतः	=मान्य है

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्म-
विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-
संवादे आत्मसंयमयोगो नाम
षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा
योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके
संवादमें "आत्म संयमयोग"
नामक छठा अध्याय।

हरिः ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥

मयि, आसक्तमनाः, पार्थ, योगम्, युञ्जन्, मदाश्रयः,
असंशयम्, समग्रम्, माम्, यथा, ज्ञास्यसि, तत्, शृणु ॥ १ ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् बोले—

पार्थ = हे पार्थ (तू)
मयि = मेरेमें
आसक्तमनाः = अनन्य प्रेमसे आसक्त हुए मनवाला (और)
(अनन्य भावसे)
मदाश्रयः = मेरे परायण
योगम् = योगमें
युञ्जन् = लगा हुआ
माम् = मुझको

समग्रम् = संपूर्ण विभूति बल ऐश्वर्यादि गुणोंसे युक्त सबका आत्मरूप
यथा = जिस प्रकार
असंशयम् = संशयरहित
ज्ञास्यसि = जानेगा
तत् = उसको
शृणु = सुन

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

ज्ञानम्, ते, अहम्, सविज्ञानम्, इदम्, वक्ष्यामि, अशेषत:, यत्, ज्ञात्वा, न, इह, भूय:, अन्यत्, ज्ञातव्यम्, अवशिष्यते ॥२॥

अहम्	=मैं	ज्ञात्वा	=जानकर
ते	=तेरेलिये	इह	=संसारमें
इदम्	=इस	भूय:	=फिर
सविज्ञानम्	=रहस्यसहित		
ज्ञानम्	=तत्त्वज्ञानको	अन्यत्	=और कुछ भी
अशेषत:	=संपूर्णतासे	ज्ञातव्यम्	=जाननेयोग्य
वक्ष्यामि	=कहूंगा (कि)	न अवशिष्यते	=शेष नहीं रहता है
यत्	=जिसको		

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

मनुष्याणाम्, सहस्रेषु, कश्चित्, यतति, सिद्धये, यतताम्, अपि, सिद्धानाम्, कश्चित्, माम्, वेत्ति, तत्त्वत: ॥ ३ ॥

परन्तु–

सहस्रेषु	=हजारों	सिद्धये	=मेरी प्राप्तिके लिये
मनुष्याणाम्	=मनुष्योंमें		
कश्चित्	=कोई ही मनुष्य	यतति	=यत्न करता है

(और)		माम्	=मेरेको
यतताम्	=उन यत्न करनेवाले		
सिद्धानाम्	=योगियोंमें	तत्त्वत	=तत्त्वसे
अपि	=भी		
कश्चित्	=कोई ही पुरुष (मेरे परायण हुआ)	वेत्ति	=जानता है अर्थात् यथार्थ मर्मसे जानता है

भूमिरापोऽनलो वायु' खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

भूमि', आप, अनल, वायु, खम्, मन, बुद्धि, एव, च, अहकार', इति, इयम्, मे, भिन्ना, प्रकृति, अष्टधा ॥४॥

और हे अर्जुन–

भूमि	=पृथिवी	अहकार	=अहकार
आप	=जल	एव	=भी
अनल	=अग्नि	इति	=ऐसे
वायु	=वायु (और)	इयम्	=यह
खम्	=आकाश (तथा)	अष्टधा	=आठ प्रकारसे
मन	=मन	भिन्ना	=विभक्त हुई
बुद्धि	=बुद्धि	मे	=मेरी
च	=और	प्रकृति	=प्रकृति है

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

अपरा, इयम्, इतः, तु, अन्याम्, प्रकृतिम्, विद्धि, मे, पराम्, जीवभूताम्, महाबाहो, यया, इदम्, धार्यते, जगत् ॥ ५ ॥

सो–

- इयम् = यह (आठ प्रकार-के भेदोंवाली)
- तु = तो
- अपरा = अपरा है अर्थात् मेरी जड़ प्रकृति है (और)
- महाबाहो = हे महाबाहो
- इतः = इससे
- अन्याम् = दूसरीको
- मे = मेरी

- जीवभूताम् = जीवरूप
- पराम् = परा अर्थात् चेतन
- प्रकृतिम् = प्रकृति
- विद्धि = जान (कि)
- यया = जिससे
- इदम् = यह (संपूर्ण)
- जगत् = जगत्
- धार्यते = धारण किया जाता है

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥

एतद्योनीनि, भूतानि, सर्वाणि, इति, उपधारय, अहम्, कृत्स्नस्य, जगतः, प्रभवः, प्रलयः, तथा ॥ ६ ॥

और हे अर्जुन ! तू–

- इति = ऐसा
- उपधारय = समझ (कि)
- सर्वाणि = सपूर्ण
- भूतानि = भूत

- एतद्योनीनि = इन दोनों प्रकृतियोंसे ही उत्पत्तिवाले हैं (और)

अहम्	=मैं	प्रभव	=उत्पत्ति
कृत्स्नस्य	=सपूर्ण	तथा	=तथा
जगत	=जगत्का	प्रलय	=प्रलयरूप हू-

अर्थात् सपूर्ण जगत्का मूलकारण हू-

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

मत्त., परतरम्, न, अन्यत्, किंचित्, अस्ति, धनजय,
मयि, सर्वम्, इदम्, प्रोतम्, सूत्रे, मणिगणा, इव॥७॥

इसलिये-

धनजय	=हे धनजय	इदम्	=यह
मत्त	=मेरेसे	सर्वम्	=सपूर्ण (जगत्)
परतरम्	=सिवाय	सूत्रे	=सूत्रमें
किंचित्	=किंचित् मात्र भी	मणिगणा	=(सूत्रके) मणियोंके
अन्यत्	=दूसरी वस्तु	इव	=सदृश
न	=नहीं	मयि	=मेरेमें
अस्ति	=है	प्रोतम्	=गुंथा हुआ है

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥

रस, अहम्, अप्सु, कौन्तेय, प्रभा, अस्मि, शशिसूर्ययो,
प्रणव, सर्ववेदेषु, शब्द, खे, पौरुषम्, नृषु॥८॥

कैसे कि—

कौन्तेय	=हे अर्जुन	सर्ववेदेषु	=सम्पूर्ण वेदोंमें
अप्सु	=जलमें	प्रणव	=ओंकार हूं (तथा)
अहम्	=मैं		
रस	=रस हूं (तथा)	खे	=आकाशमें
शशिसूर्ययो	=चन्द्रमा और सूर्यमें	शब्द	=शब्द (और)
प्रभा	=प्रकाश	नृषु	=पुरुषोंमें
अस्मि	=हूं (और)	पौरुषम्	=पुरुषत्व हूं

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥

पुण्यः, गन्धः, पृथिव्याम्, च, तेजः, च, अस्मि, विभावसौ, जीवनम्, सर्वभूतेषु, तपः, च, अस्मि, तपस्विषु ॥ ९ ॥

तथा—

पृथिव्याम्	=पृथिवीमें	तेजः	=तेज
पुण्यः	=पवित्र*	अस्मि	=हूं
गन्धः	=गन्ध	च	=और
च	=और	सर्वभूतेषु	=सम्पूर्ण भूतोंमें (उनका)
विभावसौ	=अग्निमें		

* शब्द स्पर्श रूप रस गन्धसे इस प्रसङ्गमें इनके कारणरूप तन्मात्राओंका ग्रहण है इस बातको स्पष्ट करनेके लिये उनके साथ पवित्र शब्द जोड़ा गया है ।

जीवनम्	= जीवन हूं अर्थात् जिससे वे जीते हैं वह मैं हूं	च	= और
		तपस्विषु	= तपस्वियोंमें
		तप	= तप
		अस्मि	= हूं

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्॥

बीजम्, माम्, सर्वभूतानाम्, विद्धि, पार्थ, सनातनम्,
बुद्धिः, बुद्धिमताम्, अस्मि, तेजः, तेजस्विनाम्, अहम् ॥१०॥

तथा–

पार्थ	= हे अर्जुन (तू)	अहम्	= मैं
सर्वभूतानाम्	= संपूर्ण भूतोंका	बुद्धिमताम्	= बुद्धिमानोंकी
		बुद्धिः	= बुद्धि
सनातनम्	= सनातन		(और)
बीजम्	= कारण	तेजस्विनाम्	= तेजस्वियोंका
माम्	= मेरेको ही	तेजः	= तेज
विद्धि	= जान	अस्मि	= हूं

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥

बलम्, बलवताम्, च, अहम्, कामरागविवर्जितम्,
धर्माविरुद्धः, भूतेषु, कामः, अस्मि, भरतर्षभ ॥११॥

और—

भरतर्षभ	=हे भरतश्रेष्ठ	च	=और
अहम्	=मैं	भूतेषु	=सब भूतोंमें
बलवताम्	=बलवानोंका	धर्माविरुद्ध	=धर्मके अनुकूल अर्थात् शास्त्रके अनुकूल
कामराग-विवर्जितम्	=आसक्ति और कामनाओंसे रहित		
बलम्	=बल अर्थात् सामर्थ्य हूं	काम	=काम
		अस्मि	=हूं

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥

ये, च, एव, सात्त्विका, भावा', राजसा' तामसा, च, ये,
मत्त, एव, इति, तान्, विद्धि, न, तु, अहम्, तेषु, ते, मयि॥१२॥

तथा—

च	=और	च	=और
एव	=भी	ये	=जो
ये	=जो	राजसा	=रजोगुणसे (तथा)
सात्त्विका	=सत्त्वगुणसे उत्पन्न होनेवाले	तामसा	=तमोगुणसे होनेवाले भाव हैं
भावा	=भाव हैं		

तान्	=उन सबको (तू)		(वास्तवमें)*
मत्त.	=मेरेसे	तेषु	=उनमें
एव	=ही (होनेवाले हैं)	अहम्	=मैं (और)
इति	=ऐसा	ते	=वे
विद्धि	=जान	मयि	=मेरेमें
तु	=परन्तु	न	=नहीं हैं

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥

त्रिभि, गुणमयै, भावै, एभि, सर्वम्, इदम्, जगत्,
मोहितम्, न, अभिजानाति, माम्, एभ्य, परम्, अव्ययम्॥१३॥

किन्तु—

गुणमयै	=गुणोंके कार्यरूप (सात्त्विक राजस और तामस)	इदम्	=यह
		सर्वम्	=सब
		जगत्	=संसार
एभि	=इन	मोहितम्	=मोहित हो रहा है (इसलिये)
त्रिभि	=तीनों प्रकारके		
भावै	=भावोंसे †	एभ्य	=इन तीनों गुणोंसे

* गीता अध्याय ९ श्लोक ४-५ में देखना चाहिये।
† अर्थात् रागद्वेषादि विकारोंसे और सम्पूर्ण विषयोंसे।

परम्	=परे	न अभिजानाति	=तत्त्वसे नहीं जानता
माम्	=मुझ		
अव्ययम्	=अविनाशीको		

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

दैवी, हि, एषा, गुणमयी, मम, माया, दुरत्यया,
माम्, एव, ये, प्रपद्यन्ते, मायाम्, एताम्, तरन्ति, ते ॥१४॥

हि	=क्योंकि	माम्	=मेरेको
एषा	=यह	एव	=ही
दैवी	=अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत	प्रपद्यन्ते	=निरन्तर भजते हैं
गुणमयी	=त्रिगुणमयी	ते	=वे
मम	=मेरी	एताम्	=इस
माया	=योगमाया	मायाम्	=मायाको
दुरत्यया	=बड़ी दुस्तर है (परन्तु)	तरन्ति	=उल्लङ्घन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं
ये	=जो पुरुष		

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

न, माम्, दुष्कृतिन, मूढा, प्रपद्यन्ते, नराधमा,
मायया, अपहृतज्ञाना, आसुरम्, भावम्, आश्रिता ॥१५॥

ऐसा सुगम उपाय होनेपर भी–

मायया	=मायाद्वारा		(और)
अपहृत-ज्ञाना	= हरे हुए ज्ञान-वाले (और)	दुष्कृतिन	= दूषित कर्म करनेवाले
आसुरम्	=आसुरी	मूढा	=मूढ लोग (तो)
भावम्	=स्वभावको	माम्	=मेरेको
आश्रिता	=धारण किये हुए (तथा)	न	=नहीं
नराधमा	=मनुष्योंमें नीच	प्रपद्यन्ते	=भजते हैं

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

चतुर्विधा, भजन्ते, माम्, जना, सुकृतिन, अर्जुन,
आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी, च, भरतर्षभ ॥१६॥

और–

भरतर्षभ	= हे भरत-वंशियोंमें श्रेष्ठ	अर्थार्थी	=अर्थार्थी*
		आर्त्त	=आर्त्त†
अर्जुन	=अर्जुन	जिज्ञासु	=जिज्ञासु‡
सुकृतिन	=उत्तम कर्मवाले	च	=और

---

* सासारिक पदार्थोंके लिये भजनेवाला।

† सङ्कट निवारणके लिये भजनेवाला।

‡ मेरेको यथार्थरूपसे जाननेकी इच्छासे भजनेवाला।

ज्ञानी	= { ज्ञानी अर्थात् निष्कामी (ऐसे)	जना	= भक्तजन
		माम्	= मेरेको
चतुर्विधा	= चार प्रकारके	भजन्ते	= भजते हैं

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥

तेषाम्, ज्ञानी, नित्ययुक्त, एकभक्ति, विशिष्यते,
प्रिय, हि, ज्ञानिन, अत्यर्थम्, अहम्, स, च, मम, प्रिय ॥ १७ ॥

तेषाम्	= उनमें (भी)	ज्ञानिन	= { (मेरेको तत्त्वसे जाननेवाले) ज्ञानीको
नित्ययुक्त	= { नित्य मेरेमें एकीभावसे स्थित हुआ	अहम्	= मैं
		अत्यर्थम्	= अत्यन्त
एकभक्तिः	= { अनन्य प्रेम-भक्तिवाला	प्रिय	= प्रिय हूं
		च	= और
ज्ञानी	= ज्ञानी भक्त	स	= वह ज्ञानी
विशिष्यते	= अति उत्तम है	मम	= मेरेको (अत्यन्त)
हि	= क्योंकि	प्रिय.	= प्रिय है

उदाराः सर्व एवैते
ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा
मामेवानुत्तमां गतिम् ॥ १८ ॥

उदारा, सर्वे, एव, एते, ज्ञानी, तु, आत्मा, एव, मे, मतम्,
आस्थित, स, हि, युक्तात्मा, माम्, एव, अनुत्तमाम्, गतिम् ॥

यद्यपि-

एते =यह
सर्वे =सब
एव =ही
उदारा = उदार हैं अर्थात् श्रद्धासहित मेरे भजनके लिये समय लगानेवाले होनेसे उत्तम हैं
तु =परन्तु
ज्ञानी =ज्ञानी (तो) (साक्षात्)
आत्मा =मेरा स्वरूप
एव =ही है (ऐसा)
मे =मेरा
मतम् =मत है
हि =क्योंकि
स =वह
युक्तात्मा = स्थिरबुद्धि (ज्ञानी भक्त)
अनुत्तमाम् =अति उत्तम
गतिम् =गतिस्वरूप
माम् =मेरेमें
एव =ही
आस्थित = अच्छी प्रकार स्थित है

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

बहूनाम्, जन्मनाम्, अन्ते, ज्ञानवान्, माम्, प्रपद्यते,
वासुदेव, सर्वम्, इति, स, महात्मा, सुदुर्लभ ॥ १९ ॥

और जो-

बहूनाम् =बहुत
जन्मनाम् =जन्मोंके

अन्ते	=अन्तके जन्ममें	इति	=इस प्रकार
ज्ञानवान्	=तत्त्वज्ञानको प्राप्त हुआ ज्ञानी	माम्	=मेरेको
		प्रपद्यते	=भजता है
सर्वम्	=सब कुछ	सः	=वह
		महात्मा	=महात्मा
वासुदेवः	=वासुदेव ही है*	सुदुर्लभः	=अति दुर्लभ है

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥

कामैः, तैः, तैः, हृतज्ञानाः, प्रपद्यन्ते, अन्यदेवताः, तम्, तम्, नियमम्, आस्थाय, प्रकृत्या नियताः, स्वया ॥ २० ॥

और हे अर्जुन ! जो विषयासक्त पुरुष हैं वे तो—

स्वया	=अपने	तम्	=उस
प्रकृत्या	=स्वभावसे	नियमम्	=नियमको
नियताः	=प्रेरे हुए (तथा)	आस्थाय	=धारण करके†
तैः	=उन		
तैः	=उन	अन्यदेवताः	=अन्य देवताओंको
कामैः	=भोगोंकी कामनाद्वारा		
हृतज्ञानाः	=ज्ञानसे भ्रष्ट हुए	प्रपद्यन्ते	=भजते हैं अर्थात् पूजते हैं
तम्	=उस		

---

* अर्थात् वासुदेवके सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं ।

† अर्थात् जिस देवताकी पूजाके लिये जो जो नियम लोकमें प्रसिद्ध है उस उस नियमको धारण करके ।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥

य, य, याम्, याम्, तनुम्, भक्तः, श्रद्धया, अर्चितुम्, इच्छति,
तस्य, तस्य, अचलाम्, श्रद्धाम्, ताम्, एव, विदधामि, अहम् ॥२१॥

य	=जो	इच्छति	=चाहता है
य	=जो	तस्य	=उस
भक्त	=सकामी भक्त	तस्य	=उस भक्तकी
याम्	=जिस	अहम्	=मैं
याम्	=जिस	ताम् एव	=उस ही देवताके प्रति
तनुम्	=देवताके स्वरूपको	श्रद्धाम्	=श्रद्धाको
श्रद्धया	=श्रद्धासे	अचलाम्	=स्थिर
अर्चितुम्	=पूजना	विदधामि	=करता हूं

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥

स, तया, श्रद्धया, युक्त, तस्य, आराधनम्, ईहते,
लभते, च, ततः, कामान्, मया, एव, विहितान्, हि, तान् ॥२२॥

तथा–

स	=वह पुरुष	श्रद्धया	=श्रद्धासे
तया	=उस	युक्त	=युक्त हुआ

तस्य	= उस देवताके	एव	= ही
आराधनम्	= पूजनकी	विहितान्	= विधान किये हुए
ईहते	= चेष्टा करता है	तान्	= उन
च	= और	कामान्	= इच्छित भोगोंको
ततः	= उस देवतासे	हि	= निःसन्देह
मया	= मेरेद्वारा	लभते	= प्राप्त होता है

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥

अन्तवत्, तु, फलम्, तेषाम्, तत्, भवति अल्पमेधसाम्, देवान्, देवयजः, यान्ति, मद्भक्ताः, यान्ति, माम्, अपि ॥२३॥

तु	= परन्तु	देवान्	= देवताओंको
तेषाम्	= उन	यान्ति	= प्राप्त होते हैं (और)
अल्पमेधसाम्	= अल्पबुद्धिवालोंका	मद्भक्ताः	= मेरे भक्त (चाहे जैसे ही भजें शेषमें वे)
तत्	= वह	माम्	= मेरेको
फलम्	= फल	अपि	= ही
अन्तवत्	= नाशवान्	यान्ति	= प्राप्त होते हैं
भवति	= है (तथा वे)		
देवयजः	= देवताओंको पूजनेवाले		

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥

अव्यक्तम्, व्यक्तिम्, आपन्नम्, मन्यन्ते, माम्, अबुद्धय, परम्, भावम्, अजानन्त, मम, अव्ययम्, अनुत्तमम् ॥२४॥

ऐसा होनेपर भी सब मनुष्य मेरा भजन नहीं करते इसका कारण यह है कि—

अबुद्धय	=बुद्धिहीन पुरुष	अजानन्त	=तत्त्वसे न जानते हुए
मम	=मेरे		
अनुत्तमम्	=अनुत्तम अर्थात् जिससे उत्तम और कुछ भी नहीं ऐसे	अव्यक्तम्	=मन इन्द्रियोंसे परे
अव्ययम्	=अविनाशी	माम्	=मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्माको (मनुष्यकी भांति जन्मकर)
परम्	=परम		
भावम्	=भावको अर्थात् अजन्मा अविनाशी हुआ भी अपनी मायासे प्रकट होता है ऐसे प्रभावको	व्यक्तिम्	=व्यक्तिभावको
		आपन्नम्	=प्राप्त हुआ
		मन्यन्ते	=मानते हैं

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥

न, अहम्, प्रकाशः, सर्वस्य, योगमायासमावृतः, मूढः,
अयम्, न, अभिजानाति, लोकः, माम्, अजम्, अव्ययम् ॥२५॥

तथा-

योगमाया-समावृत	= अपनी योगमायासे छिपा हुआ	मूढ	= अज्ञानी
		लोक	= मनुष्य
		माम्	= मुझ
अहम्	= मैं	अजम्	= जन्मरहित
सर्वस्य	= सबके	अव्ययम्	= अविनाशी परमात्माको (तत्त्वसे)
प्रकाश	= प्रत्यक्ष		
न	= नहीं होता हूं (इसलिये)	न	= नहीं
अयम्	= यह	अभिजानाति	= जानता है-

अर्थात् मेरेको जन्मने मरनेवाला समझता है।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥

वेद, अहम्, समतीतानि, वर्तमानानि, च, अर्जुन,
भविष्याणि, च, भूतानि, माम्, तु, वेद, न, कश्चन ॥२६॥

और-

अर्जुन	= हे अर्जुन	च	= और
समतीतानि	= पूर्वमें व्यतीत हुए	वर्तमानानि	= वर्तमानमें स्थित

च	=तथा	तु	=परन्तु
भविष्याणि	=आगे होनेवाले	माम्	=मेरेको
भूतानि	=सब भूतोंको	कश्चन	=कोई भी (श्रद्धाभक्तिरहित पुरुष)
अहम्	=मैं	न	=नहीं
वेद	=जानता हूं	वेद	=जानता है

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन, द्वन्द्वमोहेन, भारत,
सर्वभूतानि, समोहम्, सर्गे, यान्ति, परतप ॥ २७ ॥

क्योंकि—

भारत	=हे भरतवशी	द्वन्द्वमोहेन	=सुखदु खादि द्वन्द्वरूप मोहसे
परतप	=अर्जुन	सर्वभूतानि	=सपूर्ण प्राणी
सर्गे	=ससारमें	समोहम्	=अति अज्ञानताको
इच्छाद्वेषसमुत्थेन	=इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न हुए	यान्ति	=प्राप्त हो रहे हैं

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

येषाम्, तु, अन्तगतम्, पापम्, जनानाम्, पुण्यकर्मणाम्,
ते, द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता, भजन्ते, माम्, दृढव्रता ॥ २८ ॥

तु	=परन्तु		ते	=वे
पुण्य-कर्मणाम्	={(निष्काम-भावसे) श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले		द्वन्द्वमोह-निर्मुक्ता	={रागद्वेषादि द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त हुए (और)
येषाम्	=जिन		दृढव्रता	={दृढनिश्चय-वाले पुरुष
जनानाम्	=पुरुषोंका		माम्	=मेरेको (सब प्रकारसे)
पापम्	=पाप			
अन्तगतम्	=नष्ट हो गया है		भजन्ते	=भजते हैं

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्॥

जरामरणमोक्षाय, माम् आश्रित्य, यतन्ति, ये, ते,
ब्रह्म, तत्, विदुः, कृत्स्नम्, अध्यात्मम्, कर्म, च, अखिलम्॥२९॥

और—

ये	=जो		ते	=वे (पुरुष)
माम्	=मेरे		तत्	=उस
आश्रित्य	=शरण होकर		ब्रह्म	=ब्रह्मको
जरामरण-मोक्षाय	={जरा और मरणसे छूटनेके लिये		च	=तथा
			कृत्स्नम्	=सम्पूर्ण
यतन्ति	=यत्न करते हैं		अध्यात्मम्	=अध्यात्मको

	(और)	कर्म	=कर्मको
अखिलम्	=सम्पूर्ण	विदुः	=जानते हैं

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः॥

साधिभूताधिदैवम्, माम्, साधियज्ञम्, च, ये, विदुः, प्रयाणकाले, अपि, च, माम्, ते, विदुः, युक्तचेतसः ॥३०॥

और–

ये	=जो पुरुष	ते	=वे
साधिभूताधिदैवम्	=अधिभूत और अधिदैवके सहित	युक्तचेतसः	=युक्त चित्तवाले पुरुष
च	=तथा	प्रयाणकाले	=अन्तकालमें
साधियज्ञम्	=अधियज्ञके सहित (सबका आत्मरूप)	अपि	=भी
माम्	=मेरेको	माम्	=मुझको
विदुः	=जानते हैं*	च	=ही
		विदुः	=जानते हैं अर्थात् प्राप्त होते हैं

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

* अर्थात् जैसे भाफ बादल धूम पानी और बर्फ यह सभी जलस्वरूप हैं वैसे ही अधिभूत अधिदैव और अधियज्ञ आदि सब कुछ वासुदेवस्वरूप हैं ऐसे जो जानते हैं।

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

अथाष्टमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥

किम्, तत्, ब्रह्म, किम्, अध्यात्मम्, किम्, कर्म, पुरुषोत्तम,
अधिभूतम्, च, किम्, प्रोक्तम्, अधिदैवम्, किम्, उच्यते ॥१॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचनोंको न समझकर अर्जुन बोला—

पुरुषोत्तम = हे पुरुषोत्तम
तत् = (जिसका आपने वर्णन किया) वह
ब्रह्म = ब्रह्म
किम् = क्या है (और)
अध्यात्मम् = अध्यात्म
किम् = क्या है (तथा)
कर्म = कर्म
किम् = क्या है
च = और
अधिभूतम् = अधिभूत (नामसे)
किम् = क्या
प्रोक्तम् = कहा गया है (तथा)
अधिदैवम् = अधिदैव (नामसे)
किम् = क्या
उच्यते = कहा जाता है

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥

अधियज्ञ., कथम्, क, अत्र, देहे, अस्मिन्, मधुसूदन,
प्रयाणकाले, च, कथम्, ज्ञेय, असि, नियतात्मभि ॥ २ ॥

और-

मधुसूदन	=हे मधुसूदन
अत्र	=यहां
अधियज्ञ	=अधियज्ञ
क	=कौन है
	(और वह)
अस्मिन्	=इस
देहे	=शरीरमें
कथम्	=कैसे है
च	=और
नियतात्मभि	= युक्त चित्त-वाले पुरुषों-द्वारा
प्रयाणकाले	= अन्त समयमें
	(आप)
कथम्	=किस प्रकार
ज्ञेय असि	= जाननेमे आते हो

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥

अक्षरम्, ब्रह्म, परमम्, स्वभाव, अध्यात्मम्, उच्यते,
भूतभावोद्भवकर, विसर्ग, कर्मसंज्ञित ॥ ३ ॥

इस प्रकार अर्जुनके प्रश्न करनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन-

परमम् =परम	उच्यते =कहा जाता है (तथा)
अक्षरम् = { अक्षर अर्थात् जिसका कभी नाश नहीं हो ऐसा सच्चिदानन्दघन परमात्मा तो	भूत-भावोद्भवकरः { भूतोंके भावको उत्पन्न करनेवाला
ब्रह्म =ब्रह्म है (और)	विसर्गः = { शास्त्रविहित यज्ञ दान और होम आदिके निमित्त जो द्रव्यादिकोंका त्याग है वह
स्वभाव = { अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा	
अध्यात्मम् =अध्यात्म (नामसे)	कर्मसञ्ज्ञित' = { कर्मनामसे कहा गया है

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥

अधिभूतम्, क्षर, भाव, पुरुष, च, अधिदैवतम्,

अधियज्ञ, अहम्, एव, अत्र, देहे, देहभृताम्, वर ॥ ४ ॥

तथा—

क्षरः भाव = { उत्पत्ति विनाश धर्मवाले सब पदार्थ	अधिभूतम्=अधिभूत हैं
	च =और

पुरुष	= हिरण्यमय पुरुष	अत्र	= इस
		देहे	= शरीरमें
अधिदैवतम्	= अधिदैव है	अहम्	= मैं वासुदेव
	(और)	एव	= ही
देहभृताम् वर	= हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन		(विष्णुरूपसे)
		अधियज्ञ	= अधियज्ञ हूं

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

अन्तकाले, च, माम्, एव, स्मरन्, मुक्त्वा, कलेवरम्,
यः, प्रयाति, सः, मद्भावम्, याति, न, अस्ति, अत्र, संशयः ॥५॥

यं यं वाऽपि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥

यम्, यम्, वा, अपि, स्मरन्, भावम्, त्यजति, अन्ते, कलेवरम्,
तम्, तम्, एव, एति, कौन्तेय, सदा, तद्भावभावित ॥ ६ ॥

कारण कि–

कौन्तेय	= हे कुन्तीपुत्र अर्जुन	त्यजति	= त्यागता है
(यह मनुष्य)		तम्	= उस
अन्ते	= अन्तकालमें	तम्	= उसको
यम्	= जिस	एव	= ही
यम्	= जिस	एति	= प्राप्त होता है
वा अपि	= भी		(परन्तु)
भावम्	= भावको	सदा	= सदा
स्मरन्	= स्मरण करता हुआ	तद्भाव-भावित	= उस ही भावको चिन्तन करता हुआ
कलेवरम्	= शरीरको		

क्योंकि सदा जिस भावका चिन्तन करता है अन्त-कालमें भी प्राय उसीका स्मरण होता है।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

परमम् =परम (प्रकाशस्वरूप)
दिव्यम् =दिव्य
पुरुषम् =पुरुषको अर्थात् परमेश्वरको ही
याति =प्राप्त होता है

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९ ॥

कविम्, पुराणम्, अनुशासितारम्, अणोः, अणीयांसम्, अनुस्मरेत्, यः, सर्वस्य, धातारम्, अचिन्त्यरूपम्, आदित्यवर्णम्, तमसः, परस्तात् ॥ ९ ॥

इससे-

यः =जो पुरुष
कविम् =सर्वज्ञ
पुराणम् =अनादि
अनुशासितारम् =सबके नियन्ता*
अणोः अणीयांसम् =सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म
सर्वस्य =सबके
धातारम् =धारण पोषण करनेवाले
अचिन्त्यरूपम् =अचिन्त्य-स्वरूप
आदित्यवर्णम् =सूर्यके सदृश नित्य चेतन प्रकाशरूप
तमसः =अविद्यासे

---

* अन्तर्यामीरूपसे सब प्राणियोंके शुभ और अशुभ कर्मके अनुसार शासन करनेवाला ।

तस्मात्, सर्वेषु, कालेषु, माम्, अनुस्मर, युध्य, च,
मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, माम्, एव, एष्यसि, असंशयम् ॥ ७ ॥

तस्मात्	=इसलिये (हे अर्जुन! तू)	मयि	=मेरेमें
सर्वेषु	=सब	अर्पित-मनोबुद्धिः	=अर्पण किये हुए मन बुद्धिसे युक्त हुआ
कालेषु	=समयमें (निरन्तर)	असंशयम्	=निःसन्देह
माम्	=मेरा	माम्	=मेरेको
अनुस्मर	=स्मरण कर	एव	=ही
च	=और	एष्यसि	=प्राप्त होगा
युध्य	=युद्ध भी कर (इस प्रकार)		

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥

अभ्यासयोगयुक्तेन, चेतसा, नान्यगामिना,
परमम्, पुरुषम्, दिव्यम्, याति, पार्थ, अनुचिन्तयन् ॥ ८ ॥

और–

पार्थ	=हे पार्थ (यह नियम है कि)	नान्य-गामिना	=अन्य तरफ न जानेवाले
		चेतसा	=चित्तसे
अभ्यास-योगयुक्तेन	=परमेश्वरके ध्यानके अभ्यासरूप योगसे युक्त	अनु-चिन्तयन्	=निरन्तर चिन्तन करता हुआ पुरुष

परमम्	=परम (प्रकाशस्वरूप)	पुरुषम्	=	पुरुषको अर्थात् परमेश्वरको ही
दिव्यम्	=दिव्य	याति	=	प्राप्त होता है

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९ ॥

कविम्, पुराणम्, अनुशासितारम्, अणोः, अणीयांसम्, अनुस्मरेत्, यः, सर्वस्य, धातारम्, अचिन्त्यरूपम्, आदित्यवर्णम्, तमसः, परस्तात् ॥ ९ ॥

इससे—

यः	=जो पुरुष	धातारम्	=	धारण पोषण करनेवाले
कविम्	=सर्वज्ञ	अचिन्त्यरूपम्	=	अचिन्त्यस्वरूप
पुराणम्	=अनादि	आदित्यवर्णम्	=	सूर्यके सदृश नित्य चेतन प्रकाशरूप
अनुशासितारम्	=सबके नियन्ता*	तमसः	=	अविद्यासे
अणोः अणीयांसम्	=सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म			
सर्वस्य	=सबके			

* अन्तर्यामीरूपसे सब प्राणियोंके शुभ और अशुभ कर्मके अनुसार शासन करनेवाला ।

परस्तात् = अतिपरे शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्माको | अनुस्मरेत् = स्मरण करता है

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१०॥

प्रयाणकाले, मनसा, अचलेन, भक्त्या, युक्तः, योगबलेन, च, एव, भ्रुवोः, मध्ये, प्राणम्, आवेश्य, सम्यक्, सः, तम्, परम्, पुरुषम् उपैति, दिव्यम् ॥१०॥

स = वह
भक्त्या युक्तः = भक्तियुक्त पुरुष
प्रयाणकाले = अन्तकालमें (भी)
योगबलेन = योगबलसे
भ्रुवोः = भृकुटीके
मध्ये = मध्यमें
प्राणम् = प्राणको
सम्यक् = अच्छी प्रकार

आवेश्य = स्थापन करके
च = फिर
अचलेन = निश्चल
मनसा = मनसे
(स्मरन्) = स्मरण करता हुआ
तम् = उस
दिव्यम् = दिव्यस्वरूप
परम् पुरुषम् = परम पुरुष परमात्माको

एव	=ही	उपैति	=प्राप्त होता है

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥

यत्, अक्षरम्, वेदविदः, वदन्ति, विशन्ति, यत्, यतय, वीतरागा, यत्, इच्छन्त, ब्रह्मचर्यम्, चरन्ति, तत्, ते, पदम्, सग्रहेण, प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

और हे अर्जुन–

वेदविदः	=वेदके जानने-वाले (विद्वान्)	विशन्ति	=प्रवेश करते हैं (तथा)
यत्	=जिस सच्चिदा-नन्दघनरूप परमपदको	यत्	=जिस परमपदको
		इच्छन्त	=चाहनेवाले
अक्षरम्	=ओंकार (नामसे)	ब्रह्मचर्यम्	=ब्रह्मचर्यका
वदन्ति	=कहते हैं (और)	चरन्ति	=आचरण करते हैं
वीतरागा	=आसक्तिरहित		
यतय	=यत्नशील महात्माजन	तत्	=उस
		पदम्	=परमपदको
यत्	=जिसमें	ते	=तेरे लिये

संग्रहेण =सक्षेपसे | प्रवक्ष्ये =कहूंगा

सर्वद्वाराणि संयम्य
मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राण-
मास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥

सर्वद्वाराणि, सयम्य, मन, हृदि, निरुध्य, च,
मूर्ध्नि, आधाय, आत्मन, प्राणम्, आस्थित, योगधारणाम् ॥१२॥

हे अर्जुन–

सर्वद्वाराणि	= सब इन्द्रियोंके द्वारोंको	च	= और
सयम्य	= रोककर अर्थात् इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर	आत्मन	= अपने
(तथा)		प्राणम्	= प्राणको
मन	= मनको	मूर्ध्नि	= मस्तकमें
हृदि	= हृदेशमें	आधाय	= स्थापनकरके
निरुध्य	= स्थिरकरके	योगधारणाम्	= योगधारणामें
		आस्थित	= स्थित हुआ

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

ॐ, इति, एकाक्षरम्, ब्रह्म, व्याहरन्, माम्, अनुस्मरन्,
य, प्रयाति, त्यजन्, देहम्, स, याति, परमाम्, गतिम् ॥१३॥

य	=जो पुरुष	अनुस्मरन्	= चिन्तन करता हुआ
ॐ	=ॐ	देहम्	=शरीरको
इति	=ऐसे (इस)	त्यजन्	=त्यागकर
एकाक्षरम्	=एक अक्षररूप	प्रयाति	=जाता है
ब्रह्म	=ब्रह्मको	स	=वह पुरुष
व्याहरन्	= उच्चारण करता हुआ (और उसके अर्थस्वरूप)	परमाम्	=परम
		गतिम्	=गतिको
माम्	=मेरेको	याति	=प्राप्त होता है

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

अनन्यचेता., सततम्, य, माम्, स्मरति, नित्यश.,
तस्य, अहम्, सुलभ, पार्थ, नित्ययुक्तस्य, योगिन ॥१४॥

और-

पार्थ	=हे अर्जुन	माम्	=मेरेको
य	=जो पुरुष	स्मरति	=स्मरण करता है
अनन्यचेता	= मेरेमें अनन्य चित्तसे स्थित हुआ	तस्य	=उस
नित्यश	=सदा ही	नित्ययुक्तस्य	= निरन्तर मेरेमें युक्त हुए
सततम्	=निरन्तर	योगिन	=योगीके (लिये)

लोका	=सब लोक	माम्	=मेरेको
पुनरावर्तिन	=पुनरावर्ती* स्वभाववाले हैं	उपेत्य	=प्राप्त होकर (उसका)
		पुनर्जन्म	=पुनर्जन्म
तु	=परन्तु	न	=नहीं
कौन्तेय	=हे कुन्तीपुत्र	विद्यते	=होता है-

क्योंकि मै कालातीत हूं और यह सब ब्रह्मादिकोंके लोक कालकरके अवधिवाले होनेसे अनित्य हैं।

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥

सहस्रयुगपर्यन्तम्, अह, यत्, ब्रह्मण, विदु, रात्रिम्, युगसहस्रान्ताम्, ते, अहोरात्रविद, जना ॥१७॥

हे अर्जुन-

ब्रह्मण	=ब्रह्माका	रात्रिम्	=रात्रिको (भी)
यत्	=जो	युग-सहस्रान्ताम्	=हजार चौकड़ी युगतक अवधिवाली
अह	=एक दिन है (उसको)		
सहस्रयुग-पर्यन्तम्	=हजार चौकड़ी युगतक अवधिवाला (और)	(ये)	=जो पुरुष
		विदु	=तत्त्वसे जानते हैं †
		ते	=वे

*अर्थात् जिनको प्राप्त होकर पीछा संसारमें आना पड़े ऐसे।

† अर्थात् कालकरके अवधिवाला होनेसे ब्रह्मलोकको भी अनित्य जानते हैं।

भूतग्राम, स, एव, अयम्, भूत्वा, भूत्वा, प्रलीयते,
रात्र्यागमे, अवश, पार्थ, प्रभवति, अहरागमे ॥१९॥

और-

स =वह
एव =ही
अयम् =यह
भूतग्राम =भूतसमुदाय
भूत्वा भूत्वा ={ उत्पन्न हो होकर
अवश: ={ प्रकृतिके वशमें हुआ
रात्र्यागमे ={ रात्रिके प्रवेश-कालमें
प्रलीयते =लय होता है
(और)
अहरागमे ={ दिनके प्रवेश-कालमें
(फिर)
प्रभवति =उत्पन्न होता है
पार्थ =हे अर्जुन-

इस प्रकार ब्रह्माके एक सौ वर्ष पूर्ण होनेसे अपने लोकसहित ब्रह्मा भी शान्त हो जाता है।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्यो-
ऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु
नश्यत्सु न विनश्यति ॥२०॥

पर, तस्मात्, तु, भाव, अन्य, अव्यक्त, अव्यक्तात्, सनातन, य, स, सर्वेषु, भूतेषु, नश्यत्सु, न, विनश्यति ॥२०॥

तु =परन्तु
तस्मात् =उस
अव्यक्तात् =अव्यक्तसे भी
पर =अति परे
अन्य ={ दूसरा अर्थात् विलक्षण

यः	=जो	सर्वेषु	=सब
सनातनः	=सनातन	भूतेषु	=भूतोंके
अव्यक्तः	=अव्यक्त	नश्यत्सु	=नष्ट होनेपर भी
भावः	=भाव है	न	=नहीं
सः	=वह सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्मा	विनश्यति	=नष्ट होता है

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

अव्यक्तः, अक्षरः, इति, उक्तः, तम्, आहुः, परमाम्, गतिम्, यम्, प्राप्य, न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम ॥२१॥

और जो वह–

अव्यक्तः	=अव्यक्त	यम्	=जिस सनातन अव्यक्त-भावको
अक्षरः	=अक्षर	प्राप्य	=प्राप्त होकर (मनुष्य)
इति	=ऐसे	न निवर्तन्ते	=पीछे नहीं आते हैं
उक्तः	=कहा गया है	तत्	=वह
तम्	=उस ही अक्षर नामक अव्यक्त भावको	मम	=मेरा
परमाम्	=परम	परमम्	=परम
गतिम्	=गति	धाम	=धाम है
आहुः	=कहते हैं (तथा)		

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥

पुरुषः, सः, परः, पार्थ, भक्त्या, लभ्यः, तु, अनन्यया,
यस्य, अन्तःस्थानि, भूतानि, येन, सर्वम्, इदम्, ततम् ॥२२॥

तु	=और	सर्वम्	=सब जगत्
पार्थ	=हे पार्थ	ततम्	=परिपूर्ण है*
यस्य	=जिस परमात्माके	सः	=वह सनातन अव्यक्त
अन्तःस्थानि	=अन्तर्गत	परः	=परम
भूतानि	=सर्व भूत हैं (और)	पुरुषः	=पुरुष
		अनन्यया	=अनन्य†
येन	=जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मासे	भक्त्या	=भक्तिसे
इदम्	=यह	लभ्यः	=प्राप्त होने योग्य है

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥

यत्र, काले, तु, अनावृत्तिम्, आवृत्तिम्, च, एव, योगिनः,
प्रयाताः, यान्ति, तम्, कालम्, वक्ष्यामि, भरतर्षभ ॥२३॥

---

* गीता अध्याय ९ श्लोक ४ में देखना चाहिये ।

† गीता अध्याय ११ श्लोक ५५ में इसका विस्तार देखना चाहिये ।

तु	=और	च	=और
भरतर्षभ	=हे अर्जुन	आवृत्तिम्	=पीछा आने-वाली गतिको
यत्र	=जिस	एव	=भी
काले	=कालमें*	यान्ति	=प्राप्त होते हैं
प्रयाताः	=शरीर त्याग-कर गये हुए	तम्	=उस
योगिन	=योगीजन	कालम्	=कालको अर्थात् मार्गको
अनावृत्तिम्	=पीछा न आने-वाली गतिको	वक्ष्यामि	=कहूंगा

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥

अग्नि, ज्योति, अह, शुक्ल, षण्मासा, उत्तरायणम्, तत्र, प्रयाता, गच्छन्ति, ब्रह्म, ब्रह्मविद, जना ॥२४॥

उन दो प्रकारके मार्गोंमेंसे जिस मार्गमें-

ज्योति.	=ज्योतिर्मय	शुक्ल	=शुक्लपक्षका अभिमानी देवता है (और)
अग्नि	=अग्नि अभिमानी देवता है (और)		
अह	=दिनका अभिमानी देवता है (तथा)	षण्मासा उत्तरायणम्	=उत्तरायणके छ महीनोंका अभिमानी देवता है

* यहां काल शब्दसे मार्ग समझना चाहिये क्योंकि आगेके श्लोकोंमें भगवान्‌ने इसका नाम "सृति" "गति" ऐसा कहा है।

तत्र =उस मार्गमें (उपरोक्त देवताओंद्वारा क्रमसे ले गये हुए)
प्रयाताः =मरकर गये हुए
ब्रह्मविदः =ब्रह्मवेत्ता*
ब्रह्म =ब्रह्मको
जनाः =योगीजन
गच्छन्ति =प्राप्त होते हैं

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः
षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योति-
र्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ २५ ॥

धूम, रात्रि, तथा, कृष्ण, षण्मासा, दक्षिणायनम्
तत्र, चान्द्रमसम् ज्योति, योगी, प्राप्य, निवर्तते ॥२५॥

तथा जिस मार्गमें—

धूम ={ धूमाभिमानी देवता है (और)
रात्रि ={ रात्रि अभिमानी देवता है
तथा =तथा
कृष्ण ={ कृष्णपक्षका अभिमानी देवता है (और)
षण्मासा दक्षिणायनम् ={ दक्षिणायनके छः महीनोंका अभिमानी देवता है
तत्र =उस मार्गमें (मरकर गया हुआ)
योगी ={ सकाम कर्मयोगी

* अर्थात् परमेश्वरकी उपासनासे परमेश्वरको परोक्षभावसे जाननेवाले ।

(उपरोक्त देवताओंद्वारा क्रमसे ले गया हुआ)
चान्द्रमसम् = चन्द्रमाकी
ज्योति = ज्योतिको

प्राप्य = प्राप्त होकर (स्वर्गमें अपने शुभकर्मोंका फल भोगकर)
निवर्तते = पीछा आता है

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥

शुक्लकृष्णे, गती हि, एते, जगत, शाश्वते, मते, एकया, याति, अनावृत्तिम्, अन्यया, आवर्तते, पुन ॥२६॥

हि = क्योंकि
जगत = जगत्के
एते = यह दो प्रकारके
शुक्लकृष्णे = {शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान}
गती = मार्ग
शाश्वते = सनातन

मते = माने गये हैं (इनमें)
एकया = एकके द्वारा (गया हुआ*)
अनावृत्तिम् = {पीछा न आनेवाली परमगतिको}
याति = प्राप्त होता है (और)

---

* अर्थात् इसी अध्यायके श्लोक २४ के अनुसार अर्चिमार्गसे गया हुआ योगी ।

अन्यया	= दूसरेद्वारा (गया हुआ*)	आवर्तते	= आता है अर्थात् जन्म मृत्युको प्राप्त होता है
पुनः	= पीछा		

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥

न, एते, सृती, पार्थ, जानन्, योगी, मुह्यति, कश्चन, तस्मात्, सर्वेषु, कालेषु, योगयुक्त, भव, अर्जुन ॥२७॥

और-

पार्थ	= हे पार्थ (इस प्रकार)	न मुह्यति	= मोहित नहीं होता है†
एते	= इन दोनों	तस्मात्	= इस कारण
सृती	= मार्गोंको	अर्जुन	= हे अर्जुन (तू)
जानन्	= तत्त्वसे जानता हुआ	सर्वेषु	= सब
		कालेषु	= कालमें
कश्चन	= कोई भी	योगयुक्त	= समत्व बुद्धिरूप योगसे युक्त
योगी	= योगी	भव	= हो

अर्थात् निरन्तर मेरी प्राप्तिके लिये साधन करनेवाला हो।

---

* अर्थात् इसी अध्यायके श्लोक २५ के अनुसार धूममार्गसे गया हुआ सकाम कर्मयोगी।

† अर्थात् फिर वह निष्कामभावसे ही साधन करता है, कामनाओंमें नहीं फसता।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥२८॥

वेदेषु, यज्ञेषु, तपःसु, च, एव दानेषु, यत्, पुण्यफलम्, प्रदिष्टम्, अत्येति, तत्, सर्वम्, इदम्, विदित्वा, योगी, परम्, स्थानम्, उपैति, च आद्यम् ॥२८॥

क्योंकि—

योगी	=योगी पुरुष	प्रदिष्टम्	=कहा है
इदम्	=इस रहस्यको	तत्	=उस
विदित्वा	=तत्त्वसे जानकर	सर्वम्	=सबको
वेदेषु	=वेदोंके पढ़नेमें	एव	=निःसन्देह
च	=तथा	अत्येति	=उल्लंघन कर जाता है
यज्ञेषु	=यज्ञ	च	=और
तपःसु	=तप (और)	आद्यम्	=सनातन
दानेषु	=दानादिकोंके करनेमें	परम्	=परम
यत्	=जो	स्थानम्	=पदको
पुण्यफलम्	=पुण्यफल	उपैति	=प्राप्त होता है

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

अथ नवमोऽध्यायः ॥

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्

इदम्, तु, ते, गुह्यतमम्, प्रवक्ष्यामि, अनसूयवे,
ज्ञानम्, विज्ञानसहितम्, यत्, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात् ॥१॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् बोले हे अर्जुन-

ते	=तुझ	प्रवक्ष्यामि	=कहूंगा
अनसूयवे	={ दोषदृष्टिरहित भक्तके लिये	तु	=कि
इदम्	=इस	यत्	=जिसको
गुह्यतमम्	=परम गोपनीय	ज्ञात्वा	=जानकर (तू)
ज्ञानम्	=ज्ञानको	अशुभात्	={ दुःखरूप संसारसे
विज्ञान-सहितम्	=रहस्यके सहित	मोक्ष्यसे	=मुक्त हो जायगा

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥

राजविद्या, राजगुह्यम्, पवित्रम्, इदम्, उत्तमम्
प्रत्यक्षावगमम्, धर्म्यम्, सुसुखम्, कर्तुम्, अव्ययम् ॥ २ ॥

इदम् = यह (ज्ञान)
राजविद्या = सब विद्याओंका राजा (तथा)
राजगुह्यम् = सब गोपनीयोंका भी राजा (एवं)
पवित्रम् = अति पवित्र
उत्तमम् = उत्तम

प्रत्यक्षावगमम् = प्रत्यक्ष फलवाला (और)
धर्म्यम् = धर्मयुक्त है
कर्तुम् = साधन करनेको
सुसुखम् = बड़ा सुगम (और)
अव्ययम् = अविनाशी है

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

अश्रद्दधानाः, पुरुषाः, धर्मस्य, अस्य, परंतप,
अप्राप्य, माम्, निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

और—

परंतप = हे परंतप
अस्य = इस (तत्त्वज्ञानरूप)
धर्मस्य = धर्ममें
अश्रद्दधानाः = श्रद्धारहित
पुरुषाः = पुरुष

माम् = मेरेको
अप्राप्य = न प्राप्त होकर
मृत्युसंसारवर्त्मनि = मृत्युरूप संसारचक्रमें
निवर्तन्ते = भ्रमण करते हैं

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥

मया, ततम्, इदम्, सर्वम्, जगत्, अव्यक्तमूर्तिना,
मत्स्थानि, सर्वभूतानि, न, च, अहम्, तेषु, अवस्थित ॥ ४ ॥

और हे अर्जुन-

मया	=मुझ	सर्व-भूतानि	=सब भूत
अव्यक्त-मूर्तिना	=सच्चिदानन्दघन परमात्मासे	मत्स्थानि	=मेरे अन्तर्गत सकल्पके आधार स्थित हैं (इसलिये वास्तवमें)
इदम्	=यह		
सर्वम्	=सब		
जगत्	=जगत् (जलसे बर्फके सदृश)	अहम्	=मैं
		तेषु	=उनमें
ततम्	=परिपूर्ण है	न अवस्थित.	=स्थित नहीं हू
च	=और		

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥

न, च, मत्स्थानि, भूतानि, पश्य, मे, योगम्, ऐश्वरम्,
भूतभृत्, न, च, भूतस्थ, मम, आत्मा, भूतभावन ॥ ५ ॥

च	=और (वे)	मत्स्थानि	=मेरेमें स्थित
भूतानि	=सब भूत	न	=नहीं हैं (किन्तु)

मे	=मेरी		भूतभावन	=भूतोंको उत्पन्न करनेवाला
योगम्	=योगमाया (और)		च	=भी
ऐश्वरम्	=प्रभावको		मम	=मेरा
पश्य	=देख (कि)		आत्मा	=आत्मा (वास्तवमें)
भूतभृत्	=भूतोंका धारण पोषण करनेवाला (और)		भूतस्थ	=भूतोंमें स्थित
			न	=नहीं है

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय॥

यथा, आकाशस्थित, नित्यम्, वायु, सर्वत्रग, महान्,
तथा, सर्वाणि, भूतानि, मत्स्थानि, इति, उपधारय॥६॥

क्योंकि-

यथा	=जैसे (आकाशसे उत्पन्न हुआ)		तथा	=वैसे ही (मेरे संकल्पद्वारा उत्पत्तिवाले होनेसे)
सर्वत्रग	=सर्वत्र विचरनेवाला			
महान्	=महान्		सर्वाणि	=संपूर्ण
वायु	=वायु		भूतानि	=भूत
नित्यम्	=सदा ही		मत्स्थानि	=मेरेमें स्थित हैं
आकाशस्थित	=आकाशमें स्थित है		इति	=ऐसे
			उपधारय	=जान

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥

सर्वभूतानि, कौन्तेय, प्रकृतिम्, यान्ति, मामिकाम्,
कल्पक्षये पुन, तानि, कल्पादौ, विसृजामि, अहम् ॥७॥

और-

कौन्तेय	=हे अर्जुन		(और)
कल्पक्षये	=कल्पके अन्तमें	कल्पादौ	=कल्पके आदिमें
सर्वभूतानि	=सब भूत		
मामिकाम्	=मेरी	तानि	=उनको
प्रकृतिम्	=प्रकृतिको	अहम्	=मै
यान्ति	=प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृतिमें लय होते हैं	पुन	=फिर
		विसृजामि	=रचता हूं

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥

प्रकृतिम्, स्वाम्, अवष्टभ्य, विसृजामि, पुन, पुन,
भूतग्रामम्, इमम्, कृत्स्नम्, अवशम्, प्रकृते, वशात् ॥ ८ ॥

कैसे कि-

स्वाम्	=अपनी	प्रकृतिम्	=त्रिगुणमयी मायाको

अवष्टभ्य	=अङ्गीकारकरके
प्रकृते	=स्वभावके
वशात्	=वशसे
अवशम्	=परतन्त्र हुए
इमम्	=इस
कृत्स्नम्	=संपूर्ण
भूतग्रामम्	=भूतसमुदायको
पुनः पुनः	=बारम्बार (उनके कर्मोंके अनुसार)
विसृजामि	=रचता हूं

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥

न, च, माम्, तानि, कर्माणि, निबध्नन्ति, धनंजय, उदासीनवत्, आसीनम्, असक्तम्, तेषु, कर्मसु ॥ ९ ॥

धनंजय	=हे अर्जुन
तेषु	=उन
कर्मसु	=कर्मोंमें
असक्तम्	=आसक्तिरहित
च	=और
उदासीनवत्	=उदासीनके सदृश*
आसीनम्	=स्थित हुए
माम्	=मुझ परमात्माको
तानि	=वे
कर्माणि	=कर्म
न	=नहीं
निबध्नन्ति	=बांधते।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

---

* जिसके संपूर्ण कार्य कर्तृत्वभावके बिना अपने आप सत्तामात्रसे होते हैं, उसका नाम उदासीनके सदृश है।

मया, अध्यक्षेण, प्रकृति, सूयते, सचराचरम्,
हेतुना अनेन, कौन्तेय, जगत्, विपरिवर्तते ॥१०॥

और-

कौन्तेय	=हे अर्जुन	सूयते	=रचती है (और)
मया	=मुझ	अनेन	=इस (ऊपर कहे हुए)
अध्यक्षेण	=अधिष्ठानाके सकाशसे (यह मेरी)	हेतुना	=हेतुसे (ही)
प्रकृति	=माया	जगत्	=यह संसार
सचराचरम्	=चराचरसहित सर्व जगत्‌को	विपरिवर्तते	=आवागमन-रूप चक्रमें घूमता है

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥

अवजानन्ति, माम्, मूढा, मानुषीम्, तनुम्, आश्रितम्,
परम्, भावम्, अजानन्त, मम, भूतमहेश्वरम् ॥११॥

ऐसा होनेपर भी-

भूत-महेश्वरम्	=संपूर्ण भूतोंके महान् ईश्वररूप	परम्	=परम
		भावम्	=भावको*
		अजानन्त	=न जाननेवाले
मम	=मेरे	मूढा	=मूढलोग

---

* गीता अध्याय ७ श्लोक २४ में देखना चाहिये ।

मानुषीम्	= मनुष्यका	माम्	= { मुझ परमात्माको
तनुम्	= शरीर		
आश्रितम्	= धारण करनेवाले	अवजानन्ति	= { तुच्छ समझते हैं

अर्थात् अपनी योगमायासे संसारके उद्धारके लिये मनुष्यरूपमें विचरते हुएको साधारण मनुष्य मानते हैं।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥

मोघाशा, मोघकर्माण, मोघज्ञाना, विचेतस, राक्षसीम्, आसुरीम्, च, एव, प्रकृतिम्, मोहिनीम्, श्रिताः॥१२॥

जो कि–

मोघाशा	= वृथा आशा	आसुरीम्	= असुरोंके (जैसे)
मोघकर्माण	= वृथा कर्म (और)	मोहिनीम्	= { मोहित करनेवाले (तामसी)
मोघज्ञाना	= वृथा ज्ञानवाले	प्रकृतिम्	= स्वभावको*
विचेतस	= अज्ञानीजन	एव	= ही
राक्षसीम्	= राक्षसोंके	श्रिता	= { धारण किये हुए हैं
च	= और		

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥

---

* जिसको आसुरी सम्पदाके नामसे विस्तारपूर्वक भगवान्‌ने गीता अध्याय १६ श्लोक ४ तथा श्लोक ७ से २१ तक कहा है।

महात्मानः, तु, माम्, पार्थ, दैवीम्, प्रकृतिम्, आश्रिता,
भजन्ति, अनन्यमनस, ज्ञात्वा, भूतादिम्, अव्ययम् ॥ १३ ॥

तु	=परन्तु			(और)
पार्थ	=हे कुन्तीपुत्र	अव्ययम्	=	नाशरहित अक्षरस्वरूप
दैवीम्	=दैवी			
प्रकृतिम्	=प्रकृतिके*	ज्ञात्वा	=	जानकर
आश्रिता	=आश्रित हुए			
महात्मान	=जो महात्मा-जन हैं (वे तो)	अनन्य-मनस	=	अनन्य मनसे युक्त
माम्	=मेरेको	(सन्त)	=	हुए
भूतादिम्	=सब भूतोंका सनातन कारण	भजन्ति	=	निरन्तर भजते हैं

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

सततम्, कीर्तयन्त, माम्, यतन्त, च, दृढव्रता,
नमस्यन्त, च, माम्, भक्त्या, नित्ययुक्ता, उपासते ॥ १४ ॥

और वे-

दृढव्रता	=दृढ निश्चयवाले भक्तजन	सततम्	=निरन्तर

---

* इसका विस्तारपूर्वक वर्णन गीता अध्याय १६ श्लोक १-२-३ में देखना चाहिये ।

कीर्तयन्त	=मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए	नमस्यन्त	=बारम्बार प्रणाम करते हुए
च	=तथा (मेरी प्राप्तिके लिये)	नित्ययुक्ता	=सदा मेरे ध्यानमें युक्त हुए
यतन्त	=यत्न करते हुए	भक्त्या	=अनन्यभक्तिसे
च	=और	माम्	=मुझे
माम्	=मेरेको	उपासते	=उपासते हैं

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥

ज्ञानयज्ञेन, च, अपि, अन्ये, यजन्त, माम्, उपासते, एकत्वेन, पृथक्त्वेन, बहुधा, विश्वतोमुखम् ॥१५॥

उनमें कोई तो–

माम्	=मुझ	(उपासते)	=उपासते हैं (और)
विश्वतो-मुखम्	=विराट्स्वरूप परमात्माको	अन्ये	=दूसरे
ज्ञानयज्ञेन	=ज्ञानयज्ञके द्वारा	पृथक्त्वेन	=पृथक्त्वभावसे अर्थात् स्वामी सेवकभावसे
यजन्त	=पूजन करते हुए	च	=और (कोई कोई)
एकत्वेन	=एकत्वभावसे अर्थात् जो कुछ है सब वासुदेव ही है इस भावसे	बहुधा	=बहुत प्रकारसे
		अपि	=भी
		उपासते	=उपासते हैं

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥

अहम्, क्रतु, अहम् यज्ञ, स्वधा, अहम्, अहन्, औषधम्, मन्त्र, अहन्, अहम्, एव, आज्यम्, अहम्, अग्नि, अहम्, हुतम् ॥ १६ ॥

क्योंकि—

क्रतु = { क्रतु अर्थात् श्रौतकर्म

अहम् = मैं हू

यज्ञ = { यज्ञ अर्थात् पञ्चमहायज्ञादिक स्मार्तकर्म

अहम् = मैं हू

स्वधा = { स्वधा अर्थात् पितरोंके निमित्त दिया जानेवाला अन्न

अहम् = मैं हू

औषधम् = { ओषधि अर्थात् सब वनस्पतियां

अहम् = मैं हू (एव)

मन्त्र = मन्त्र

अहम् = मैं हू

आज्यम् = घृत

अहम् = मैं हू

अग्नि = अग्नि

अहम् = मैं हू (और)

हुतम् = हवनरूप क्रिया (भी)

अहम् = मैं

एव = ही हू

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥

पिता, अहम्, अस्य, जगत, माता, धाता, पितामहः,
वेद्यम्, पवित्रम्, ओंकार, ऋक्, साम, यजु, एव, च ॥१७॥

और हे अर्जुन ! मैं ही-

अस्य = इस	पितामह = पितामह (हूं)
जगत = संपूर्ण जगत्का	च = और
धाता = धाता अर्थात् धारण पोषण करनेवाला एवं कर्मोंके फलको देनेवाला	वेद्यम् = जानने योग्य*
	पवित्रम् = पवित्र
	ओंकार = ओंकार (तथा)
	ऋक् = ऋग्वेद
(तथा)	साम = सामवेद (और)
पिता = पिता	यजु = यजुर्वेद (भी)
माता = माता	अहम् = मैं
(और)	एव = ही हूं

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥

गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, शरणम्, सुहृत्,
प्रभव, प्रलय, स्थानम्, निधानम्, बीजम्, अव्ययम् ॥१८॥

और हे अर्जुन-

गति = प्राप्त होने योग्य (तथा)	प्रभु = सबका स्वामी
भर्ता = भरण पोषण करनेवाला	साक्षी = शुभाशुभका देखनेवाला

* गीता अध्याय १३ श्लोक १२ से लेकर १७तकमें देखना चाहिये।

निवास =सबका वासस्थान
(और)
शरणम् =शरण लेने योग्य
(तथा)
सुहृत् = { प्रति उपकार न चाहकर हित करनेवाला (और)
प्रभव. =उत्पत्ति

प्रलय =प्रलयरूप
(तथा)
स्थानम् =सबका आधार
निधानम् =निधान*
(और)
अव्ययम् =अविनाशी
बीजम् =कारण (भी)
(अहम् एव)=मैं ही हू

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन॥

तपामि, अहम्, अहम्, वर्षम्, निगृह्णामि, उत्सृजामि, च, अमृतम्, च, एव, मृत्यु, च, सत्, असत्, च, अहम्, अर्जुन॥१९॥

और–

अहम् =मैं (ही)
तपामि = { सूर्यरूप हुआ तपता हू (तथा)
वर्षम् =वर्षाको
निगृह्णामि= { आकर्षण करता हू

च =और
उत्सृजामि =वर्षाता हू
च =और
अर्जुन =हे अर्जुन
अहम् =मैं (ही)
अमृतम् =अमृत

---

*प्रलयकालमें सपूर्ण भूत सूक्ष्मरूपसे जिसमें लय होते हैं उसका नाम निधान है।

च =और
मृत्यु =मृत्यु (एव)
सत् =सत्
च =और
असत् =असत् (भी)
(सब कुछ)
अहम् =मैं
एव =ही हूं

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥२०॥

त्रैविद्या, माम्, सोमपा, पूतपापा, यज्ञैः, इष्ट्वा, स्वर्गतिम्, प्रार्थयन्ते, ते, पुण्यम्, आसाद्य, सुरेन्द्रलोकम्, अश्नन्ति, दिव्यान्, दिवि, देवभोगान् ॥ २० ॥

परन्तु जो-

त्रैविद्या = { तीनों वेदोंमें विधान किये हुए सकाम कर्मोंको करनेवाले
(और)
सोमपा = { सोमरसको पीनेवाले
(एव)
पूतपापा = { पापोंसे पवित्र हुए पुरुष*
माम् =मेरेको
यज्ञैः =यज्ञोंके द्वारा
इष्ट्वा =पूजकर
स्वर्गतिम् =स्वर्गकी प्राप्तिको

* यहां स्वर्गप्राप्तिके प्रतिबन्धक देव ऋणरूप पापसे पवित्र होना समझना चाहिये ।

प्रार्थयन्ते = चाहते हैं	आसाद्य = प्राप्त होकर
ते = वे पुरुष	दिवि = स्वर्गमें
पुण्यम् = { अपने पुण्योंके फलरूप	दिव्यान् = दिव्य
सुरेन्द्र-लोकम् } = इन्द्रलोकको	देवभोगान् = { देवताओंके भोगोंको
	अश्नन्ति = भोगते हैं

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥२१॥

ते, तम्, भुक्त्वा, स्वर्गलोकम्, विशालम्, क्षीणे, पुण्ये, मर्त्यलोकम्, विशन्ति, एवम्, त्रयीधर्मम्, अनुप्रपन्ना, गतागतम्, कामकामा, लभन्ते ॥ २१ ॥

और–

ते = वे	मर्त्यलोकम् = मृत्युलोकको
तम् = उस	विशन्ति = प्राप्त होते हैं
विशालम् = विशाल	एवम् = इस प्रकार
स्वर्गलोकम् = स्वर्गलोकको	(स्वर्गके साधन-रूप)
भुक्त्वा = भोगकर	
पुण्ये क्षीणे = { पुण्य क्षीण होनेपर	त्रयीधर्मम् = { तीनों वेदोंमें कहे हुए सकामकर्मके

अनुप्रपन्ना = शरण हुए (और)	गतागतम् = बारम्बार जाने आनेको
कामकामा = भोगोंकी कामनावाले पुरुष	लभन्ते = प्राप्त होते हैं

अर्थात् पुण्यके प्रभावसे स्वर्गमें जाते हैं और पुण्य क्षीण होनेसे मृत्युलोकमें आते हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

अनन्या, चिन्तयन्त, माम्, ये, जना, पर्युपासते, तेषाम्, नित्याभियुक्तानाम्, योगक्षेमम्, वहामि, अहम्॥ २२॥

और-

ये = जो	पर्युपासते = निष्कामभाव-से भजते हैं
अनन्या = अनन्यभावसे मेरेमें स्थित हुए	तेषाम् = उन
जना = भक्तजन	नित्याभि-युक्तानाम् = नित्य एकी-भावसे मेरेमें स्थितिवाले पुरुषोंका
माम् = मुझ परमेश्वरको	योगक्षेमम् = योगक्षेम*
चिन्तयन्त = निरन्तर चिन्तन करते हुए	अहम् = मैं स्वयम्
	वहामि = प्राप्त कर देता हूं

* भगवत्के स्वरूपकी प्राप्तिका नाम योग है और भगवत्-प्राप्तिके निमित्त किये हुए साधनकी रक्षाका नाम क्षेम है।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥

ये, अपि, अन्यदेवताः, भक्ताः, यजन्ते, श्रद्धया, अन्विताः,
ते, अपि, माम्, एव, कौन्तेय, यजन्ति, अविधिपूर्वकम् ॥२३॥

और-

कौन्तेय	=हे अर्जुन	अपि	=भी
अपि	=यद्यपि	माम्	=मेरेको
श्रद्धया	=श्रद्धासे	एव	=ही
अन्विताः	=युक्त हुए	यजन्ति	=पूजते हैं
ये	=जो		(किन्तु उनका
भक्ताः	=सकामी भक्त		वह पूजना)
अन्यदेवताः	={ दूसरे देवताओंको		
यजन्ते	=पूजते हैं	अविधि-पूर्वकम्	={ अविधिपूर्वक है अर्थात् अज्ञान-पूर्वक है
ते	=वे		

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥

अहम्, हि, सर्वयज्ञानाम्, भोक्ता, च, प्रभु, एव, च,
न, तु, माम्, अभिजानन्ति, तत्त्वेन, अत, च्यवन्ति, ते ॥२४॥

हि	=क्योंकि	सर्वयज्ञानाम्	=संपूर्ण यज्ञोंका

भोक्ता =भोक्ता
च =और
प्रभु =स्वामी
च =भी
अहम् =मैं
एव =ही (हूं)
तु =परन्तु
ते =वे
माम् = { मुझ अधियज्ञ-स्वरूप परमेश्वरको
तत्त्वेन =तत्त्वसे
न =नहीं
अभिजानन्ति =जानते हैं
अत =इसीसे
च्यवन्ति = { गिरते हैं अर्थात् पुनर्जन्मको प्राप्त होते हैं

यान्ति देवव्रता देवान्
पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या
यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥२५॥

यान्ति, देवव्रता, देवान्, पितॄन्, यान्ति, पितृव्रता, भूतानि, यान्ति, भूतेज्या, यान्ति, मद्याजिन, अपि, माम् ॥२५॥

कारण यह नियम है कि–

देवव्रता = { देवताओंको पूजनेवाले
देवान् =देवताओंको
यान्ति =प्राप्त होते हैं
पितृव्रता = { पितरोंको पूजनेवाले
पितॄन् =पितरोंको
यान्ति =प्राप्त होते हैं
भूतेज्या = { भूतोंको पूजनेवाले
भूतानि =भूतोंको
यान्ति =प्राप्त होते हैं (और)

मद्याजिन =मेरे भक्त | अपि =ही
मान् =मेरेको | यान्ति =प्राप्त होते हैं

इसीलिये मेरे भक्तोंका पुनर्जन्म नहीं होता* ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

पत्रम्, पुष्पम्, फलम् तोयम्, यः, मे, भक्त्या, प्रयच्छति, तत्, अहम्, भक्त्युपहृतम्, अश्नामि, प्रयतात्मनः ॥२६॥

तथा हे अर्जुन ! मेरे पूजनमें यह सुगमता भी है कि–

पत्रम्	=पत्र	भक्त्युपहृतम्	=प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ
पुष्पम्	=पुष्प	तत्	=वह (पत्र पुष्पादिक)
फलम्	=फल	अहम्	=मैं (सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित)
तोयम्	=जल (इत्यादि)	अश्नामि	=खाता हूं
यः	=जो (कोई भक्त)		
मे	=मेरे लिये		
भक्त्या	=प्रेमसे		
प्रयच्छति	=अर्पण करता है		
प्रयतात्मनः	=उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका		

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

---

* गीता अध्याय ८ श्लोक १६ में देखना चाहिये ।

यत्, करोषि, यत्, अश्नासि, यत्, जुहोषि, ददासि, यत्,
यत्, तपस्यसि, कौन्तेय, तत्, कुरुष्व, मदर्पणम् ॥२७॥

इसलिये-

कौन्तेय	=हे अर्जुन (तू)	ददासि	=दान देता है
यत्	=जो (कुछ)	यत्	=जो (कुछ)
करोषि	=कर्म करता है	तपस्यसि	=स्वधर्माचरण-रूप तप करता है
यत्	=जो (कुछ)		
अश्नासि	=खाता है	तत्	=वह (सब)
यत्	=जो (कुछ)		
जुहोषि	=हवन करता है	मदर्पणम्	=मेरे अर्पण
यत्	=जो (कुछ)	कुरुष्व	=कर

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥

शुभाशुभफलै, एवम्, मोक्ष्यसे, कर्मबन्धनै,
सन्यासयोगयुक्तात्मा, विमुक्त, माम्, उपैष्यसि ॥२८॥

एवम्	=इस प्रकार	शुभाशुभ-फलै	=शुभाशुभ फलरूप
सन्यासयोग-युक्तात्मा	=कर्मोंको मेरे अर्पण करने-रूप सन्यास-योगसे युक्त हुए मनवाला (तू)	कर्मबन्धनै	=कर्मबन्धनसे
		मोक्ष्यसे	=मुक्त हो जायगा (और उनसे)
		विमुक्त	=मुक्त हुआ

माम् =मेरेको (ही)	उपैष्यसि =प्राप्त होवेगा

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्

सम , अहम् , सर्वभूतेषु, न, मे, द्वेष्य , अस्ति, न, प्रियः,
ये, भजन्ति, तु, माम् , भक्त्या, मयि, ते, तेषु, च, अपि, अहम् २९

यद्यपि-

अहम्	=मैं	ये	=जो (भक्त)
सर्वभूतेषु	=सब भूतोंमें	माम्	=मेरेको
सम	= { समभावसे व्यापक हू	भक्त्या	=प्रेमसे
		भजन्ति	=भजते ह
न	=न (कोई)	ते	=वे
मे	=मेरा	मयि	=मेरेमें
द्वेष्य	=अप्रिय	च	=और
अस्ति	=है (और)	अहम्	=मैं
न	=न	अपि	=भी
प्रिय	=प्रिय है	तेषु	=उनमें
तु	=परन्तु		(प्रत्यक्ष प्रकट हू*)

---

* जैसे सूक्ष्मरूपसे सब जगह व्यापक हुआ भी अग्नि साधनोंद्वारा प्रकट करनेसे ही प्रत्यक्ष होता है वैसे ही सब जगह स्थित हुआ भी परमेश्वर भक्तिसे भजनेवालेके ही अन्त करणमें प्रत्यक्षरूपसे प्रकट होता है ।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

अपि, चेत्, सुदुराचार, भजते, माम्, अनन्यभाक्, साधु, एव, स, मन्तव्य, सम्यक्, व्यवसित, हि, स ॥३०॥

तथा और भी मेरी भक्तिका प्रभाव सुन-

चेत्	=यदि (कोई)	स	=वह
सुदुराचार	={ अतिशय दुराचारी	साधु	=साधु
		एव	=ही
अपि	=भी	मन्तव्य	=मानने योग्य है
अनन्यभाक्	={ अनन्यभावसे मेरा भक्त हुआ	हि	=क्योंकि
माम्	=मेरेको	स	=वह
	(निरन्तर)	सम्यक् व्यवसित	={ यथार्थ निश्चय वाला है
भजते	=भजता है		

अर्थात् उसने भली प्रकार निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

क्षिप्रम्, भवति, धर्मात्मा, शश्वत्, शान्तिम्, निगच्छति, कौन्तेय, प्रति, जानीहि, न, मे, भक्त, प्रणश्यति ॥३१॥

इसलिये वह-

क्षिप्रम्	=शीघ्र ही	भवति	=हो जाता है
धर्मात्मा	=धर्मात्मा		(और)

शश्वत्	=सदा रहनेवाली	जानीहि	=जान (कि)
शान्तिम्	=परमशान्तिको	मे	=मेरा
निगच्छति	=प्राप्त होता है	भक्त	=भक्त
कौन्तेय	=हे अर्जुन (तू)		
प्रति	={ निश्चयपूर्वक सत्य	न प्रणश्यति	} =नष्ट नहीं होता

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य
येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रा-
स्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥३२॥

माम्, हि, पार्थ, व्यपाश्रित्य, ये, अपि, स्यु, पापयोनय, स्त्रिय, वैश्या, तथा, शूद्रा, ते, अपि, यान्ति, पराम्, गतिम् ३२

हि	=क्योंकि	स्यु	=होवें
पार्थ	=हे अर्जुन	ते	=वे
स्त्रिय	=स्त्री	अपि	=भी
वैश्या	=वैश्य (और)	माम्	=मेरे
शूद्रा.	=शूद्रादिक	व्यपाश्रित्य	=शरण होकर (तो)
तथा	=तथा		
पापयोनय	=पापयोनिवाले	पराम्	=परम
अपि	=भी	गतिम्	=गतिको (ही)
ये	=जो कोई	यान्ति	=प्राप्त होवे हैं

मन्मना, भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु,

माम्, एव, एष्यसि, युक्त्वा, एवम्, आत्मानम्, मत्परायणः ३४

मन्मना = { केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामें ही अनन्यप्रेमसे नित्य निरन्तर अचल मनवाला

भव = हो (और)

मद्भक्तः (भव) = { मुझ परमेश्वरको ही श्रद्धा प्रेमसहित निष्काम-भावसे नाम गुण और प्रभावके श्रवण कीर्तन मनन और पठनपाठनद्वारा निरन्तर भजनेवाला हो (तथा)

मद्याजी (भव) = { मेरा (शङ्ख चक्र गदा पद्म और किरीट कुण्डल आदि भूषणोंसे युक्त पीताम्बर वनमाला और कौस्तुभमणिधारी विष्णुका) मन वाणी और शरीरके द्वारा सर्वस्व अर्पण करके अतिशय श्रद्धा भक्ति और प्रेमसे विह्वलतापूर्वक पूजन करनेवाला हो (और)

माम् = { मुझ सर्वशक्तिमान् विभूति बल ऐश्वर्य माधुर्य गम्भीरता उदारता वात्सल्य और सुहृदता आदि गुणोंसे सम्पन्न सबके आश्रयरूप वासुदेवको

नमस्कुरु = { विनयभावपूर्वक भक्तिसहित साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर

एवम्	= इस प्रकार	युक्त्वा	= मेरेमें एकीभाव करके
मत्परायण	= मेरे शरण हुआ	माम्	= मेरेको
	(तू)	एव	= ही
आत्मानम्	= आत्माको	एष्यसि	= प्राप्त होवेगा

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "राजविद्या राजगुह्ययोग" नामक नवा अध्याय।

हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥

भूयः, एव, महाबाहो, शृणु, मे, परमम्, वच,
यत्, ते, अहम्, प्रीयमाणाय, वक्ष्यामि, हितकाम्यया ॥ १ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले—

महाबाहो	=हे महाबाहो	यत्	=जो (कि)
भूय	=फिर	अहम्	=मैं
एव	=भी	ते	=तुझ
मे	=मेरे	प्रीयमाणाय	=अतिशय प्रेम रखनेवालेके लिये
परमम्	=परम (रहस्य और प्रभावयुक्त)	हितकाम्यया	=हितकी इच्छासे
वच	=वचन		
शृणु	=श्रवण कर	वक्ष्यामि	=कहूंगा

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥

न, मे, विदुः, सुरगणाः, प्रभवम्, न, महर्षयः,
अहम्, आदिः, हि, देवानाम्, महर्षीणाम्, च, सर्वशः ॥ २ ॥

हे अर्जुन–

मे	=मेरी	महर्षयः	=महर्षिजन (भी)
प्रभवम्	=उत्पत्तिको अर्थात् विभूति-सहित लीलासे प्रकट होनेको	विदुः	=जानते हैं
		हि	=क्योंकि
		अहम्	=मैं
		सर्वशः	=सब प्रकारसे
न	=न	देवानाम्	=देवताओंका
सुरगणाः	=देवतालोग	च	=और
(विदुः)	=जानते हैं (और)	महर्षीणाम्	=महर्षियोंका (भी)
न	=न	आदिः	=आदिकारण हूँ

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

यः, माम्, अजम्, अनादिम्, च, वेत्ति, लोकमहेश्वरम्,
असंमूढः, सः, मर्त्येषु, सर्वपापैः, प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

और–

यः	=जो	अजम्	=अजन्मा अर्थात् वास्तवमें जन्म रहित (और)
माम्	=मेरेको		

अनादिम्	= अनादि*	स	= वह
च	= तथा	मर्त्येषु	= मनुष्योंमें
लोक-महेश्वरम्	= लोकोंका महान् ईश्वर	असमूढ	= ज्ञानवान् (पुरुष)
		सर्वपापै	= सपूर्ण पापोंसे
वेत्ति	= तत्त्वसे जानता है	प्रमुच्यते	= मुक्त हो जाता है

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥

बुद्धि, ज्ञानम्, असमोह, क्षमा, सत्यम्, दम, शम,
सुखम्, दु खम्, भव, अभाव भयम्, च, अभयम्, एव, च ॥४॥

और हे अर्जुन–

बुद्धि	= निश्चय करनेकी शक्ति		(और)
		शम	= मनका निग्रह
	(एव)		(तथा)
ज्ञानम्	= तत्त्वज्ञान	सुखम्	= सुख
	(और)	दु खम्	= दु ख
असमोह	= अमूढता	भव	= उत्पत्ति
क्षमा	= क्षमा	च	= और
सत्यम्	= सत्य (तथा)	अभाव	= प्रलय (एव)
दम	= इन्द्रियोंका वशमें करना	भयम्	= भय
		च	= और

* अनादि उसको कहते हैं कि जो आदिरहित होवे और सबका कारण होवे ।

अभयम्	=अभय	एव	=भी

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः॥

अहिंसा, समता, तुष्टि, तप, दानम्, यश, अयश,
भवन्ति, भावा, भूतानाम्, मत्त, एव, पृथग्विधा ॥ ५ ॥

तथा-

अहिंसा	=अहिंसा	(एवम्)	=ऐसे (यह)
समता	=समता	भूतानाम्	=प्राणियोंके
तुष्टि	=संतोष	पृथग्विधा	=नाना प्रकारके
तप	=तप*	भावा	=भाव
दानम्	=दान	मत्त	=मेरेसे
यश	=कीर्ति (और)	एव	=ही
अयश	=अपकीर्ति	भवन्ति	=होते हैं

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः॥

महर्षय, सप्त, पूर्वे, चत्वार, मनव, तथा,
मद्भावा, मानसा, जाता, येषाम्, लोके, इमा, प्रजा ॥ ६ ॥

और हे अर्जुन-

सप्त	=सात (तो)		(और)
महर्षय	=महर्षिजन	चत्वार	=चार ([illegible])

* [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करनेका नाम तप है।

पूर्वे	= पूर्वमें होनेवाले (सनकादि)	मानसा जाता	= मेरे संकल्पसे उत्पन्न हुए हैं
तथा	= तथा		(कि)
मनव.	= स्वायम्भुव आदि चौदह मनु	येषाम्	= जिनकी
(एते)	= यह	लोके	= संसारमें
मद्भावा	= मेरेमें भाववाले	इमा	= यह संपूर्ण
	(सबके सब)	प्रजा	= प्रजा है

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥

एताम्, विभूतिम्, योगम्, च, मम, य, वेत्ति, तत्त्वत,
स, अविकम्पेन, योगेन, युज्यते, न, अत्र, संशय ॥७॥

और-

य	= जो (पुरुष)	वेत्ति	= जानता है*
एताम्	= इस	स.	= वह
मम	= मेरी		(पुरुष)
विभूतिम्	= परमैश्वर्यरूप विभूतिको	अविकम्पेन	= निश्चल
च	= और	योगेन	= ध्यानयोगद्वारा (मेरेमें ही)
योगम्	= योगशक्तिको	युज्यते	= एकीभावसे स्थित होता है
तत्त्वत	= तत्त्वसे		

---

* जो कुछ दृश्यमात्र संसार है सो सब भगवान्की माया है और एक वासुदेव भगवान् ही सर्वत्र परिपूर्ण है यह जानना ही तत्त्वसे जानना है ।

अत्र	=इसमें (कुछ भी)	न	=नहीं
संशय	=संशय	(अस्ति)	=है

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥

अहम्, सर्वस्य, प्रभव, मत्त, सर्वम्, प्रवर्तते,
इति, मत्वा, भजन्ते, माम्, बुधा, भावसमन्विता ॥ ८ ॥

अहम्	=मैं वासुदेव ही	भाव-समन्विता	=श्रद्धा और भक्तिसे युक्त हुए
सर्वस्य	=संपूर्ण जगत्‌की	बुधा	=बुद्धिमान् भक्तजन
प्रभव	=उत्पत्तिका कारण हूं (और)	माम्	=मुझ परमेश्वरको (ही)
मत्त	=मेरेसे ही	भजन्ते	=निरन्तर भजते हैं
सर्वम्	=सब जगत्		
प्रवर्तते	=चेष्टा करता है		
इति	=इस प्रकार		
मत्वा	=तत्त्वसे समझकर		

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

मच्चित्ता, मद्गतप्राणा, बोधयन्त, परस्परम्,
कथयन्त, च, माम्, नित्यम्, तुष्यन्ति, च, रमन्ति, च ॥ ९ ॥

और वे-

मच्चित्ता	= निरन्तर मेरेमें मन लगानेवाले (और)	बोधयन्तः	= मेरे प्रभावको जनाते हुए
		च	= तथा
मद्गतप्राणाः	= मेरेमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले* (भक्तजन)		(गुण और प्रभावसहित)
		माम्	= मेरा
		कथयन्तः	= कथन करते हुए
		च	= ही
नित्यम्	= सदा ही (मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा)	तुष्यन्ति	= संतुष्ट होते हैं
		च	= और (मुझ वासुदेवमें ही)
परस्परम्	= आपसमें	रमन्ति	= निरन्तर रमण करते हैं

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

तेषाम्, सततयुक्तानाम्, भजताम्, प्रीतिपूर्वकम्, ददामि, बुद्धियोगम्, तम्, येन, माम्, उपयान्ति, ते ॥१०॥

तेषाम्	= उन	प्रीतिपूर्वकम्	= प्रेमपूर्वक
सतत-युक्तानाम्	= निरन्तर मेरे ध्यानमें लगे हुए (और)	भजताम्	= भजनेवाले भक्तोंको (मैं)

---

* मुझ वासुदेवके लिये ही जिन्होंने अपना जीवन अर्पण कर दिया है उनका नाम है मद्गतप्राणाः ।

तम्	=वह	येन	=जिससे
बुद्धियोगम्	= { तत्त्वज्ञानरूप योग	ते	=वे
		माम्	=मेरेको (ही)
ददामि	=देता हूं (कि)	उपयान्ति	=प्राप्त होवे हैं

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

तेषाम्, एव, अनुकम्पार्थम्, अहम् अज्ञानजम्, तम, नाशयामि, आत्मभावस्थ, ज्ञानदीपेन, भास्वता ॥११॥

और हे अर्जुन-

तेषाम्	=उनके (ऊपर)	अज्ञानजम्	= { अज्ञानसे उत्पन्न हुए
अनुकम्पार्थम्	= { अनुग्रह करनेके लिये	तम	=अन्धकारको
एव	=ही	भास्वता	=प्रकाशमय
अहम्	=मैं स्वयं	ज्ञानदीपेन	= { तत्त्वज्ञानरूप दीपकद्वारा
आत्मभावस्थ	= { (उनके) अन्तःकरणमें एकीभावसे स्थित हुआ	नाशयामि	=नष्ट करता हूं

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥१२॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥

परम्, ब्रह्म, परम्, धाम, पवित्रम्, परमम्, भवान्, पुरुषम्, शाश्वतम्, दिव्यम्, आदिदेवम्, अजम्, विभुम्, आहु, त्वाम्, ऋषय, सर्वे, देवर्षि, नारद, तथा, असित., देवल, व्यास, स्वयम्, च, एव, ब्रवीषि, मे १२ १३

इस प्रकार भगवान्‌के वचनोंको सुनकर अर्जुन बोला हे भगवन्—

भवान्	=आप	अजम्	=अजन्मा (और)
परम्	=परम	विभुम्	=सर्वव्यापी
ब्रह्म	=ब्रह्म (और)	आहु	=कहते हैं
परम्	=परम	तथा	=वैसे ही
धाम	=धाम (एव)	देवर्षि	=देवऋषि
परमम्	=परम	नारद	=नारद (तथा)
पवित्रम्	=पवित्र (हैं)	असित	=असित (और)
(यत)	=क्योंकि	देवल	=देवलऋषि (तथा)
त्वाम्	=आपको	व्यास	=महर्षि व्यास
सर्वे	=सब	च	=और
ऋषय	=ऋषिजन	स्वयम्	=स्वयम् आप
शाश्वतम्	=सनातन	एव	=भी
दिव्यम्	=दिव्य	मे	=मेरे (प्रति)
पुरुषम्	=पुरुष (एव)	ब्रवीषि	=कहते हैं
आदिदेवम्	=देवोंका भी आदिदेव		

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः॥

सर्वम्, एतत्, ऋतम्, मन्ये, यत्, माम्, वदसि, केशव, न, हि ते, भगवन्, व्यक्तिम्, विदु, देवा, न, दानवा ॥१४॥

और–

केशव	=हे केशव	व्यक्तिम्	=लीलामय* स्वरूपको
यत्	=जो (कुछ भी)	न	=न
माम्	=मेरे प्रति	दानवा	=दानव
वदसि	=आप कहते हैं	विदु	=जानते हैं (और)
एतत्	=इस	न	=न
सर्वम्	=समस्तको (मैं)	देवा	=देवता
ऋतम्	=सत्य	हि	=ही
मन्ये	=मानता हूं	(विदु)	=जानते हैं
भगवन्	=हे भगवन्		
ते	=आपके		

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥

स्वयम्, एव, आत्मना, आत्मानम्, वेत्थ, त्वम्, पुरुषोत्तम, भूतभावन, भूतेश, देवदेव, जगत्पते ॥१५॥

भूतभावन	=हे भूतोंको उत्पन्न करनेवाले	देवदेव	=हे देवोंके देव
भूतेश	=हे भूतोंके ईश्वर	जगत्पते	=हे जगत्के स्वामी
		पुरुषोत्तम	=हे पुरुषोत्तम

*गीता अध्याय ४ श्लोक ६ में इसका विस्तार देखना चाहिये।

त्वम्	=आप	आत्मना	=अपनेसे
स्वयम्	=स्वयम्	आत्मानम्	=आपको
एव	=ही	वेत्थ	=जानते हैं

वक्तुमर्हस्यशेषेण
दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोका-
निमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥१६॥

वक्तुम्, अर्हसि, अशेषेण, दिव्याः, हि, आत्मविभूतय, याभि, विभूतिभि, लोकान् इमान्, त्वम्, व्याप्य, तिष्ठसि॥

इसलिये हे भगवन्—

त्वम्	=आप	याभि	=जिन
हि	=ही (उन)	विभूतिभि	=विभूतियोंके द्वारा
दिव्या आत्म-विभूतय	=अपनी दिव्य विभूतियोंको	इमान्	=इन सब
अशेषेण	=सम्पूर्णतासे	लोकान्	=लोकोंको
वक्तुम्	=कहनेके लिये	व्याप्य	=व्याप्त करके
अर्हसि	=योग्य हैं (कि)	तिष्ठसि	=स्थित हैं

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥

कथम्, विद्याम्, अहम्, योगिन्, त्वाम्, सदा, परिचिन्तयन्, केषु, केषु, च, भावेषु, चिन्त्य, असि, भगवन्, मया ॥१७॥

योगिन्	=हे योगेश्वर	भगवन्	=हे भगवन् (आप)
अहम्	=मैं	केषु	=किन
कथम्	=किस प्रकार	केषु	=किन
सदा	=निरन्तर	भावेषु	=भावोंमें
परिचिन्तयन्	=चिन्तन करता हुआ	मया	=मेरेद्वारा
त्वाम्	=आपको	चिन्त्य	=चिन्तन करने योग्य
विद्याम्	=जानूं	असि	=हैं
च	=और		

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्॥

विस्तरेण, आत्मन, योगम्, विभूतिम्, च, जनार्दन,
भूय, कथय, तृप्ति, हि, शृण्वत, न, अस्ति, मे, अमृतम्॥१८॥

और–

जनार्दन	=हे जनार्दन	हि	=क्योंकि (आपके)
आत्मन	=अपनी	अमृतम्	=अमृतमय वचनोंको
योगम्	=योगशक्तिको	शृण्वत	=सुनते हुए
च	=और (परमैश्वर्यरूप)	मे	=मेरी
विभूतिम्	=विभूतिको	तृप्ति	=तृप्ति
भूय	=फिर (भी)	न	=नहीं
विस्तरेण	=विस्तारपूर्वक	अस्ति	=होती है
कथय	=कहिये		

अर्थात् सुननेकी उत्कण्ठा बनी ही रहती है।

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥

हन्त, ते, कथयिष्यामि, दिव्या, हि, आत्मविभूतय,
प्राधान्यत, कुरुश्रेष्ठ, न अस्ति, अन्त, विस्तरस्य, मे ॥१९॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले-

कुरुश्रेष्ठ	=हे कुरुश्रेष्ठ	कथयिष्यामि	=कहूंगा
हन्त	=अब (मैं)	हि	=क्योंकि
ते	=तेरे लिये	मे	=मेरे
दिव्या आत्मविभूतय	=अपनी दिव्य विभूतियोंको	विस्तरस्य	=विस्तारका
		अन्त	=अन्त
		न	=नही
प्राधान्यत	=प्रधानतासे	अस्ति	=है

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥

अहम्, आत्मा, गुडाकेश, सर्वभूताशयस्थित,
अहम्, आदि, च, मध्यम्, च, भूतानाम्, अन्त, एव, च ॥२०॥

गुडाकेश	=हे अर्जुन	आत्मा	=सबका आत्मा हूं
अहम्	=मैं	च	=तथा
सर्वभूताशयस्थित	=सब भूतोंके हृदयमें स्थित		(संपूर्ण)
		भूतानाम्	=भूतोंका

आदि	= आदि	च	= भी
मध्यम्	= मध्य	अहम्	= मैं
च	= और		
अन्त	= अन्त	एव	= ही हूं

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी॥

आदित्यानाम्, अहम्, विष्णु, ज्योतिषाम्, रवि, अंशुमान्, मरीचि, मरुताम्, अस्मि, नक्षत्राणाम्, अहम्, शशी ॥२१॥

और हे अर्जुन–

अहम्	= मैं	मरुताम्	= वायु देवताओं में
आदित्यानाम्	= अदिति के बारह पुत्रों में	मरीचि	= मरीचि नामक वायुदेवता (और)
विष्णु	= विष्णु अर्थात् वामन अवतार (और)	नक्षत्राणाम्	= नक्षत्रों में
ज्योतिषाम्	= ज्योतियों में	शशी	= (नक्षत्रों का अधिपति) चन्द्रमा
अंशुमान्	= किरणोंवाला		
रवि	= सूर्य हूं (तथा)		
अहम्	= मैं (उनचास)	अस्मि	= हूं

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना॥

वेदानाम्, सामवेद, असि, देवानाम्, अस्मि, वासव, इन्द्रियाणाम्, मन, च, अस्मि, भूतानाम्, अस्मि, चेतना ॥ २२ ॥

और मैं—

वेदानाम्	=वेदोंमें	इन्द्रियाणाम्	=इन्द्रियोंमें
सामवेद	=सामवेद	मन	=मन
असि	=हूं	अस्मि	=हूं
देवानाम्	=देवोंमें	भूतानाम्	=भूतप्राणियोंमें
वासव	=इन्द्र	चेतना	=चेतनता अर्थात् ज्ञानशक्ति
अस्मि	=हूं		
च	=और	अस्मि	=हूं

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥

रुद्राणाम्, शकर, च, अस्मि, वित्तेश, यक्षरक्षसाम्
वसूनाम्, पावक, च, अस्मि, मेरु, शिखरिणाम्, अहम् ॥ २३ ॥

और मैं—

रुद्राणाम्	=एकादश रुद्रोंमें	च	=और
		अहम्	=मैं
शकर	=शकर	वसूनाम्	=आठ वसुओंमें
असि	=हूं	पावक	=अग्नि
च	=और	असि	=हूं (तथा)
यक्षरक्षसाम्	=यक्ष तथा राक्षसोंमें	शिखरिणाम्	=शिखरवाले पर्वतोंमें
वित्तेश	=धनका स्वामी कुबेर हूं	मेरु	=सुमेरु पर्वत हूं

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः॥

पुरोधसाम्, च, मुख्यम्, माम्, विद्धि, पार्थ, बृहस्पतिम्,
सेनानीनाम्, अहम्, स्कन्द, सरसाम्, अस्मि, सागर ॥ २४॥

और-

पुरोधसाम् = पुरोहितोंमें
मुख्यम् = मुख्य अर्थात् देवताओंका पुरोहित
बृहस्पतिम् = बृहस्पति
माम् = मेरेको
विद्धि = जान
च = तथा
पार्थ = हे पार्थ
अहम् = मैं
सेनानीनाम् = सेनापतियोंमें
स्कन्द = स्वामिकार्तिक
(और)
सरसाम् = जलाशयोंमें
सागर = समुद्र
अस्मि = हूं

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः॥

महर्षीणाम्, भृगु, अहम्, गिराम्, अस्मि, एकम्, अक्षरम्,
यज्ञानाम्, जपयज्ञ, अस्मि, स्थावराणाम्, हिमालय ॥ २५॥

और हे अर्जुन-

अहम् = मैं
महर्षीणाम् = महर्षियोंमें
भृगु = भृगु (और)
गिराम् = वचनोंमें

एकम्	=एक	जपयज्ञ	=जपयज्ञ (और)
अक्षरम्	= अक्षर अर्थात् ओंकार	स्थावराणाम्=	स्थिर रहनेवालोंमें
अस्मि	=हूं (तथा)	हिमालय	= हिमालय पहाड़
यज्ञानाम्	= सब प्रकारके यज्ञोंमें	अस्मि	=हूं

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः॥

अश्वत्थ, सर्ववृक्षाणाम्, देवर्षीणाम्, च, नारद,
गन्धर्वाणाम्, चित्ररथ, सिद्धानाम्, कपिल, मुनि ॥ २६ ॥

और—

सर्व-वृक्षाणाम्	=सब वृक्षोंमें	गन्धर्वाणाम्=	गन्धर्वोंमें
अश्वत्थ	=पीपलका वृक्ष	चित्ररथ	=चित्ररथ (और)
च	=और	सिद्धानाम्	=सिद्धोंमें
देवर्षीणाम्	=देवर्षियोंमें	कपिल	=कपिल
नारद	=नारदमुनि (तथा)	मुनि	=मुनि
		(अस्मि)	=हूं

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्॥

उच्चैःश्रवसम्, अश्वानाम्, विद्धि, माम्, अमृतोद्भवम्,
ऐरावतम्, गजेन्द्राणाम्, नराणाम्, च, नराधिपम् ॥ २७ ॥

और हे अर्जुन ! तू-

अश्वानाम्	=घोड़ोंमें	ऐरावतम्	=ऐरावत नामक हाथी
अमृतोद्भवम्	=अमृतसे उत्पन्न होनेवाला	च	=तथा
		नराणाम्	=मनुष्योंमें
उच्चैःश्रवसम्	=उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा (और)	नराधिपम्	=राजा
		माम्	=मेरेको (ही)
गजेन्द्राणाम्	=हाथियोंमें	विद्धि	=जान

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः॥

आयुधानाम्, अहम्, वज्रम्, धेनूनाम्, अस्मि, कामधुक्, प्रजन, च, अस्मि, कन्दर्प, सर्पाणाम्, अस्मि, वासुकि॥२८॥

और हे अर्जुन-

अहम्	=मैं	प्रजन	=सन्तानकी उत्पत्तिका हेतु
आयुधानाम्	=शस्त्रोंमें		
वज्रम्	=वज्र (और)	कन्दर्प	=कामदेव
धेनूनाम्	=गौवोंमें	अस्मि	=हूं
कामधुक्	=कामधेनु	सर्पाणाम्	=सर्पोंमें
अस्मि	=हूं	वासुकि	=(सर्पराज) वासुकि
च	=और (शास्त्रोक्त रीतिसे)	अस्मि	=हूं

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥

अनन्त, च, अस्मि, नागानाम्, वरुण, यादसाम्, अहम्,
पितृणाम्, अर्यमा, च, अस्मि, यमः, संयमताम्, अहम् ॥२९॥

तथा—

अहम्	=मैं	पितृणाम्	=पितरोंमें
नागानाम्	=नागोंमें*	अर्यमा	=अर्यमा नामक पित्रेश्वर
अनन्त	=शेषनाग		
च	=और		(तथा)
यादसाम्	=जलचरोंमें	संयमताम्	=शासन करनेवालोंमें
वरुण	=(उनका अधिपति) वरुण देवता	यम	=यमराज
अस्मि	=हूं	अहम्	=मैं
च	=और	अस्मि	=हूं

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥

प्रह्लाद, च, अस्मि दैत्यानाम्, काल, कलयताम्, अहम्,
मृगाणाम्, च, मृगेन्द्र, अहम्, वैनतेय, च, पक्षिणाम् ॥३०॥

और हे अर्जुन—

अहम्	=मैं	प्रह्लाद	=प्रह्लाद
दैत्यानाम्	=दैत्योंमें	च	=और

* नाग और सर्प यह दो प्रकारकी सर्पोंकी ही जाति हैं।

कलयताम्	= गिनती करनेवालोंमें	मृगेन्द्र	= मृगराज (सिंह)
		च	= और
काल	= समय*	पक्षिणाम्	= पक्षियोंमें
अस्मि	= हूं	वैनतेय	= गरुड़
च	= तथा	अहम्	= मैं
मृगाणाम्	= पशुओंमें	(अस्मि)	= हूं

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥

पवन, पवताम्, अस्मि, राम, शस्त्रभृताम्, अहम्,
झषाणाम्, मकर, च, अस्मि, स्रोतसाम्, अस्मि, जाह्नवी ॥३१॥

और—

अहम्	= मैं	च	= तथा
पवताम्	= पवित्र करनेवालोंमें	झषाणाम्	= मछलियोंमें
		मकर	= मगरमच्छ
पवन	= वायु	अस्मि	= हूं (और)
	(और)	स्रोतसाम्	= नदियोंमें
शस्त्रभृताम्	= शस्त्रधारियोंमें	जाह्नवी	= श्रीभागीरथी गङ्गा
राम	= राम		
अस्मि	= हूं	अस्मि	= हूं

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥

*क्षण-घड़ी-दिन-पक्ष-मास आदिमें जो समय है सो मैं हूं।

सर्गाणाम्, आदिः, अन्तः, च, मध्यम्, च, एव, अहम्, अर्जुन, अध्यात्मविद्या, विद्यानाम्, वादः, प्रवदताम्, अहम् ॥३२॥

और-

अर्जुन	= हे अर्जुन	अध्यात्म-विद्या	= अध्यात्मविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या
सर्गाणाम्	= सृष्टियोंका		
आदिः	= आदि		
अन्तः	= अन्त		(एव)
च	= और		
मध्यम्	= मध्य	प्रवदताम्	= परस्परमें विवाद करनेवालोंमें
च	= भी		
अहम्	= मैं		
एव	= ही हूँ (तथा)	वादः	= तत्त्वनिर्णयके लिये किया जानेवाला वाद
अहम्	= मैं		
विद्यानाम्	= विद्याओंमें	(अस्मि)	= हूँ

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥

अक्षराणाम्, अकारः, अस्मि, द्वन्द्वः, सामासिकस्य, च, अहम्, एव, अक्षयः, कालः, धाता, अहम्, विश्वतोमुखः ॥३३॥

तथा-

अहम्	= मैं	च	= और
		सामासिकस्य	= समासोंमें
अक्षराणाम्	= अक्षरोंमें		
अकारः	= अकार	द्वन्द्वः	= द्वन्द्व नामक समास

असि	=हूं (तथा)	विश्वतो-मुख	= विराट्स्वरूप
अक्षय	= अक्षय	धाता	= सबका धारण पोषण करने-वाला (भी)
काल	= काल अर्थात् कालका भी महाकाल	अहम्	= मैं
		एव	= ही
	(और)	(असि)	= हूं

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा

मृत्यु, सर्वहरः, च अहम्, उद्भव, च, भविष्यताम्, कीर्ति, श्री, वाक्, च, नारीणाम्, स्मृति, मेधा, धृतिः, क्षमा ॥३४॥

हे अर्जुन–

अहम्	= मैं	उद्भव	= उत्पत्तिका कारण (हूं)
सर्वहरः	= सबका नाश करनेवाला	च	= तथा
मृत्यु	= मृत्यु	नारीणाम्	= स्त्रियोंमें
च	= और	कीर्ति	= कीर्ति*
भविष्यताम्	= आगे होने-वालोंकी	श्री	= श्री
		वाक्	= वाक्

* कीर्ति आदि यह सात देवताओंकी स्त्रिया और स्त्रीवाचक नामवाले गुण भी प्रसिद्ध हैं इसलिये दोनों प्रकारसे ही भगवान्‌की विभूतिया हैं ।

स्मृति	=स्मृति	च	=और
मेधा	=मेधा	क्षमा	=क्षमा
धृति	=धृति	(असि)	=हूं

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥

बृहत्साम, तथा, साम्नाम्, गायत्री, छन्दसाम्, अहम्,
मासानाम्, मार्गशीर्ष, अहम्, ऋतूनाम्, कुसुमाकर. ॥३५॥

तथा	=तथा		(तथा)
अहम्	=मैं	मासानाम्	=महीनोंमें
साम्नाम्	=गायन करने योग्य श्रुतियोंमें	मार्गशीर्ष	=मार्गशीर्षका महीना (और)
बृहत्साम	=बृहत्साम (और)	ऋतूनाम्	=ऋतुओंमें
छन्दसाम्	=छन्दोंमें	कुसुमाकर.	=वसन्तऋतु
गायत्री	=गायत्री छन्द	अहम्	=मैं
		(असि)	=हूं

द्यूतं छलयतामस्मि
तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि
सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३६ ॥

द्यूतम्, छलयताम्, असि तेज, तेजस्विनाम्, अहम्,
जय, असि, व्यवसाय, असि, सत्त्वम्, सत्त्ववताम्, अहम् ॥

हे अर्जुन—

अहम्	= मैं	जय	= विजय
छलयताम्	= छल करने-वालोंमें	अस्मि	= हूं (और)
द्यूतम्	= जुवा (और)	(व्यव-सायिनाम्)	= निश्चय करने वालोंका
तेजस्विनाम्	= प्रभावशाली पुरुषोंका	व्यवसाय	= निश्चय (एव)
तेज.	= प्रभाव	सत्त्ववताम्	= सात्त्विक पुरुषोंका
अस्मि	= हूं (तथा)		
अहम्	= मैं	सत्त्वम्	= सात्त्विक भाव
(जेतृणाम्)	= जीतनेवालोंका	अस्मि	= हूं

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः॥

वृष्णीनाम्, वासुदेव, अस्मि, पाण्डवानाम्, धनजय, मुनीनाम्, अपि, अहम्, व्यास, कवीनाम्, उशना, कवि ।३७।

और—

वृष्णीनाम्	= वृष्णि-वंशियोंमें*	पाण्डवानाम्	= पाण्डवोंमें
वासुदेव	= वासुदेव अर्थात् मै स्वयम् तुम्हारा सखा (और)	धनजय	= धनंजय अर्थात् तू (एव)
		मुनीनाम्	= मुनियोंमें
		व्यास	= वेदव्यास

---

* यादवोंके ही अन्तर्गत एक वृष्णिवंश भी था।

	(और)	अपि	=भी
कवीनाम्	=कवियोंमें	अहम्	=मैं
उशना	=शुक्राचार्य		(ही)
कवि	=कवि	अस्मि	=हूं

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥

दण्ड, दमयताम्, अस्मि, नीति, अस्मि, जिगीषताम्, मौनम्, च, एव, अस्मि, गुह्यानाम्, ज्ञानम्, ज्ञानवताम्, अहम् ॥

च	=और	गुह्यानाम्	=गोपनीयोंमें अर्थात् गुप्त रखनेयोग्य भावोंमें
दमयताम्	=दमन करनेवालोंका		
दण्ड	=दण्ड अर्थात् दमन करनेकी शक्ति	मौनम्	=मौन
		अस्मि	=हूं
अस्मि	=हूं		(तथा)
जिगीषताम्	=जीतनेकी इच्छावालोंकी	ज्ञानवताम्	=ज्ञानवानोंका
		ज्ञानम्	=तत्त्वज्ञान
नीति	=नीति	अहम्	=मैं
अस्मि	=हूं (और)	एव	=ही (हूं)

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया॥

न, अन्तः, अस्ति, मम, दिव्यानाम्, विभूतीनाम्, परंतप,
एषः, तु, उद्देशतः, प्रोक्तः, विभूतेः, विस्तरः, मया ॥४०॥

परंतप	=हे परंतप	दिव्यानाम्	=दिव्य
मम	=मेरी	विभूतीनाम्	=विभूतियोंका

अन्तः =अन्त
न =नहीं
अस्ति =है
एष =यह
तु =तो
मया =मैंने (अपनी)
विभूते =विभूतियोंका
विस्तर =विस्तार
(तेरे लिये)
उद्देशत = { एकदेशसे अर्थात् संक्षेपसे
प्रोक्त =कहा है

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽंशसंभवम्॥

यत्, यत्, विभूतिमत्, सत्त्वम्, श्रीमत्, ऊर्जितम्, एव, वा, तत्, तत्, एव, अवगच्छ, त्वम्, मम, तेजोंऽशसभवम् ॥४१॥

इसलिये हे अर्जुन–

यत् =जो
यत् =जो
एव =भी
विभूतिमत् = { विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्य-युक्त (एव)
श्रीमत् =कान्तियुक्त
वा =और
ऊर्जितम् =शक्तियुक्त
सत्त्वम् =वस्तु है
तत् =उस
तत् =उसको
त्वम् =तू
मम =मेरे
तेजोंऽश-सभवम् एव = { तेजके अंशसे ही उत्पन्न हुई
अवगच्छ =जान

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

अथवा, बहुना, एतेन, किम्, ज्ञातेन, तव, अर्जुन, विष्टभ्य, अहम्, इदम्, कृत्स्नम्, एकांशेन, स्थित, जगत् ॥४२॥

अथवा	=अथवा	इदम्	=इस
अर्जुन	=हे अर्जुन	कृत्स्नम्	=सपूर्ण
एतेन	=इस	जगत्	=जगत्को
बहुना	=बहुत		(अपनी
ज्ञातेन	=जाननेसे		योगमायाके)
तव	=तेरा	एकांशेन	=एक अंशमात्रसे
किम्	=क्या प्रयोजन है	विष्टभ्य	=धारणकरके
अहम्	=मै	स्थित	=स्थित हू–

इसलिये मेरेको ही तत्त्वसे जानना चाहिये।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्याया योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-
सवादे विभूतियोगो नाम
दशमोऽध्याय ॥१०॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एव ब्रह्मविद्या
तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके
सवादमें "विभूतियोग" नामक
दसवा अध्याय।

हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

अथैकादशोऽध्यायः ॥

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥

मदनुग्रहाय, परमम्, गुह्यम्, अध्यात्मसंज्ञितम्,

यत्, त्वया, उक्तम्, वच तेन, मोह., अयम्, विगत, मम ॥१॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचन सुनकर अर्जुन बोला हे भगवन्—

मदनुग्रहाय	= मेरेपर अनुग्रह करनेके लिये	त्वया	= आपके द्वारा
		यत्	= जो
परमम्	= परम	उक्तम्	= कहा गया
गुह्यम्	= गोपनीय	तेन	= उससे
अध्यात्म-संज्ञितम्	= अध्यात्म-विषयक	मम	= मेरा
		अयम्	= यह
वच	= वचन अर्थात् उपदेश	मोह	= अज्ञान
		विगत	= नष्ट हो गया है

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।

त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥

भवाप्ययौ, हि, भूतानाम्, श्रुतौ, विस्तरश, मया,
त्वत्त कमलपत्राक्ष, माहात्म्यम्, अपि, च, अव्ययम् ॥ २ ॥

हि	=क्योंकि	त्वत्त	=आपसे
कमलपत्राक्ष	=हे कमलनेत्र	विस्तरश	=विस्तारपूर्वक
मया	=मैंने	श्रुतौ	=सुने हैं
		च	=तथा (आपका)
भूतानाम्	=भूतोंकी	अव्ययम्	=अविनाशी
भवाप्ययौ	= उत्पत्ति और प्रलय	माहात्म्यम्	=प्रभाव
		अपि	=भी (सुना है)

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

एवम्, एतत्, यथा, आत्थ, त्वम्, आत्मानम्, परमेश्वर,
द्रष्टुम्, इच्छामि, ते, रूपम्, ऐश्वरम्, पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

परमेश्वर	=हे परमेश्वर	ते	=आपके
त्वम्	=आप		
आत्मानम्	=अपनेको	ऐश्वरम्	= ज्ञान ऐश्वर्य शक्ति बल वीर्य और तेजयुक्त
यथा	=जैसा		
आत्थ	=कहते हो	रूपम्	=रूपको
एतत्	=यह (ठीक)		(प्रत्यक्ष)
एवम्	=ऐसा		
(एव)	=ही है (परन्तु)	द्रष्टुम्	=देखना
पुरुषोत्तम	=हे पुरुषोत्तम	इच्छामि	=चाहता हू

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्॥

मन्यसे, यदि, तत्, शक्यम्, मया द्रष्टुम्, इति, प्रभो, योगेश्वर, ततः, मे, त्वम्, दर्शय, आत्मानम्, अव्ययम्॥ ४॥

इसलिये–

प्रभो	=हे प्रभो*	मन्यसे	=मानते हैं
मया	=मेरेद्वारा	ततः	=तो
तत्	=वह (आपका रूप)	योगेश्वर	=हे योगेश्वर
द्रष्टुम्	=देखा जाना	त्वम्	=आप (अपने)
शक्यम्	=शक्य है	अव्ययम्	=अविनाशी
इति	=ऐसा	आत्मानम्	=स्वरूपका
यदि	=यदि	मे	=मुझे
		दर्शय	=दर्शन कराइये

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥

पश्य, मे, पार्थ, रूपाणि, शतशः अथ, सहस्रशः, नानाविधानि, दिव्यानि, नानावर्णाकृतीनि, च॥ ५॥

इस प्रकार अर्जुनके प्रार्थना करनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले–

---

* उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तथा अन्तर्यामीरूपसे शासन करनेवाला होनेसे भगवान्‌का नाम प्रभु है।

पार्थ	= हे पार्थ	च	= और
मे	= मेरे	नानावर्णाकृतीनि	= नानावर्ण तथा आकृतिवाले
शतशः	= सैकड़ों	दिव्यानि	= अलौकिक
अथ	= तथा	रूपाणि	= रूपोंको
सहस्रशः	= हजारों	पश्य	= देख
नानाविधानि	= नानाप्रकारके		

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत॥

पश्य, आदित्यान्, वसून्, रुद्रान्, अश्विनौ, मरुत, तथा,
बहूनि, अदृष्टपूर्वाणि, पश्य, आश्चर्याणि, भारत ॥ ६ ॥

और-

भारत	= हे भरतवंशी अर्जुन (मेरेमें)		(और)
आदित्यान्	= आदित्योंको अर्थात् अदितिके द्वादश पुत्रोंको	मरुत	= उनचास मरुद्गणोंको
	(और)	पश्य	= देख
वसून्	= आठ वसुओंको	तथा	= तथा (और भी)
रुद्रान्	= एकादश रुद्रोंको (तथा)	बहूनि	= बहुतसे
अश्विनौ	= दोनों अश्विनीकुमारोंको	अदृष्टपूर्वाणि	= पहिले न देखे हुए
		आश्चर्याणि	= आश्चर्यमय रूपोंको
		पश्य	= देख

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि॥

इह, एकस्थम्, जगत्, कृत्स्नम्, पश्य, अद्य, सचराचरम्, मम, देहे, गुडाकेश, यत्, च, अन्यत्, द्रष्टुम्, इच्छसि॥७॥

और-

गुडाकेश*	=हे अर्जुन	कृत्स्नम्	=सम्पूर्ण
अद्य	=अब	जगत्	=जगत्को
इह	=इस	पश्य	=देख (तथा)
मम	=मेरे	अन्यत्	=और
देहे	=शरीरमें	च	=भी
एकस्थम्	={ एक जगह स्थित हुए	यत्	=जो (कुछ)
		द्रष्टुम्	=देखना
सचराचरम्	={ चराचर-सहित	इच्छसि	=चाहता है (सो देख)

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥

न, तु, माम्, शक्यसे, द्रष्टुम्, अनेन, एव, स्वचक्षुषा, दिव्यम्, ददामि, ते, चक्षुः, पश्य, मे, योगम्, ऐश्वरम्॥ ८॥

तु	=परन्तु	माम्	=मेरेको

* निद्राको जीतनेवाला होनेसे अर्जुनका नाम गुडाकेश हुआ था।

अनेन	=इन	दिव्यम्	=दिव्य अर्थात् अलौकिक
स्वचक्षुषा	=अपने प्राकृत नेत्रोंद्वारा	चक्षु	=चक्षु
द्रष्टुम्	=देखनेको	ददामि	=देता हूं
एव	=निःसन्देह	(तेन)	=उससे (तू)
न शक्यसे	=समर्थ नहीं है	मे	=मेरे
(अतः)	=इसीसे (मैं)	ऐश्वरम्	=प्रभावको (और)
ते	=तेरे लिये	योगम्	=योगशक्तिको
		पश्य	=देख

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्॥

एवम्, उक्त्वा, ततः, राजन्, महायोगेश्वरः, हरिः, दर्शयामास, पार्थाय परमम् रूपम्, ऐश्वरम्॥ ९॥

संजय बोला—

राजन्	=हे राजन्	उक्त्वा	=कहकर
महायोगेश्वरः	=महायोगेश्वर	ततः	=उसके उपरान्त
	(और)	पार्थाय	=अर्जुनके लिये
		परमम्	=परम
हरिः	=सब पापोंके नाश करनेवाले भगवान्‌ने	ऐश्वरम्	=ऐश्वर्ययुक्त
		रूपम्	=दिव्य स्वरूप
एवम्	=इस प्रकार	दर्शयामास	=दिखाया

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥

अनेकवक्त्रनयनम्, अनेकाद्भुतदर्शनम्,
अनेकदिव्याभरणम्, दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥१०॥

और उस-

अनेकवक्त्रनयनम् = अनेक मुख और नेत्रोंसे युक्त (तथा)
अनेकदिव्याभरणम् = बहुतसे दिव्य भूषणोंसे युक्त (और)
अनेकाद्भुतदर्शनम् = अनेक अद्भुत दर्शनोंवाले (एव)
दिव्यानेकोद्यतायुधम् = बहुतसे दिव्य शस्त्रोंको हाथोंमें उठाये हुए

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरम्, दिव्यगन्धानुलेपनम्,
सर्वाश्चर्यमयम्, देवम्, अनन्तम्, विश्वतोमुखम् ॥११॥

तथा-

दिव्यमाल्याम्बरधरम् = दिव्य माला और वस्त्रोंको धारण किये हुए (और)
दिव्यगन्धानुलेपनम् = दिव्य गन्धका अनुलेपन किये हुए

	(एवं)	विश्वतोमुखम्	= { विराट् स्वरूप
सर्वाश्चर्यमयम्	= { सब प्रकारके आश्चर्योंसे युक्त	देवम्	= { परमदेव परमेश्वरको
अनन्तम्	= सीमारहित	(अपश्यत्)	= अर्जुनने देखा

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥

दिवि, सूर्यसहस्रस्य, भवेत्, युगपत्, उत्थिता,
यदि, भा, सदृशी, सा, स्यात्, भास, तस्य, महात्मन ॥१२॥

और हे राजन्–

दिवि	= आकाशमें	सा	= वह
सूर्यसहस्रस्य	= हजार सूर्योंके		(भी)
		तस्य	= उस
युगपत्	= एक साथ	महात्मन	= { विश्वरूप परमात्माके
उत्थिता	= { उदय होनेसे उत्पन्न हुआ	भास	= प्रकाशके
	(जो)	सदृशी	= सदृश
भा	= प्रकाश	यदि	= कदाचित् ही
भवेत्	= होवे	स्यात्	= होवे

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥

तत्र, एकस्थम्, जगत्, कृत्स्नम्, प्रविभक्तम्, अनेकधा,
अपश्यत्, देवदेवस्य शरीरे, पाण्डव, तदा ॥१३॥

ऐसे आश्चर्यमय रूपको देखते हुए-

पाण्डव = { पाण्डुपुत्र अर्जुनने
तदा = उस कालमें
अनेकधा = अनेक प्रकारसे
प्रविभक्तम् = { विभक्त हुए अर्थात् पृथक् पृथक् हुए
कृत्स्नम् = सम्पूर्ण
जगत् = जगत्को
तत्र = उस
देवदेवस्य = { देवोंके देव श्रीकृष्ण भगवान्‌के
शरीरे = शरीरमें
एकस्थम् = { एक जगह स्थित
अपश्यत् = देखा

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत॥

तत, स, विस्मयाविष्ट, हृष्टरोमा, धनंजय,
प्रणम्य, शिरसा, देवम्, कृताञ्जलि, अभाषत ॥१४॥

और-

ततः = { उसके अनन्तर
स = वह
विस्मयाविष्ट = { आश्चर्यसे युक्त हुआ
हृष्टरोमा = { हर्षित रोमोंवाला
धनंजय = अर्जुन
देवम् = { विश्वरूप परमात्माको
(श्रद्धा भक्ति-सहित)
शिरसा = सिरसे
प्रणम्य = प्रणाम करके
कृताञ्जलि = हाथ जोड़े हुए
अभाषत = बोला

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥१५॥

पश्यामि, देवान्, तव, देव, देहे, सर्वान्, तथा, भूतविशेषसंघान्, ब्रह्माणम्, ईशम्, कमलासनस्थम्, ऋषीन्, च, सर्वान्, उरगान्, च, दिव्यान् ॥१५॥

देव = हे देव
तव = आपके
देहे = शरीरमें
सर्वान् = संपूर्ण
देवान् = देवोंको
तथा = तथा
भूतविशेषसंघान् = { अनेक भूतोंके समुदायोंको
(और)
कमलासनस्थम् = { कमलके आसनपर बैठे हुए
ब्रह्माणम् = ब्रह्माको
(तथा)
ईशम् = महादेवको
च = और
सर्वान् = संपूर्ण
ऋषीन् = ऋषियोंको
च = तथा
दिव्यान् = दिव्य
उरगान् = सर्पोंको
पश्यामि = देखता हूं

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।

नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥१६॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम्, पश्यामि, त्वाम्, सर्वत, अनन्तरूपम्, न, अन्तम्, न, मध्यम्, न, पुन, तव, आदिम्, पश्यामि, विश्वेश्वर, विश्वरूप ॥ १६ ॥

और-

विश्वेश्वर	=हे संपूर्ण विश्वके स्वामिन्	विश्वरूप	=हे विश्वरूप
त्वाम्	=आपको	तव	=आपके
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम्	=अनेक हाथ पेट मुख और नेत्रोंसे युक्त (तथा)	न	=न
सर्वत	=सब ओरसे	अन्तम्	=अन्तको (देखता हू) (तथा)
अनन्तरूपम्	=अनन्त रूपोंवाला	न	=न
		मध्यम्	=मध्यको
		पुन	=और
		न	=न
		आदिम्	=आदिको (ही)
पश्यामि	=देखता हू	पश्यामि	=देखता हू

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥१७॥

किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रिणम्, च, तेजोराशिम्, सर्वत:, दीप्तिमन्तम्, पश्यामि, त्वाम्, दुर्निरीक्ष्यम्, समन्तात्, दीप्तानलार्कद्युतिम्, अप्रमेयम् ॥ १७ ॥

और हे विष्णो-

त्वाम् =आपको (मैं)
किरीटिनम् =मुकुटयुक्त
गदिनम् =गदायुक्त
च =और
चक्रिणम् =चक्रयुक्त
(तथा)
सर्वत =सब ओरसे
दीप्तिमन्तम्=प्रकाशमान
तेजोराशिम्=तेजका पुञ्ज

दीप्तानलार्कद्युतिम् =प्रज्वलित अग्नि और सूर्यके सदृश ज्योतियुक्त
दुर्निरीक्ष्यम् =देखनेमें अति गहन
(और)
अप्रमेयम् =अप्रमेयस्वरूप
समन्तात् =सब ओरसे
पश्यामि =देखता हू

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥१८॥

त्वम्, अक्षरम्, परमम्, वेदितव्यम्, त्वम्, अस्य, विश्वस्य, परम् निधानम्, त्वम्, अव्यय, शाश्वतधर्मगोप्ता, सनातन, त्वम्, पुरुष, मत, मे ॥ १८ ॥

इसलिये हे भगवन्–

त्वम्	=आप (ही)	निधानम्	=आश्रय हैं (तथा)
वेदितव्यम्	=जानने योग्य	त्वम्	=आप (ही)
परमम्	=परम	शाश्वत-धर्मगोप्ता	=अनादि धर्मके रक्षक हैं
अक्षरम्	=अक्षर हैं अर्थात् परब्रह्म परमात्मा हैं (और)		(और)
		त्वम्	=आप (ही)
		अव्यय	=अविनाशी
त्वम्	=आप (ही)	सनातनः	=सनातन
अस्य	=इस	पुरुष	=पुरुष हैं (ऐसा)
विश्वस्य	=जगत्के	मे	=मेरा
परम्	=परम	मत	=मत है

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्॥१९॥

अनादिमध्यान्तम्, अनन्तवीर्यम्, अनन्तबाहुम्, शशिसूर्यनेत्रम्, पश्यामि, त्वाम्, दीप्तहुताशवक्त्रम्, स्वतेजसा, विश्वम्, इदम्, तपन्तम्॥ १९॥

हे परमेश्वर! मैं–

त्वाम्	=आपको	अनादि-मध्यान्तम्	=आदि अन्त और मध्यसे रहित (तथा)

अनन्तवीर्यम् = अनन्त सामर्थ्यसे युक्त

(और)

अनन्तबाहुम् = अनन्त हाथोंवाला

(तथा)

शशिसूर्यनेत्रम् = चन्द्र सूर्यरूप नेत्रोंवाला

(और)

दीप्तहुताशवक्त्रम् = प्रज्वलित अग्निरूप मुखवाला

(तथा)

स्वतेजसा = अपने तेजसे

इदम् = इस

विश्वम् = जगत्‌को

तपन्तम् = तपायमान करता हुआ

पश्यामि = देखता हूँ

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्॥२०॥

द्यावापृथिव्योः, इदम्, अन्तरम्, हि, व्याप्तम्, त्वया, एकेन, दिशः, च, सर्वाः, दृष्ट्वा, अद्भुतम्, रूपम्, उग्रम्, तव, इदम्, लोकत्रयम्, प्रव्यथितम्, महात्मन् ॥ २० ॥

और–

महात्मन् = हे महात्मन्

इदम् = यह

द्यावा-पृथिव्योः = स्वर्ग और पृथिवीके

अन्तरम् = बीचका संपूर्ण आकाश

च = तथा

सर्वाः = सब

दिशः =दिशाएँ
एकेन =एक
त्वया =आपसे
हि =ही
व्याप्तम् =परिपूर्ण हैं (तथा)
तव =आपके
इदम् =इस
अद्भुतम् =अलौकिक

(और)
उग्रम् =भयङ्कर
रूपम् =रूपको
दृष्ट्वा =देखकर
लोकत्रयम् =तीनों लोक
प्रव्यथितम् = { अति व्यथाको प्राप्त हो रहे हैं

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥२१॥

अमी, हि, त्वाम्, सुरसंघाः, विशन्ति, केचित्, भीताः, प्राञ्जलयः, गृणन्ति, स्वस्ति, इति, उक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः, स्तुवन्ति, त्वाम्, स्तुतिभिः, पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

और हे गोविन्द–

अमी =वे (सब)
सुरसङ्घाः = { देवताओंके समूह
त्वाम् =आपमें
हि =ही

विशन्ति =प्रवेश करते हैं
(और)
केचित् =कई एक
भीताः =भयभीत होकर
प्राञ्जलयः =हाथ जोड़े हुए

(आपके नाम और गुणोंका)
गृणन्ति = उच्चारण करते हैं (तथा)
महर्षि-सिद्धसंघा = महर्षि और सिद्धोंके समुदाय
स्वस्ति = कल्याण होवे

इति = ऐसा
उक्त्वा = कहकर
पुष्कलाभि = उत्तम उत्तम
स्तुतिभि = स्तोत्रोंद्वारा
त्वाम् = आपकी
स्तुवन्ति = स्तुति करते हैं

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥२२॥

रुद्रादित्या, वसव, ये, च, साध्या, विश्वे, अश्विनौ, मरुत, च, उष्मपा, च, गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा, वीक्षन्ते, त्वाम्, विस्मिता, च, एव, सर्वे ॥२२॥

और हे परमेश्वर—

ये = जो
रुद्रादित्या = एकादश रुद्र और द्वादश आदित्य
च = तथा
वसव = आठ वसु (और)

साध्या = साध्यगण
विश्वे = विश्वेदेव (तथा)
अश्विनौ = अश्विनीकुमार
च = और
मरुत = मरुद्गण
च = और

ऊष्मपाः	= पितरोंका समुदाय	(ते)	= वे
		सर्वे	= सब
च	= तथा	एव	= ही
गन्धर्व-यक्षासुर-सिद्धसङ्घाः	= गन्धर्व यक्ष राक्षस और सिद्धगणोंके समुदाय हैं	विस्मिताः	= विस्मित हुए
		त्वाम्	= आपको
		वीक्षन्ते	= देखते हैं

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥२३॥

रूपम्, महत्, ते, बहुवक्त्रनेत्रम्, महाबाहो, बहुबाहूरुपादम्, बहूदरम्, बहुदंष्ट्राकरालम्, दृष्ट्वा, लोकाः, प्रव्यथिताः, तथा, अहम् ॥ २३ ॥

और-

महाबाहो	= हे महाबाहो	बहुबाहूरु-पादम्	= बहुत हाथ जंघा और पैरोंवाले
ते	= आपके		(और)
बहुवक्त्र-नेत्रम्	= बहुत मुख और नेत्रोंवाले	बहूदरम्	= बहुत उदरोंवाले
	(तथा)		(तथा)

बहुदंष्ट्रा-करालम्	= बहुतसी विकराल जाड़ोंवाले	प्रव्यथिता	= व्याकुल हो रहे हैं
महत्	= महान्	तथा	= तथा
रूपम्	= रूपको	अहम्	= मैं
दृष्ट्वा	= देखकर	(अपि)	= भी (व्याकुल हो रहा हूं)
लोकाः	= सब लोक		

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥२४॥

नभःस्पृशम्, दीप्तम्, अनेकवर्णम्, व्यात्ताननम्, दीप्त-विशालनेत्रम्, दृष्ट्वा, हि, त्वाम्, प्रव्यथितान्तरात्मा, धृतिम्, न, विन्दामि, शमम्, च, विष्णो ॥ २४ ॥

हि	= क्योंकि		(तथा)
विष्णो	= हे विष्णो	व्यात्ताननम्	= फैलाये हुए मुख (और)
नभःस्पृशम्	= आकाशके साथ स्पर्श किये हुए	दीप्त-विशालनेत्रम्	= प्रकाशमान विशाल नेत्रोंसे युक्त
दीप्तम्	= देदीप्यमान	त्वाम्	= आपको
अनेकवर्णम्	= अनेक रूपोंसे युक्त	दृष्ट्वा	= देखकर

प्रव्यथितान्तरात्मा	= भयभीत अन्तःकरणवाला (मैं)	च	= और
		शमम्	= शान्तिको
		न	= नहीं
धृतिम्	= धीरज	विन्दामि	= प्राप्त होता हू

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥

दंष्ट्राकरालानि, च, ते, मुखानि, दृष्ट्वा, एव, कालानलसन्निभानि, दिशः, न, जाने, न, लभे, च, शर्म, प्रसीद, देवेश, जगन्निवास ॥२५॥

और हे भगवन्‌—

ते	= आपके	जाने	= जानता हू
दंष्ट्राकरालानि	= विकराल जाड़ोंवाले	च	= और
		शर्म	= सुखको
च	= और	एव	= भी
कालानलसन्निभानि	= प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित	न	= नहीं
		लभे	= प्राप्त होता हू
		(अतः)	= इसलिये
मुखानि	= मुखोंको	देवेश	= हे देवेश
दृष्ट्वा	= देखकर	जगन्निवास	= हे जगन्निवास (आप)
दिशः	= दिशाओंको		
न	= नहीं	प्रसीद	= प्रसन्न होवें

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६ ॥

अमी, च, त्वाम्, धृतराष्ट्रस्य, पुत्रा, सर्वे, सह, एव, अवनिपालसंघै, भीष्म, द्रोण, सूतपुत्र, तथा, असौ, सह, अस्मदीयै, अपि, योधमुख्यै ॥२६॥

और मैं देखता हूं कि—

अमी	=वे	भीष्म	=भीष्मपितामह
सर्वे	=सब	द्रोण	=द्रोणाचार्य
एव	=ही	तथा	=तथा
धृतराष्ट्रस्य	=धृतराष्ट्रके	असौ	=वह
पुत्रा	=पुत्र	सूतपुत्र	=कर्ण (और)
अवनि-पालसंघै	={ राजाओंके समुदाय	अस्मदीयै	=हमारे पक्षके
		अपि	=भी
सह	=सहित	योधमुख्यै	={ प्रधान योधाओंके
त्वाम्	=आपमें		
(विशन्ति)	=प्रवेश करते हैं	सह	=सहित
च	=और		(सब-के-सब)

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।

केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥ २७ ॥

वक्त्राणि, ते, त्वरमाणा, विशन्ति, दंष्ट्राकरालानि, भयानकानि, केचित्, विलग्ना, दशनान्तरेषु, संदृश्यन्ते, चूर्णितै, उत्तमाङ्गै ॥२७॥

त्वरमाणा	=वेगयुक्त हुए	केचित्	=कई एक
ते	=आपके	चूर्णितै	=चूर्ण हुए
दंष्ट्राकरालानि	=विकराल जाड़ोंवाले	उत्तमाङ्गै	=सिरोंसहित (आपके)
भयानकानि	=भयानक	दशनान्तरेषु	=दातोंके बीचमें
वक्त्राणि	=मुखोंमें		
विशन्ति	=प्रवेश करते हैं (और)	विलग्ना	=लगे हुए
		संदृश्यन्ते	=दीखते हैं

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥ २८ ॥

यथा, नदीनाम्, बहव, अम्बुवेगा, समुद्रम्, एव, अभिमुखा, द्रवन्ति, तथा, तव, अमी, नरलोकवीरा, विशन्ति, वक्त्राणि, अभिविज्वलन्ति ॥२८॥

और हे विश्वमूर्ते—

यथा	=जैसे	तथा	=वैसे ही
नदीनाम्	=नदियोंके	अमी	=वे
बहवः	=बहुतसे	नरलोक-वीरा	=शूरवीर मनुष्योंके समुदाय (भी)
अम्बुवेगा	=जलके प्रवाह		
समुद्रम्	=समुद्रके	तव	=आपके
एव	=ही		
अभिमुखा	=सन्मुख	अभिविज्वलन्ति	=प्रज्वलित हुए
द्रवन्ति	=दौड़ते हैं अर्थात् समुद्रमें प्रवेश करते हैं	वक्त्राणि	=मुखोंमें
		विशन्ति	=प्रवेश करते हैं

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

यथा, प्रदीप्तम्, ज्वलनम्, पतङ्गा, विशन्ति, नाशाय, समृद्धवेगा, तथा, एव, नाशाय, विशन्ति, लोका, तव, अपि, वक्त्राणि, समृद्धवेगा ॥२९॥

अथवा—

यथा	=जैसे	नाशाय	=नष्ट होनेके लिये
पतङ्गा	=पतङ्ग (मोहके वश होकर)	प्रदीप्तम्	=प्रज्वलित

ज्वलनम्	=अग्निमें	नाशाय	=अपने नाशके लिये
समृद्धवेगा	=अति वेगसे युक्त हुए	तव	=आपके
विशन्ति	=प्रवेश करते हैं	वक्त्राणि	=मुखोंमें
तथा	=वैसे	समृद्धवेगा	=अति वेगसे युक्त हुए
एव	=ही	विशन्ति	=प्रवेश करते हैं
लोका.	=यह सब लोग		
अपि	=भी		

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥ ३० ॥

लेलिह्यसे, ग्रसमान, समन्तात्, लोकान्, समग्रान्, वदनैः, ज्वलद्भि, तेजोभि, आपूर्य, जगत्, समग्रम्, भास, तव, उग्रा, प्रतपन्ति, विष्णो ॥३०॥

और आप उन–

समग्रान्	=सपूर्ण	लेलिह्यसे	=चाट रहे हैं
लोकान्	=लोकोंको	विष्णो	=हे विष्णो
ज्वलद्भिः	=प्रज्वलित	तव	=आपका
वदनै.	=मुखोंद्वारा	उग्रा	=उग्र
ग्रसमानः	=ग्रसन करते हुए	भास	=प्रकाश
समन्तात्	=सब ओरसे	समग्रम्	=सपूर्ण

जगत्	=जगत्को	प्रतपन्ति	= तपायमान करता है
तेजोभि	=तेजके द्वारा		
आपूर्य	=परिपूर्णकरके		

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

आख्याहि, मे, क., भवान्, उग्ररूप, नम, अस्तु, ते, देववर, प्रसीद, विज्ञातुम्, इच्छामि, भवन्तम्, आद्यम्, न, हि प्रजानामि, तव, प्रवृत्तिम् ॥३१॥

हे भगवन्! कृपाकरके—

मे	=मेरे प्रति	आद्यम्	=आदिस्वरूप
आख्याहि	=कहिये (कि)	भवन्तम्	=आपको (मैं)
भवान्	=आप	विज्ञातुम्	=तत्त्वसे जानना
उग्ररूप	=उग्ररूपवाले	इच्छामि	=चाहता हूं
क	=कौन हैं	हि	=क्योंकि
देववर	=हे देवोंमे श्रेष्ठ	तव	=आपकी
ते	=आपको	प्रवृत्तिम्	=प्रवृत्तिको (मैं)
नम	=नमस्कार		
अस्तु	=होवे (आप)	न	=नहीं
प्रसीद	=प्रसन्न होइये	प्रजानामि	=जानता

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२ ॥

काल, अस्मि लोकक्षयकृत्, प्रवृद्धः, लोकान्, समाहर्तुम्, इह, प्रवृत्त, ऋते, अपि, त्वाम्, न, भविष्यन्ति, सर्वे, ये, अवस्थिता, प्रत्यनीकेषु, योधा ॥ ३२ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले हे अर्जुन ! मैं—

लोकक्षयकृत् = लोकोंका नाश करनेवाला	प्रत्यनीकेषु = प्रतिपक्षियोंकी सेनामें
प्रवृद्धः = बढ़ा हुआ	अवस्थिताः = स्थित हुए
काल = महाकाल	योधाः = योधालोग हैं
अस्मि = हूं	(ते) = वे
इह = इस समय (इन)	सर्वे = सब
लोकान् = लोकोंको	त्वाम् = तेरे
समाहर्तुम् = नष्ट करनेके लिये	ऋते = विना
प्रवृत्त = प्रवृत्त हुआ हूं (इसलिये)	अपि = भी
	न = नहीं
ये = जो	भविष्यन्ति = रहेंगे—

अर्थात् तेरे युद्ध न करनेसे भी इन सबका नाश हो जायगा ।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥३३॥

तस्मात्, त्वम्, उत्तिष्ठ, यश, लभस्व, जित्वा, शत्रून्, भुङ्क्ष्व, राज्यम्, समृद्धम्, मया, एव, एते, निहता, पूर्वम्, एव, निमित्तमात्रम्, भव, सव्यसाचिन् ॥३३॥

तस्मात्	=इससे		(शूरवीर)
त्वम्	=तू	पूर्वम्	=पहिलेसे
उत्तिष्ठ	=खड़ा हो (और)	एव	=ही
यश	=यशको	मया	=मेरेद्वारा
लभस्व	=प्राप्त कर (तथा)	निहता	=मारे हुए हैं
शत्रून्	=शत्रुओंको	सव्यसाचिन्	=हे सव्यसाचिन्*
जित्वा	=जीतकर		(तू तो)
समृद्धम्	=धनधान्यसे सम्पन्न	निमित्तमात्रम्	=केवल निमित्तमात्र
राज्यम्	=राज्यको	एव	=ही
भुङ्क्ष्व	=भोग (और)	भव	=हो जा
एते	=यह सब		

---

* बायें हाथसे भी बाण चलानेका अभ्यास होनेसे अर्जुनका नाम सव्यसाची हुआ था।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥३४॥

द्रोणम्, च, भीष्मम्, च, जयद्रथम्, च, कर्णम्, तथा, अन्यान्, अपि, योधवीरान्, मया, हतान्, त्वम्, जहि, मा, व्यथिष्ठा, युध्यस्व, जेतासि, रणे, सपत्नान् ॥ ३४ ॥

तथा इन–

द्रोणम्	=द्रोणाचार्य	योधवीरान्	=शूरवीर योधाओंको
च	=और		
भीष्मम्	=भीष्मपितामह	त्वम्	=तू
च	=तथा	जहि	=मार (और)
जयद्रथम्	=जयद्रथ	मा व्यथिष्ठा	=भय मत कर
च	=और	रणे	=(निःसन्देह तू) युद्धमें
कर्णम्	=कर्ण		
तथा	=तथा	सपत्नान्	=वैरियोंको
अन्यान् अपि	=और भी बहुतसे	जेतासि	=जीतेगा
मया	=मेरे द्वारा	(अत)	=इसलिये
हतान्	=मारे हुए	युध्यस्व	=युद्ध कर

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।

नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥३५॥

एतत्, श्रुत्वा, वचनम्, केशवस्य, कृताञ्जलि, वेपमान, किरीटी, नमस्कृत्वा, भूय, एव, आह, कृष्णम्, सगद्गदम्, भीतभीत, प्रणम्य ॥ ३५ ॥

इसके उपरान्त संजय बोला कि हे राजन्–

केशवस्य	= केशव भगवान्के	भूय	= फिर
		एव	= भी
एतत्	= इस	भीतभीत	= भयभीत हुआ
वचनम्	= वचनको	प्रणम्य	= प्रणामकरके
श्रुत्वा	= सुनकर		
किरीटी	= मुकुटधारी अर्जुन	कृष्णम्	= भगवान् श्रीकृष्णके प्रति
कृताञ्जलि	= हाथ जोड़े हुए	सगद्गदम्	= गद्गद वाणीसे
वेपमान	= कांपता हुआ		
नमस्कृत्वा	= नमस्कारकरके	आह	= बोला

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥३६॥

स्थाने, हृषीकेश, तव, प्रकीर्त्या, जगत्, प्रहृष्यति, अनुरज्यते, च, रक्षांसि, भीतानि, दिशः, द्रवन्ति, सर्वे, नमस्यन्ति, च, सिद्धसङ्घाः ॥ ३६ ॥

कि—

हृषीकेश = हे अन्तर्यामिन्

स्थाने = यह योग्य ही है (कि)

(यत्) = जो

तव = आपके

प्रकीर्त्या = नाम और प्रभावके कीर्तनसे

जगत् = जगत्

प्रहृष्यति = अति हर्षित होता है

च = और

अनुरज्यते = अनुरागको भी प्राप्त होता है

(तथा)

भीतानि = भयभीत हुए

रक्षांसि = राक्षसलोग

दिशः = दिशाओंमें

द्रवन्ति = भागते हैं

च = और

सर्वे = सब

सिद्धसङ्घाः = सिद्धगणोंके समुदाय

नमस्यन्ति = नमस्कार करते हैं

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥३७॥

कस्मात्, च, ते, न, नमेरन्, महात्मन्, गरीयसे, ब्रह्मणः, अपि, आदिकर्त्रे, अनन्त, देवेश, जगन्निवास, त्वम्, अक्षरम्, सत्, असत्, तत्परम्, यत् ॥ ३७ ॥

महात्मन्	= हे महात्मन्	देवेश	= हे देवेश
ब्रह्मणः	= ब्रह्माके	जगन्निवास	= हे जगन्निवास
अपि	= भी	यत्	= जो
आदिकर्त्रे	= आदिकर्ता	सत्	= सत्
च	= और	असत्	= असत् (और)
गरीयसे	= सबसे बड़े	तत्परम्	= उनसे परे
ते	= आपके लिये (वे)		
कस्मात्	= कैसे	अक्षरम्	= अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है
न नमेरन्	= नमस्कार नहीं करें (क्योंकि)	(तत्)	= वह
अनन्त	= हे अनन्त	त्वम्	= आप ही हैं

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥३८॥

त्वम्, आदिदेव, पुरुष, पुराण, त्वम्, अस्य, विश्वस्य, परम्, निधानम्, वेत्ता, असि, वेद्यम्, च, परम्, च, धाम, त्वया, ततम्, विश्वम्, अनन्तरूप ॥ ३८ ॥

और हे प्रभो—

त्वम्	=आप
आदिदेव:	=आदिदेव
	(और)
पुराण:	=सनातन
पुरुष:	=पुरुष हैं
त्वम्	=आप
अस्य	=इस
विश्वस्य	=जगत्‌के
परम्	=परम
निधानम्	=आश्रय
च	=और
वेत्ता	=जाननेवाले

	(तथा)
वेद्यम्	=जानने योग्य
च	=और
परम्	=परम
धाम	=धाम
असि	=हैं
अनन्तरूप	=हे अनन्तरूप
त्वया	=आपसे
	(यह सब)
विश्वम्	=जगत्
ततम्	=व्याप्त अर्थात् परिपूर्ण है

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ ३९ ॥

वायु, यम, अग्नि, वरुण, शशाङ्क, प्रजापति, त्वम्, प्रपितामह, च, नम, नम, ते, अस्तु, सहस्रकृत्व, पुनः, च, भूय, अपि, नम, नम, ते ॥ ३९ ॥

और हे हरे—

त्वम्	=आप
वायु	=वायु
यम	=यमराज
अग्नि	=अग्नि

वरुण	=वरुण	नमः	=नमस्कार
शशाङ्कः	=चन्द्रमा (तथा)	नमः	=नमस्कार
प्रजापतिः	=प्रजाके स्वामी ब्रह्मा	अस्तु	=होवे
		ते	=आपके लिये
च	=और	भूयः	=फिर
प्रपितामहः	=ब्रह्माके भी पिता	अपि	=भी
		पुनः च	=बारम्बार
(असि)	=हैं	नमः	=नमस्कार
ते	=आपके लिये	नमः	=नमस्कार
सहस्रकृत्वः	=हजारों बार		(होवे)

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोपि ततोऽसि सर्वः ॥४०॥

नमः, पुरस्तात्, अथ, पृष्ठतः, ते, नमः, अस्तु, ते, सर्वतः, एव, सर्व, अनन्तवीर्य, अमितविक्रम, त्वम्, सर्वम्, समाप्नोपि, ततः, असि, सर्वः ॥४०॥

और—

अनन्तवीर्य	=हे अनन्त सामर्थ्यवाले	पुरस्तात्	=आगेसे
		अथ	=और
ते	=आपके लिये	पृष्ठतः	=पीछेसे भी

नम	=नमस्कार होवे	त्वम्	=आप
सर्व	=हे सर्वात्मन्	सर्वम्	=सब संसारको
ते	=आपके लिये	समाप्नोषि	=व्याप्त किये हुए हैं
सर्वत	=सब ओरसे	ततः	=इससे (आप ही)
एव	=ही		
नम	=नमस्कार		
अस्तु	=होवे (क्योंकि)	सर्व	=सर्वरूप
अमित-विक्रम	=अनन्त पराक्रमशाली	असि	=हैं

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥ ४१ ॥

सखा, इति, मत्वा, प्रसभम्, यत्, उक्तम्, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे, इति, अजानता, महिमानम्, तव, इदम्, मया, प्रमादात्, प्रणयेन, वा, अपि ॥ ४१ ॥

हे परमेश्वर-

सखा	=सखा	अजानता	=न जानते हुए
इति	=ऐसे	मया	=मेरे द्वारा
मत्वा	=मानकर	प्रणयेन	=प्रेमसे
तव	=आपके	वा	=अथवा
इदम्	=इस	प्रमादात्	=प्रमादसे
महिमानम्	=प्रभावको	अपि	=भी

हे कृष्ण =हे कृष्ण
हे यादव =हे यादव
हे सखे =हे सखे
इति =इस प्रकार
यत् =जो (कुछ)
प्रसभम् =हठपूर्वक
उक्तम् =कहा गया है

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

यत्, च, अवहासार्थम्, असत्कृत:, असि, विहारशय्यासनभोजनेषु, एक:, अथवा, अपि, अच्युत, तत्समक्षम्, तत्, क्षामये, त्वाम्, अहम्, अप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

च =और
अच्युत =हे अच्युत
यत् =जो (आप)
अवहासार्थम् =हसीके लिये
विहार शय्या आसन भोजनेषु =विहार शय्या आसन और भोजनादिकोंमें
एक: =अकेले
अथवा =अथवा
तत्समक्षम् =उन सखाओंके सामने
अपि =भी
असत्कृत: =अपमानित किये गये
असि =हैं
तत् =वह (सब अपराध)

अप्रमेयम्	= { अप्रमेयस्वरूप अर्थात् अचिन्त्य प्रभाववाले	त्वाम्	= आपसे
		अहम्	= मैं
		क्षामये	= क्षमा कराता हूं

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥४३॥

पिता, असि, लोकस्य, चराचरस्य त्वम्, अस्य, पूज्य, च, गुरु, गरीयान्, न, त्वत्सम, अस्ति, अभ्यधिक, कुत, अन्य, लोकत्रये, अपि, अप्रतिमप्रभाव ॥ ४३ ॥

हे विश्वेश्वर-

त्वम्	= आप	अप्रतिमप्रभाव	= { हे अतिशय प्रभाववाले
अस्य	= इस		
चराचरस्य	= चराचर	लोकत्रये	= तीनों लोकोंमें
लोकस्य	= जगत्के	त्वत्सम	= आपके समान
पिता	= पिता	अपि	= भी
च	= और	अन्य	= दूसरा कोई
गरीयान्	= गुरुसे भी बड़े	न	= नहीं
गुरु	= गुरु (एव)	अस्ति	= है (फिर)
पूज्य	= अति पूजनीय	अभ्यधिक	= अधिक
असि	= हैं	कुत	= कैसे (होवे)

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥४४॥

तस्मात्, प्रणम्य, प्रणिधाय, कायम्, प्रसादये, त्वाम्, अहम्, ईशम्, ईड्यम्, पिता, इव, पुत्रस्य, सखा, इव, सख्युः, प्रियः, प्रियायाः, अर्हसि, देव, सोढुम्॥ ४४॥

तस्मात् = इससे (हे प्रभो)
अहम् = मैं
कायम् = शरीरको
प्रणिधाय = अच्छी प्रकार चरणोंमें रखके (और)
प्रणम्य = प्रणाम करके
ईड्यम् = स्तुति करने योग्य
त्वाम् = आप
ईशम् = ईश्वरको
प्रसादये = प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करता हूँ

देव = हे देव
पिता = पिता
इव = जैसे
पुत्रस्य = पुत्रके (और)
सखा = सखा
इव = जैसे
सख्युः = सखाके (और)
प्रियः = पति
(इव) = जैसे
प्रियायाः = प्रिय स्त्रीके (वैसे ही आप भी)
(मम) = मेरे
(अपराधम्) = अपराधको

सोढुम्=सहन करनेके लिये | अर्हसि =योग्य है

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥४५॥

अदृष्टपूर्वम्, हृषित, अस्मि, दृष्ट्वा, भयेन, च, प्रव्यथिम्, मन मे, तत्, एव, मे, दर्शय, देव, रूपम्, प्रसीद, देवेश, जगन्निवास ॥ ४५ ॥

हे विश्वमूर्ते ! मैं–

अदृष्ट-पूर्वम्	=पहिले न देखे हुए आश्चर्यमय आपके इस रूपको	(अत)	=इसलिये
		देव	=हे देव (आप)
		तत्	=उस
दृष्ट्वा	=देखकर	रूपम्	=(अपने चतुर्भुज) रूपको
हृषित	=हर्षित हो रहा		
अस्मि	=हूं (और)	एव	=ही
मे	=मेरा	मे	=मेरे लिये
मन	=मन	दर्शय	=दिखाइये
भयेन	=भयसे	देवेश	=हे देवेश
प्रव्यथितम् च	=अति व्याकुल भी हो रहा है	जगन्निवास	=हे जगन्निवास
		प्रसीद	=प्रसन्न होइये

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥४६॥

किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रहस्तम्, इच्छामि, त्वाम्, द्रष्टुम्, अहम्, तथा, एव, तेन, एव, रूपेण, चतुर्भुजेन, सहस्रबाहो, भव, विश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

और हे विष्णो-

अहम्	= मैं	इच्छामि	= चाहता हूं
तथा	= वैसे	(अतः)	= इसलिये
एव	= ही	विश्वमूर्ते	= हे विश्वस्वरूप
त्वाम्	= आपको	सहस्रबाहो	= हे सहस्रबाहो (आप)
किरीटिनम्	= मुकुट धारण किये हुए (तथा)	तेन	= उस
		एव	= ही
गदिनम् चक्रहस्तम्	= गदा और चक्र हाथमें लिये हुए	चतुर्भुजेन	= चतुर्भुज
		रूपेण	= रूपसे (युक्त)
द्रष्टुम्	= देखना	भव	= होइये

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।

तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥४७॥

मया, प्रसन्नेन तव, अर्जुन, इदम्, रूपम्, परम्, दर्शितम्, आत्मयोगात्, तेजोमयम्, विश्वम्, अनन्तम्, आद्यम्, यत्, मे, त्वदन्येन, न, दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

इस प्रकार अर्जुनकी प्रार्थनाको सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् बोले—

अर्जुन =हे अर्जुन
प्रसन्नेन =अनुग्रहपूर्वक
मया =मैंने
आत्मयोगात्= { अपनी योगशक्तिके प्रभावसे
इदम् =यह
मे =मेरा
परम् =परम
तेजोमयम् =तेजोमय
आद्यम् =सबका आदि
(और)
अनन्तम् =सीमारहित
विश्वम् =विराट्
रूपम् =रूप
तव =तेरेको
दर्शितम् =दिखाया है
यत् =जो (कि)
त्वदन्येन = { तेरे सिवाय दूसरेसे
न दृष्टपूर्वम् = { पहिले नहीं देखा गया

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥४८॥

न, वेदयज्ञाध्ययनै, न, दानै, न, च, क्रियाभि, न, तपोभि., उग्रै, एवंरूप, शक्य, अहम्, नृलोके, द्रष्टुम्, त्वदन्येन, कुरुप्रवीर ॥४८॥

कुरुप्रवीर	=हे अर्जुन	दानै	=दानसे (और)
नृलोके	=मनुष्यलोकमें	न	=न
एवंरूप	=इस प्रकार विश्वरूपवाला	क्रियाभि	=क्रियाओंसे
		च	=और
अहम्	=मैं	न	=न
न	=न	उग्रै	=उग्र
वेद-यज्ञाध्ययनै	=वेद और यज्ञोंके अध्ययनसे (तथा)	तपोभि	=तपोंसे (ही)
		त्वदन्येन	=तेरे सिवाय दूसरेसे
		द्रष्टुम्	=देखा जानेको
न	=न	शक्य	=शक्य हूँ

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥४९॥

मा, ते, व्यथा, मा, च, विमूढभाव, दृष्ट्वा, रूपम्, घोरम्, ईदृक्, मम, इदम्, व्यपेतभी, प्रीतमना, पुन, त्वम्, तत्, एव, मे, रूपम, इदम्, प्रपश्य ॥४९॥

ईदृक्	=इस प्रकारके
मम	=मेरे
इदम्	=इस
घोरम्	=विकराल
रूपम्	=रूपको
दृष्ट्वा	=देखकर
ते	=तेरेको
व्यथा	=व्याकुलता
मा	=न होवे
च	=और
विमूढभाव	=मूढभाव (भी)
मा	=न होवे (और)
व्यपेतभी	=भयरहित
प्रीतमना	=प्रीतियुक्त मनवाला
त्वम्	=तू
तत्	=उस
एव	=ही
मे	=मेरे
इदम्	=इस
रूपम्	=(शङ्ख चक्र गदा पद्मसहित चतुर्भुज) रूपको
पुन	=फिर
प्रपश्य	=देख

संजय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥५०॥

इति, अर्जुनम्, वासुदेव, तथा, उक्त्वा, स्वकम्, रूपम्, दर्शयामास भूय, आश्वासयामास, च, भीतम्, एनम्, भूत्वा, पुन, सौम्यवपु, महात्मा ॥५०॥

उसके उपरान्त सञ्जय बोला हे राजन्-

वासुदेव	= { वासुदेव भगवान्ने	च	= और
अर्जुनम्	= अर्जुनके प्रति	पुन	= फिर
इति	= इस प्रकार	महात्मा	= महात्मा कृष्णने
उक्त्वा	= कहकर	सौम्यवपु	= सौम्यमूर्ति
भूय	= फिर	भूत्वा	= होकर
तथा	= वैसे ही	एनम्	= इस
स्वकम्	= अपने	भीतम्	= { भयभीत हुए अर्जुनको
रूपम्	= चतुर्भुजरूपको	आश्वास-यामास	= धीरज दिया
दर्शयामास	= दिखाया		

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः॥

दृष्ट्वा, इदम्, मानुषम्, रूपम्, तव, सौम्यम्, जनार्दन, इदानीम्, अस्मि, सवृत्त, सचेता, प्रकृतिम्, गत ॥५१॥

उसके उपरान्त अर्जुन बोला-

जनार्दन	= हे जनार्दन	दृष्ट्वा	= देखकर
तव	= आपके	इदानीम्	= अब (मैं)
इदम्	= इस	सचेता	= शान्तचित्त
सौम्यम्	= अतिशान्त	सवृत्त	= हुआ
मानुषम्	= मनुष्य	प्रकृतिम्	= { अपने स्वभावको
रूपम्	= रूपको		

गत	=प्राप्त हो गया	असि	=हूं

श्रीभगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः॥

सुदुर्दर्शम्, इदम्, रूपम, दृष्टवानसि, यत्, मम,
देवा, अपि, अस्य रूपस्य, नित्यम्, दर्शनकाङ्क्षिण ॥५२॥

इस प्रकार अर्जुनके वचनको सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् बोले
हे अर्जुन–

मम	=मेरा	(यत)	=क्योंकि
इदम्	=यह	देवा	=देवता
रूपम्	=(चतुर्भुज) रूप	अपि	=भी
सुदुर्दर्शम्	={ देखनेको अति दुर्लभ है	नित्यम्	=सदा
	(कि)	अस्य	=इस
यत्	=जिसको	रूपस्य	=रूपके
	(तुमने)	दर्शन-काङ्क्षिण	={ दर्शन करनेकी इच्छावाले हैं
दृष्टवानसि	=देखा है		

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥

न, अहम्, वेदै, न, तपसा, न, दानेन, न, च, इज्यया,
शक्य, एवविध, द्रष्टुम्, दृष्टवानसि, माम्, यथा ॥५३॥

और हे अर्जुन–

न	=न	एवंविध	=इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला
वेदैः	=वेदोंसे	अहम्	=मैं
न	=न	द्रष्टुम्	=देखा जानेको
तपसा	=तपसे	शक्यः	=शक्य हूं (कि)
न	=न	यथा	=जैसे
दानेन	=दानसे	माम्	=मेरेको
च	=और	(त्वम्)	=तुमने
न	=न	दृष्टवानसि	=देखा है
इज्यया	=यज्ञसे		

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥

भक्त्या, तु, अनन्यया, शक्यः, अहम्, एवंविधः, अर्जुन,
ज्ञातुम्, द्रष्टुम्, च, तत्त्वेन, प्रवेष्टुम्, च, परंतप ॥५४॥

परन्तु–

परंतप	=हे श्रेष्ठ तपवाले	तु	=तो
अर्जुन	=अर्जुन	एवंविधः	=इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला
अनन्यया	=अनन्य*		
भक्त्या	=भक्तिकरके		

* अनन्यभक्तिका भाव अगले श्लोकमें विस्तारपूर्वक कहा है ।

अहम् = मैं

द्रष्टुम् = प्रत्यक्ष देखनेके लिये (और)

तत्त्वेन = तत्त्वसे

ज्ञातुम् = जाननेके लिये

च = तथा

प्रवेष्टुम् = प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये

च = भी

शक्य = शक्य हूँ

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥

मत्कर्मकृत्, मत्परम, मद्भक्त, सङ्गवर्जित, निर्वैर, सर्वभूतेषु, य, स, माम्, एति, पाण्डव ॥५५॥

पाण्डव = हे अर्जुन

य = जो पुरुष

मत्कर्मकृत् = केवल मेरे ही लिये (सब कुछ मेरा समझता हुआ) यज्ञ, दान और तप आदि संपूर्ण कर्तव्यकर्मोंका करनेवाला है (और)

मत्परम = मेरे परायण है अर्थात् मेरेको परम आश्रय और परम गति मानकर मेरी प्राप्तिके लिये तत्पर है (तथा)

मद्भक्त = मेरा भक्त है अर्थात् मेरे नाम गुण प्रभाव और रहस्यके श्रवण कीर्तन मनन ध्यान और पठनपाठनका प्रेमसहित निष्कामभावसे निरन्तर अभ्यास करनेवाला है (और)

सङ्गवर्जित = { आसक्ति-रहित है अर्थात् स्त्री पुत्र और धनादि सपूर्ण सांसारिक पदार्थोंमें स्नेह-रहित है (और)

सर्वभूतेषु = { सपूर्ण भूत-प्राणियोंमें
निर्वैर = { वैरभावसे रहितहै *(ऐसा)
स = { वह (अनन्य भक्तिवाला पुरुष)
माम् = मेरेको (ही)
एति = प्राप्त होता है

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्म-विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-सवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्याय ॥११॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एव ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके सवादमें "विश्वरूपदर्शनयोग" नामक ग्यारहवा अध्याय ॥ ११ ॥

हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत्

---

* सर्वत्र भगवत्बुद्धि हो जानेसे उस पुरुषका अति अपराध करनेवालेमें भी वैरभाव नहीं होता है फिर औरोंमें तो कहना ही क्या है।

ॐ

श्रीपरमात्मने नम.

अथ द्वादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमा. ॥

एवम्, सततयुक्ता, ये, भक्ता, त्वाम्, पर्युपासते,
ये, च, अपि, अक्षरम्, अव्यक्तम्, तेषाम्, के, योगवित्तमा ॥१॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचनोंको सुनकर अर्जुन बोला हे मनमोहन-

ये	=जो	पर्युपासते	= अति श्रेष्ठभावसे उपासते हैं
भक्ता	= अनन्यप्रेमी भक्तजन	च	=और
एवम्	= इस पूर्वोक्त प्रकारसे	ये	=जो
सततयुक्ता	= निरन्तर आपके भजन ध्यानमें लगे हुए	अक्षरम्	= अविनाशी सच्चिदानन्द-घन
		अव्यक्तम्	=निराकारको
		अपि	=ही (उपासते हैं)
त्वाम्	= आप सगुणरूप परमेश्वरको	तेषाम्	= उन दोनों प्रकारके भक्तोंमें

योगवित्तमा	= अतिउत्तम योगवेत्ता	के	= कौन हैं

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥

मयि, आवेश्य, मन , ये, माम् , नित्ययुक्ता , उपासते,
श्रद्धया, परया, उपेता , ते, मे, युक्ततमा , मता ॥ २ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले हे अर्जुन-

मयि	= मेरेमें	माम्	= मुझ सगुणरूप परमेश्वरको
मन	= मनको		
आवेश्य	= एकाग्रकरके	उपासते	= भजते हैं
नित्ययुक्ता	= निरन्तर मेरे भजन ध्यानमें लगे हुए*	ते	= वे
		मे	= मेरेको
ये	= जो भक्तजन	युक्ततमा	= योगियोंमे भी अति उत्तम योगी
परया	= अतिशय श्रेष्ठ		
श्रद्धया	= श्रद्धासे		
उपेता	= युक्त हुए	मता	= मान्य हैं-

अर्थात् उनको में अति श्रेष्ठ मानता हू

---

* अर्थात् गीता अध्याय ११ श्लोक ५५ म लिखे हुए प्रकारसे निरन्तर मेरेमें लगे हुए ।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

ये, तु, अक्षरम्, अनिर्देश्यम्, अव्यक्तम्, पर्युपासते,
सर्वत्रगम् अचिन्त्यम्, च, कूटस्थम्, अचलम्, ध्रुवम्॥ ३॥
संनियम्य, इन्द्रियग्रामम्, सर्वत्र, समबुद्धय,
ते, प्राप्नुवन्ति, माम्, एव, सर्वभूतहिते, रता॥ ४॥

तु	=और	ध्रुवम्	=नित्य
ये	=जो पुरुष	अचलम्	=अचल
इन्द्रिय-ग्रामम्	=इन्द्रियोंके समुदायको	अव्यक्तम्	=निराकार
संनियम्य	=अच्छी प्रकार वशमें करके	अक्षरम्	=अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको
अचिन्त्यम्	=मन बुद्धिसे परे	पर्युपासते	=निरन्तर एकीभावसे ध्यान करते हुए उपासते हैं
सर्वत्रगम्	=सर्वव्यापी		
अनिर्देश्यम्	=अकथनीय स्वरूप		
च	=और	ते	=वे
कूटस्थम्	=सदा एकरस रहनेवाले	सर्वभूत-हिते रता	=संपूर्ण भूतोंके हितमें रत हुए

(और)	(भी)
सर्वत्र = सबमें	माम् = मेरेको
समबुद्धयः = { समानभाव-वाले योगी	एव = ही
	प्राप्नुवन्ति = प्राप्त होते हैं

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥

क्लेशः, अधिकतरः, तेषाम्, अव्यक्तासक्तचेतसाम्, अव्यक्ता, हि, गतिः, दुःखम्, देहवद्भिः, अवाप्यते ॥ ५ ॥

किन्तु-

तेषाम् = उन	अधिकतरः = विशेष है
अव्यक्तासक्तचेतसाम् = { सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें आसक्त हुए चित्तवाले पुरुषोंके	हि = क्योंकि
(साधनमें)	देहवद्भिः = { देहाभिमानियोंसे
क्लेशः = { क्लेश अर्थात् परिश्रम	अव्यक्ता = { अव्यक्त-विषयक
	गतिः = गति
	दुःखम् = दुःखपूर्वक
	अवाप्यते = { प्राप्त की जाती है

अर्थात् जबतक शरीरमें अभिमान रहता है तबतक शुद्ध सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें स्थिति होनी कठिन है ।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥

ये, तु, सर्वाणि, कर्माणि, मयि, सन्यस्य, मत्परा, अनन्येन, एव, योगेन, माम्, ध्यायन्त, उपासते ॥ ६ ॥

तु	=और
ये	=जो
मत्परा	=मेरे परायण हुए भक्तजन
सर्वाणि	=सपूर्ण
कर्माणि	=कर्मोंको
मयि	=मेरेमें
सन्यस्य	=अर्पणकरके
माम्	=मुझ सगुणरूप परमेश्वरको
एव	=ही
अनन्येन	=(तेलधाराके सदृश) अनन्य
योगेन	=ध्यानयोगसे
ध्यायन्त	=निरन्तर चिन्तन करते हुए
उपासते	=भजते हैं*

तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥

तेषाम्, अहम्, समुद्धर्त्ता, मृत्युससारसागरात्, भवामि, नचिरात्, पार्थ, मयि, आवेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

---

* इस श्लोकका विशेष भाव जाननेके लिये गीता अध्याय ११ श्लोक ५५ देखना चाहिये ।

पार्थ	=हे अर्जुन	नचिरात्	=शीघ्र ही
तेषाम्	=उन	मृत्युससार-सागरात्	=मृत्युरूप ससारसमुद्रसे
मयि	=मेरेमें		
आवेशित-चेतसाम्	=चित्तको लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका	समुद्धर्त्ता	=उद्धार करनेवाला
अहम्	=मैं	भवामि	=होता हूं

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥

मयि, एव, मन, आधत्स्व, मयि, बुद्धिम्, निवेशय,
निवसिष्यसि, मयि, एव, अत, ऊर्ध्वम्, न, सशय ॥ ८ ॥

इसलिये हे अर्जुन ! तू–

मयि	=मेरेमें	मयि	=मेरेमें
मन	=मनको	एव	=ही
आधत्स्व	=लगा (और)	निवसिष्यसि	=निवास करेगा अर्थात् मेरेको ही प्राप्त होगा
मयि	=मेरेमें		
एव	=ही		
बुद्धिम्	=बुद्धिको	(अत्र)	=इसमें (कुछ भी)
निवेशय	=लगा		
अत	=इसके	सशय	=सशय
ऊर्ध्वम्	=उपरान्त (तू)	न	=नहीं है

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥

अथ, चित्तम्, समाधातुम्, न, शक्नोषि, मयि, स्थिरम्,
अभ्यासयोगेन, ततः, माम्, इच्छ, आप्तुम्, धनंजय ॥ ९ ॥

और-

अथ	=यदि (तू)	ततः	=तो
चित्तम्	=मनको	धनंजय	=हे अर्जुन
मयि	=मेरेमें	अभ्यास-योगेन	= { अभ्यासरूप* योगके द्वारा
स्थिरम्	=अचल	माम्	=मेरेको
समाधातुम्	= { स्थापन करनेके लिये	आप्तुम्	=प्राप्त होनेके लिये
न शक्नोषि	=समर्थ नहीं है	इच्छ	=इच्छा कर

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥

अभ्यासे, अपि, असमर्थः, असि, मत्कर्मपरमः, भव,
मदर्थम्, अपि, कर्माणि, कुर्वन्, सिद्धिम्, अवाप्स्यसि ॥१०॥

और यदि तू-

अभ्यासे	= { ऊपर कहे हुए अभ्यासमें	असमर्थः	=असमर्थ
		असि	=है
अपि	=भी	(तर्हि)	=तो

---

* भगवान्‌के नाम और गुणोंका श्रवण कीर्तन मनन तथा श्वासके द्वारा जप और भगवत्प्राप्तिविषयक शास्त्रोंका पठनपाठन इत्यादिक चेष्टाएँ भगवत्प्राप्तिके लिये वारम्बार करनेका नाम अभ्यास है ।

मत्कर्म-परम = { केवल मेरे लिये कर्म करनेके ही परायण*
भव =हो
(इस प्रकार)
मदर्थम् =मेरे अर्थ
कर्माणि =कर्मोंको
कुर्वन् =करता हुआ
अपि =भी
सिद्धिम् = { मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको (ही)
अवाप्स्यसि =प्राप्त होगा

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्॥

अथ, एतत्, अपि, अशक्तः, असि, कर्तुम्, मद्योगम्, आश्रितः, सर्वकर्मफलत्यागम्, ततः, कुरु, यतात्मवान् ॥११॥

और-

अथ =यदि
एतत् =इसको
अपि =भी
कर्तुम् =करनेके लिये
अशक्तः =असमर्थ
असि =है
ततः =तो
यतात्मवान्= { जीते हुए मनवाला
(और)
मद्योगम् = { मेरी प्राप्तिरूप योगके
आश्रितः =शरण हुआ

* स्वार्थको त्यागकर तथा परमेश्वरको ही परम आश्रय और परम गति समझकर निष्काम प्रेमभावसे सतीशिरोमणि पतिव्रता स्त्रीकी भांति मन वाणी और शरीरद्वारा परमेश्वरके ही लिये यज्ञ दान और तपादि सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंके करनेका नाम "भगवत् अर्थ कर्म करनेके परायण होना" है।

स्वकर्मफलत्यागम्	= सब कर्मोंके फलका मेरे लिये त्याग*	कुरु	= कर

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासा-
ज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्याग-
स्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥१२॥

श्रेय, हि, ज्ञानम्, अभ्यासात्, ज्ञानात्, ध्यानम्, विशिष्यते, ध्यानात्, कर्मफलत्याग, त्यागात्, शान्ति, अनन्तरम् ॥१२॥

हि	= क्योंकि (मर्मको न जानकर किये हुए)	ज्ञानात्	= परोक्षज्ञानसे
अभ्यासात्	= अभ्याससे	ध्यानम्	= मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान
ज्ञानम्	= परोक्षज्ञान†	विशिष्यते	= श्रेष्ठ है (तथा)
श्रेय	= श्रेष्ठ है (और)	ध्यानात्	= ध्यानसे भी

---

* गीता अध्याय ९ श्लोक २७ में इसका विस्तार देखना चाहिये ।

† सुननेसे और शास्त्र पठन करनेसे परमेश्वरके स्वरूपका जो अनुमान ज्ञान होता है उसीका नाम परोक्षज्ञान है ।

कर्मफल-त्याग = { सब कर्मोंके फलका मेरे लिये त्याग* करना

(विशिष्यते) = श्रेष्ठ है

(और)

त्यागात् = त्यागसे

अनन्तरम् = तत्काल ही

शान्ति = { परम शान्ति होती है

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

अद्वेष्टा, सर्वभूतानाम्, मैत्र करुण, एव, च,
निर्मम, निरहकार, समदु:खसुख क्षमी ॥१३॥

इस प्रकार शान्तिको प्राप्त हुआ जो पुरुष–

सर्वभूतानाम् = सब भूतोंमे

अद्वेष्टा = { द्वेषभावसे रहित

(एव)

मैत्र = { स्वार्थरहित सबका प्रेमी

च = और

करुण = { हेतुरहित दयालु है

(तथा)

एव = †

निर्मम = { ममतासे रहित (एव)

निरहकार = { अहकारसे रहित

---

* केवल भगवत्-अर्थ कर्म करनेवाले पुरुषका भगवत्में प्रेम और श्रद्धा तथा भगवत्का चिन्तन भी बना रहता है इसलिये ध्यानसे कर्मफलका त्याग श्रेष्ठ कहा है ।

† "एव" शब्द यहा सब गुणोंका समुच्चय करनेके लिये समझना चाहिये ।

समदुःखसुखः = { सुख दुःखों- की प्राप्तिमें सम } (और)

क्षमी = { क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है }

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

संतुष्ट, सततम्, योगी, यतात्मा, दृढनिश्चय,

मयि, अर्पितमनोबुद्धि, य, मद्भक्त, स, मे, प्रिय ॥ १४॥

तथा–

य = जो

योगी = { ध्यानयोगमें युक्त हुआ }

सततम् = निरन्तर

संतुष्ट = { लाभ हानिमें संतुष्ट है } (तथा)

यतात्मा = { मन और इन्द्रियों- सहित शरीरको वशमें किये हुए }

दृढनिश्चय = { मेरेमें दृढ निश्चयवाला है }

स = वह

मयि = मेरेमें

अर्पित-मनोबुद्धि = { अर्पण किये हुए मन बुद्धिवाला }

मद्भक्त = मेरा भक्त

मे = मेरेको

प्रिय = प्रिय है

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥

यस्मात्, न, उद्विजते, लोक लोकात्, न, उद्विजते, च, य,
हर्षामर्षभयोद्वेगै, मुक्त, य, स, च, मे, प्रिय ॥१५॥

तथा-

यस्मात्	=जिससे	च	=तथा
लोक	=कोई भी जीव	य	=जो
न उद्विजते	= { उद्वेगको प्राप्त नहीं होता है	हर्ष	=हर्ष
		अमर्ष	=अमर्ष*
च	=और	भय	=भय (और)
		उद्वेगै	=उद्वेगादिकोंसे
य	=जो (स्वयम् भी)	मुक्त	=रहित है
लोकात्	=किसी जीवसे	स	=वह भक्त
न उद्विजते	= { उद्वेगको प्राप्त नहीं होता है	मे	=मेरेको
		प्रिय	=प्रिय है

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

अनपेक्ष, शुचि, दक्ष, उदासीन, गतव्यथ,
सर्वारम्भपरित्यागी, य, मद्भक्त, स, मे, प्रिय ॥१६॥

और-

य	=जो पुरुष	अनपेक्ष	= { आकांक्षासे रहित (तथा)

*दूसरेकी उन्नतिको देखकर संताप होनेका नाम अमर्ष है।

शुचि = बाहर भीतरसे शुद्ध* (और)
दक्षः = चतुर है अर्थात् जिस कामके लिये आया था उसको पूरा कर चुका है (एव)
उदासीनः = पक्षपातसे रहित (और)
गतव्यथ = दुःखोंसे छूटा हुआ है
सः = वह
सर्वारम्भपरित्यागी = सर्व आरम्भोंका त्यागी †
मद्भक्तः = मेरा भक्त
मे = मेरेको
प्रियः = प्रिय है

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥

यः, न, हृष्यति, न, द्वेष्टि, न, शोचति, न, काङ्क्षति, शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान्, यः, सः, मे, प्रियः ॥१७॥

और-

यः = जो
न = न (कभी)
हृष्यति = हर्षित होता है
न = न
द्वेष्टि = द्वेष करता है
न = न
शोचति = शोच करता है
न = न
काङ्क्षति = कामना करता है (तथा)
यः = जो
शुभाशुभपरित्यागी = शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंके फलका त्यागी है
सः = वह

---

*गीता अध्याय १३ श्लोक ७ की टिप्पणीमें इसका विस्तार देखना चाहिये ।

† अर्थात् मन वाणी और शरीरद्वारा प्रारब्धसे होनेवाले सम्पूर्ण स्वाभाविक कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्यागी ।

भक्तिमान्	= भक्तियुक्त पुरुष	मे	= मेरेको
		प्रिय	= प्रिय है

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥

सम , शत्रौ, च, मित्रे, च, तथा, मानापमानयो ,
शीतोष्णसुखदु खेषु, सम , सङ्गविवर्जित ॥ १८ ॥

और जो पुरुष—

शत्रौ	= शत्रु	शीतोष्ण-सुखदु खेषु	= सर्दी गर्मी और सुख-दु खादिक द्वन्द्वोंमें
मित्रे	= मित्रमें	सम	= सम है
च	= और	च	= और
मानापमानयो	= मान अपमानमें	सङ्ग-विवर्जित	= (सब ससारमें) आसक्तिसे रहित है
सम	= सम है		
तथा	= तथा		

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥

तुल्यनिन्दास्तुति , मौनी, सतुष्ट , येन, केनचित्,
अनिकेत , स्थिरमति , भक्तिमान् , मे, प्रिय , नर ॥१९॥

तथा जो—

तुल्य-निन्दास्तुति	= निन्दा स्तुतिको समान समझनेवाला (और)	संतुष्ट	= सदा ही संतुष्ट है (और)
		अनिकेत	= रहनेके स्थानमें ममतासे रहित है
मौनी	= मननशील है* (एव)	(स)	= वह
		स्थिरमति	= स्थिर बुद्धिवाला
येन केनचित्	= जिस किस प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें	भक्तिमान्	= भक्तिमान्
		नरः	= पुरुष
		मे	= मेरेको
		प्रियः	= प्रिय है

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥

ये, तु, धर्म्यामृतम्, इदम्, यथा, उक्तम्, पर्युपासते, श्रद्दधाना, मत्परमा, भक्ता, ते, अतीव, मे, प्रिया ॥२०॥

तु	= और	मत्परमा	= मेरे परायण हुए†
ये	= जो		

---

* अर्थात् ईश्वरके स्वरूपका निरन्तर मनन करनेवाला है।

† अर्थात् मेरेको परम आश्रय और परम गति एवं सबका आत्मरूप और सबसे परे परम पूज्य समझकर विशुद्ध प्रेमसे मेरी प्राप्तिके लिये तत्पर हुए।

श्रद्दधाना	= श्रद्धायुक्त* पुरुष	पर्युपासते	= निष्कामभावसे सेवन करते हैं
इदम्	= इस	ते	= वे
यथा उक्तम्	= ऊपर कहे हुए	भक्ता	= भक्त
		मे	= मेरेको
धर्म्यामृतम्	= धर्ममय अमृतको	अतीव	= अतिशय
		प्रिया	= प्रिय हैं

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु

ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-

संवादे भक्तियोगो नाम

द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या

तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और

अर्जुनके संवादमें "भक्तियोग"

नामक बारहवां अध्याय ॥१२॥

हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत्

---

* वेद शास्त्र महात्मा और गुरुजनोंके तथा परमेश्वरके वचनोंमें प्रत्यक्षके सदृश विश्वासका नाम श्रद्धा है।

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥

इदम्, शरीरम्, कौन्तेय, क्षेत्रम्, इति, अभिधीयते,
एतत्, य, वेत्ति, तम्, प्राहुः, क्षेत्रज्ञ, इति, तद्विद ॥ १ ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले—

कौन्तेय	=हे अर्जुन	वेत्ति	=जानता है
इदम्	=यह	तम्	=उसको
शरीरम्	=शरीर	क्षेत्रज्ञ	=क्षेत्रज्ञ
क्षेत्रम्	=क्षेत्र है*	इति	=ऐसा
इति	=ऐसे		
अभिधीयते	=कहा जाता है (और)	तद्विद	=उनके तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानीजन
एतत्	=इसको		
य	=जो	प्राहु	=कहते हैं

---

* जैसे खेतमें बोये हुए बीजोंका उनके अनुरूप फल समयपर प्रकट होता है वैसे ही इसमें बोये हुए कर्मोंके सस्काररूप बीजोंका फल समयपर प्रकट होता है इसलिये इसका नाम क्षेत्र ऐसा कहा है।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम॥

क्षेत्रज्ञम्, च, अपि, माम्, विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु, भारत, क्षेत्रक्षेत्रज्ञयो:, ज्ञानम्, यत्, तत्, ज्ञानम्, मतम्, मम॥२॥

च =और
भारत =हे अर्जुन
(तू)
सर्वक्षेत्रेषु =सब क्षेत्रोंमें
क्षेत्रज्ञम् = { क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा
अपि =भी
माम् =मेरेको ही
विद्धि =जान*
(और)
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयो: = { क्षेत्रक्षेत्रज्ञका अर्थात् विकारसहित प्रकृतिका और पुरुषका
यत् =जो
ज्ञानम् = { तत्त्वसे जानना है†
तत् =वह
ज्ञानम् =ज्ञान है
(इति) =ऐसा
मम =मेरा
मतम् =मत है

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु॥

---

* गीता अध्याय १५ श्लोक ७ और उसकी टिप्पणी देखनी चाहिये।

† गीता अध्याय १३ श्लोक २३ और उसकी टिप्पणी देखनी चाहिये।

तत्, क्षेत्रम्, यत्, च, यादृक्, च, यद्विकारि, यतः, च, यत्, सः, च, यः, यत्प्रभावः, च, तत्, समासेन, मे, शृणु ॥३॥

इसलिये—

तत्	= वह	च	= तथा
क्षेत्रम्	= क्षेत्र	सः	= वह (क्षेत्रज्ञ)
यत्	= जो है		
च	= और	च	= भी
यादृक्	= जैसा है	यः	= जो है (और)
च	= तथा	यत्प्रभावः	= जिस प्रभाव-वाला है
यद्विकारि	= जिन विकारों-वाला है	तत्	= वह सब
च	= और	समासेन	= संक्षेपसे
यतः	= जिस कारणसे	मे	= मेरेसे
यत्	= जो हुआ है	शृणु	= सुन

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

ऋषिभिः, बहुधा, गीतम्, छन्दोभिः, विविधैः, पृथक्, ब्रह्मसूत्रपदैः, च, एव, हेतुमद्भिः, विनिश्चितैः ॥४॥

यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका तत्त्व—

ऋषिभिः	= ऋषियोंद्वारा	(च)	= और
बहुधा गीतम्	= बहुत प्रकारसे कहा गया है अर्थात् समझाया गया है	विविधैः	= नाना प्रकारके
		छन्दोभिः	= वेदमन्त्रोंसे
		पृथक्	= विभागपूर्वक
		(गीतम्)	= कहा गया है

च =तथा।

विनिश्चितैः = { अच्छी प्रकार निश्चय किये हुए

हेतुमद्भिः =युक्तियुक्त

ब्रह्मसूत्रपदैः = { ब्रह्मसूत्रके पदोंद्वारा

एव =भी (वैसे ही कहा गया है)

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥

महाभूतानि, अहंकारः, बुद्धिः, अव्यक्तम्, एव, च,
इन्द्रियाणि, दश, एकम्, च, पञ्च, च, इन्द्रियगोचराः ॥ ५ ॥

और हे अर्जुन ! वही मैं तेरे लिये कहता हूँ कि—

महाभूतानि =पाँच महाभूत*

अहंकारः =अहंकार

बुद्धिः =बुद्धि

च =और

अव्यक्तम् = { मूल प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया

एव =भी

च =तथा

दश =दस

इन्द्रियाणि =इन्द्रियाँ†

एकम् =एक मन

च =और

पञ्च =पाँच

इन्द्रियगोचराः = { इन्द्रियोंके विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध

---

* अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवीका सूक्ष्मभाव ।

† अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण एवं वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा ।

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥

इच्छा, द्वेषः, सुखम्, दुःखम्, संघातः, चेतना, धृतिः,
एतत्, क्षेत्रम्, समासेन, सविकारम्, उदाहृतम् ॥ ६ ॥

तथा—

इच्छा	=इच्छा	धृति	=धृति† (इस प्रकार)
द्वेष	=द्वेष	एतत्	=यह
सुखम्	=सुख	क्षेत्रम्	=क्षेत्र
दुःखम्	=दुःख (और)	सविकारम्	={ विकारोंके सहित‡
संघात	={ स्थूल देहका पिण्ड (एवं)	समासेन	=संक्षेपसे
चेतना	=चेतनता* (और)	उदाहृतम्	=कहा गया

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥

अमानित्वम्, अदम्भित्वम्, अहिंसा, क्षान्तिः, आर्जवम्,
आचार्योपासनम्, शौचम्, स्थैर्यम्, आत्मविनिग्रहः ॥७॥

---

*शरीर और अन्तःकरणकी एक प्रकारकी चेतनशक्ति।

†गीता अध्याय १८ श्लोक ३३-३४-३५ में देखना चाहिये।

‡पाँचवें श्लोकमें कहा हुआ तो क्षेत्रका स्वरूप समझना चाहिये और इस श्लोकमें कहे हुए इच्छादि क्षेत्रके विकार समझने चाहिये।

और हे अर्जुन-

अमानित्वम्	=	श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव
आर्जवम्	=	मन वाणीकी सरलता
आचार्योपासनम्	=	श्रद्धा भक्ति-सहित गुरुकी सेवा
अदम्भित्वम्	=	दम्भाचरण-का अभाव
शौचम्	=	बाहर भीतरकी शुद्धि*
अहिंसा	=	प्राणीमात्रको किसी प्रकार भी न सताना
स्थैर्यम्	=	अन्तःकरणकी स्थिरता
(और)		
क्षान्तिः	=	क्षमाभाव
आत्मविनिग्रह	=	मन और इन्द्रियोंसहित शरीरका निग्रह
(तथा)		

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

इन्द्रियार्थेषु, वैराग्यम्, अनहंकारः, एव, च,
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥८॥

---

* सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहारसे द्रव्यकी और उसके अन्नसे आहारकी तथा यथायोग्य बर्तावसे आचरणोंकी और जल मृत्तिकादिसे शरीरकी शुद्धिको बाहरकी शुद्धि कहते हैं तथा राग-द्वेष और कपट आदि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका स्वच्छ हो जाना भीतरकी शुद्धि कही जाती है।

तथा—

इन्द्रियार्थेषु = इस लोक और परलोकके संपूर्ण भोगोंमें
वैराग्यम् = आसक्तिका अभाव
च = और
अनहंकारः एव = अहंकारका भी अभाव

(एव)
जन्म = जन्म
मृत्यु = मृत्यु
जरा = जरा (और)
व्याधि = रोग आदिमें
दुःख = दुःख
दोष = दोषोंका
अनु-दर्शनम् = बारम्बार विचार करना

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥

असक्तिः, अनभिष्वङ्गः, पुत्रदारगृहादिषु,
नित्यम्, च, समचित्तत्वम्, इष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

तथा—

पुत्रदार-गृहादिषु = पुत्र स्त्री घर और धनादिमें
असक्तिः = आसक्तिका अभाव
(और)
अनभिष्वङ्गः = ममताका न होना

च = तथा
इष्टानिष्टोप-पत्तिषु = प्रिय अप्रियकी प्राप्तिमें
नित्यम् = सदा ही
समचित्तत्वम् = चित्तका सम रहना

अर्थात् मनके अनुकूल तथा प्रतिकूलके प्राप्त होनेपर हर्ष शोकादि विकारोंका न होना ।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥१०॥

मयि, च, अनन्ययोगेन, भक्तिः, अव्यभिचारिणी,
विविक्तदेशसेवित्वम्, अरतिः, जनसंसदि ॥ १० ॥

और—

मयि = मुझ परमेश्वरमें
अनन्ययोगेन = एकीभावसे स्थितिरूप ध्यानयोगके द्वारा
अव्यभिचारिणी = अव्यभिचारिणी
भक्तिः = भक्ति*
च = तथा
विविक्तदेशसेवित्वम् = एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव
(और)
जनसंसदि = विषयासक्त मनुष्योंके समुदायमें
अरतिः = प्रेमका न होना

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्, तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्,
एतत्, ज्ञानम्, इति, प्रोक्तम्, अज्ञानम्, यत्, अतः, अन्यथा ॥

---

* केवल एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वरको ही अपना स्वामी मानते हुए स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके श्रद्धा और भावके सहित परम प्रेमसे भगवान्‌का निरन्तर चिन्तन करना अव्यभिचारिणी भक्ति है ।

तथा—

अध्यात्म-ज्ञान-नित्यत्वम्	= अध्यात्म-ज्ञानमें * नित्य स्थिति (और)	ज्ञानम्	= ज्ञान है+ (और)
		यत्	= जो
		अतः	= इससे
तत्त्वज्ञानार्थ-दर्शनम्	= तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माको सर्वत्र देखना	अन्यथा	= विपरीत है
		(तत्)	= वह
		अज्ञानम्	= अज्ञान है‡
		इति	= ऐसे
एतत्	= यह सब (तो)	प्रोक्तम्	= कहा है

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥

ज्ञेयम्, यत्, तत्, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, अमृतम्, अश्नुते, अनादिमत्, परम् ब्रह्म, न, सत्, तत्, न, असत्, उच्यते ॥१२॥

और हे अर्जुन—

यत्	= जो	यत्	= जिसको
ज्ञेयम्	= जाननेके योग्य है	ज्ञात्वा	= जानकर
(च)	= तथा		(मनुष्य)

---

* जिस ज्ञानके द्वारा आत्मवस्तु और अनात्मवस्तु जानी जाय उस ज्ञानका नाम अध्यात्मज्ञान है ।

+ इस अध्यायके श्लोक ७ से लेकर यहाँतक जो साधन कहे हैं वे सब तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिमें हेतु होनेसे ज्ञान नामसे कहे गये हैं ।

‡ ऊपर कहे हुए ज्ञानके साधनोंसे विपरीत जो मान, दम्भ, हिंसा आदि हैं वे अज्ञानकी वृद्धिमें हेतु होनेसे अज्ञान नामसे कहे गये हैं ।

अमृतम्	=परमानन्दको	ब्रह्म	=ब्रह्म
अश्नुते	=प्राप्त होता है		(अकथनीय होनेसे)
तत्	=उसको	न	=न
प्रवक्ष्यामि	={ अच्छी प्रकार कहूंगा	सत्	=सत् (कहा जाता है और)
तत्	=वह	न	=न
अनादिमत्	=आदिरहित	असत्	=असत् ही
परम्	=परम	उच्यते	=कहा जाता है

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

सर्वतःपाणिपादम्, तत्, सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्,
सर्वतःश्रुतिमत्, लोके, सर्वम्, आवृत्य, तिष्ठति ॥१३॥

परन्तु—

तत्	=वह	सर्वतः-श्रुतिमत्	={ सब ओरसे श्रोत्रवाला
सर्वतःपाणि-पादम्	={ सब ओरसे हाथ पैरवाला	(अस्ति)	=है
(एव)		(यतः)	=क्योंकि (वह)
सर्वतोऽक्षि-शिरोमुखम्	={ सब ओरसे नेत्र सिर और मुखवाला	लोके	=संसारमें
		सर्वम्	=सबको
		आवृत्य	=व्याप्तकरके
(तथा)		तिष्ठति	=स्थित है*

* आकाश जिस प्रकार वायु, अग्नि, जल और पृथिवीका कारणरूप होनेसे उनको व्याप्तकरके स्थित है वैसे ही परमात्मा भी सबका कारणरूप होनेसे संपूर्ण चराचर जगत्को व्याप्तकरके स्थित है ।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासम्, सर्वेन्द्रियविवर्जितम्,
असक्तम्, सर्वभृत्, च, एव, निर्गुणम्, गुणभोक्तृ, च ॥१४॥

और-

सर्वेन्द्रियगुणाभासम्	= सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है (परन्तु वास्तवमें)	निर्गुणम्	= गुणोंसे अतीत (हुआ)
सर्वेन्द्रियविवर्जितम्	= सब इन्द्रियोंसे रहित है	एव	= भी (अपनी योगमायासे)
च	= तथा	सर्वभृत्	= सबको धारण-पोषण करनेवाला
असक्तम्	= आसक्तिरहित (और)	च	= और
		गुणभोक्तृ	= गुणोंको भोगनेवाला है

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥

बहिः, अन्तः, च भूतानाम्, अचरम्, चरम्, एव, च,
सूक्ष्मत्वात्, तत्, अविज्ञेयम्, दूरस्थम्, च, अन्तिके, च, तत् ॥

तथा वह परमात्मा-

भूतानाम्	= चराचर सब भूतोंके	च	= और
		चरम्	= चर
बहिः	= बाहर	अचरम्	= अचररूप
अन्तः	= भीतर परिपूर्ण है	एव	= भी (वही) है

च	=और	च	=तथा
तत्	=वह	अन्तिके	=अति समीपमें†
सूक्ष्मत्वात्	=सूक्ष्म होनेसे	च	=और
		दूरस्थम्	=दूरमें भी स्थित‡
अविज्ञेयम्	=अविज्ञेय है*	तत्	=वही है

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥

अविभक्तम्, च, भूतेषु, विभक्तम्, इव, च, स्थितम्,
भूतभर्तृ, च, तत्, ज्ञेयम्, ग्रसिष्णु, प्रभविष्णु, च ॥ १६ ॥

च	=और (वह)	च	=भी
अविभक्तम्	=विभागरहित एकरूपसे आकाशके सदृश परिपूर्ण हुआ	भूतेषु	=चराचर सम्पूर्ण भूतोंमें
		विभक्तम्	=पृथक् पृथक्के
		इव	=सदृश

* जैसे सूर्यकी किरणोंमें स्थित हुआ जल सूक्ष्म होनेसे साधारण मनुष्योंके जाननेमें नहीं आता है वैसे ही सर्वव्यापी परमात्मा भी सूक्ष्म होनेसे साधारण मनुष्योंके जाननेमें नहीं आता है ।

† वह परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण और सबका आत्मा होनेसे अत्यन्त समीप है ।

‡ श्रद्धारहित अज्ञानी पुरुषोंके लिये न जाननेके कारण बहुत दूर है ।

स्थितम् = स्थित* (प्रतीत होता है तथा)	च = और
तत् = वह	ग्रसिष्णु = रुद्ररूपसे संहार करनेवाला
ज्ञेयम् = जानने योग्य परमात्मा	च = तथा
भूतभर्तृ = विष्णुरूपसे भूतोंको धारण पोषण करनेवाला	प्रभविष्णु = ब्रह्मारूपसे सबका उत्पन्न करनेवाला है

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥

ज्योतिषाम्, अपि तत्, ज्योतिः, तमसः, परम्, उच्यते, ज्ञानम्, ज्ञेयम्, ज्ञानगम्यम्, हृदि, सर्वस्य, विष्ठितम् ॥१७॥

और—

तत् = वह ब्रह्म	परम् = अति परे
ज्योतिषाम् = ज्योतियोंका	उच्यते = कहा जाता है (तथा वह परमात्मा)
अपि = भी	
ज्योतिः = ज्योति† (एव)	
तमसः = मायासे	ज्ञानम् = बोधस्वरूप (और)

---

* जैसे महाकाश विभागरहित स्थित हुआ भी घड़ोंमें पृथक् पृथक्के सदृश प्रतीत होता है वैसे ही परमात्मा सब भूतोंमें एकरूपसे स्थित हुआ भी पृथक् पृथक्की भाँति प्रतीत होता है।

† गीता अध्याय १५ श्लोक १२ में देखना चाहिये।

ज्ञेयम्	= जाननेके योग्य है (एव)		(और)
		सर्वस्य	= सबके
ज्ञानगम्यम्	= तत्त्वज्ञानसे प्राप्त होनेवाला	हृदि	= हृदयमें
		विष्ठितम्	= स्थित है

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥

इति, क्षेत्रम्, तथा, ज्ञानम्, ज्ञेयम्, च, उक्तम्, समासत, मद्भक्त, एतत्, विज्ञाय, मद्भावाय, उपपद्यते ॥१८॥

हे अर्जुन-

इति	= इस प्रकार	समासत	= संक्षेपसे
क्षेत्रम्	= क्षेत्र*	उक्तम्	= कहा गया
तथा	= तथा	एतत्	= इसको
ज्ञानम्	= ज्ञान†	विज्ञाय	= तत्त्वसे जानकर
च	= और	मद्भक्त	= मेरा भक्त
ज्ञेयम्	= जानने योग्य परमात्माका स्वरूप‡	मद्भावाय	= मेरे स्वरूपको
		उपपद्यते	= प्राप्त होता है

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥

---

* श्लोक ५ ६ में विकारसहित क्षेत्रका स्वरूप कहा है ।

† श्लोक ७ से ११ तक ज्ञान अर्थात् ज्ञानका साधन कहा है ।

‡ श्लोक १२ से १७ तक ज्ञेयका स्वरूप कहा है ।

प्रकृतिम्, पुरुषम्, च, एव, विद्धि, अनादी, उभौ, अपि,
विकारान्, च गुणान् च, एव विद्धि, प्रकृतिसम्भवान् ॥१९॥

और हे अर्जुन–

प्रकृतिम्	= प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी मेरी माया	विकारान्	= रागद्वेषादि विकारोंको
च	= और	च	= तथा
पुरुषम्	= जीवात्मा अर्थात् क्षेत्रज्ञ	गुणान्	= त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थोंको
उभौ	= इन दोनोंको	अपि	= भी
एव	= ही (तू)	प्रकृतिसम्भवान् एव	= प्रकृतिसे ही उत्पन्न हुए
अनादी	= अनादि		
विद्धि	= जान		
च	= और	विद्धि	= जान

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥

कार्यकरणकर्तृत्वे, हेतु, प्रकृति, उच्यते,
पुरुष, सुखदुःखानाम्, भोक्तृत्वे, हेतु, उच्यते ॥२०॥

क्योंकि–

कार्यकरणकर्तृत्वे	= कार्य और करणके* उत्पन्न करनेमें	हेतु	= हेतु
		प्रकृति	= प्रकृति
		उच्यते	= कही जाती है

---

* आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनका नाम कार्य है। बुद्धि, अहंकार

(और)		भोक्तृत्वे	= { भोक्तापनमें अर्थात् भोगनेमें
पुरुष	= जीवात्मा	हेतुः	= हेतु
सुखदुःखानाम्	= सुखदुःखोंके	उच्यते	= कहा जाता है

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥

पुरुष, प्रकृतिस्थ, हि, भुङ्क्ते, प्रकृतिजान्, गुणान्, कारणम्, गुणसङ्ग, अस्य, सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

परन्तु-

प्रकृतिस्थ	= { प्रकृतिमें* स्थित हुआ	(और इन)	
हि	= ही	गुणसङ्ग	= गुणोंका सङ्ग
पुरुष	= पुरुष	(एव)	= ही
प्रकृतिजान्	= { प्रकृतिसे उत्पन्न हुए	अस्य	= इस जीवात्माके
गुणान्	= { त्रिगुणात्मक सब पदार्थोंको	सदसद्योनिजन्मसु	= { अच्छी बुरी योनियोंमें जन्म लेनेमें
भुङ्क्ते	= भोगता है	कारणम्	= कारण है†

और मन तथा श्रोत्र, त्वचा, रसना, नेत्र और घ्राण एवं वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा इन १३ का नाम करण है।

* प्रकृति शब्दका अर्थ गीता अध्याय ७ श्लोक १४ में कही हुई भगवान्‌की त्रिगुणमयी माया समझना चाहिये।

† सत्त्वगुणके सङ्गसे देवयोनिमें एवं रजोगुणके सङ्गसे मनुष्ययोनिमें और तमोगुणके सङ्गसे पशुपक्षी आदि नीच योनियोंमें जन्म होता है।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥

उपद्रष्टा, अनुमन्ता, च, भर्ता, भोक्ता, महेश्वर,
परमात्मा, इति, च, अपि, उक्त, देहे, अस्मिन्, पुरुष, पर ॥ २२ ॥

वास्तवमें तो यह–

पुरुष = पुरुष
अस्मिन् = इस
देहे = देहमें
(स्थित) = स्थित हुआ
अपि = भी
पर = पर*
(एव) = ही है
(केवल)
उपद्रष्टा = साक्षी होनेसे उपद्रष्टा
च = और
अनुमन्ता = यथार्थ सम्मति देनेवाला होनेसे अनुमन्ता (एव)
भर्ता = सबको धारण करनेवाला होनेसे भर्ता,
भोक्ता = जीवरूपसे भोक्ता (तथा)
महेश्वर = ब्रह्मादिकोंका भी स्वामी होनेसे महेश्वर
च = और
परमात्मा = शुद्ध सच्चिदानन्दघन होनेसे परमात्मा
इति = ऐसा
उक्त = कहा गया है

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥

---

* अर्थात् त्रिगुणमयी मायासे सर्वथा अतीत ।

य', एवम्, वेत्ति, पुरुषम्, प्रकृतिम्, च, गुणै, सह, सर्वथा, वर्तमान, अपि, न, स, भूय, अभिजायते ॥ २३ ॥

एवम्	=इस प्रकार	वर्तमान	=बर्तता हुआ
पुरुषम्	=पुरुषको	अपि	=भी
च	=और	भूय	=फिर
गुणै	=गुणोंके	न	=नहीं
सह	=सहित		
प्रकृतिम्	=प्रकृतिको		
य	=जो मनुष्य		
वेत्ति	=तत्त्वसे जानता है*	अभिजायते	=जन्मता है अर्थात् पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता है
स	=वह		
सर्वथा	=सब प्रकारसे		

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति
केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन
कर्मयोगेन चापरे ॥ २४ ॥

ध्यानेन, आत्मनि पश्यन्ति, केचित्, आत्मानम्, आत्मना, अन्ये, साख्येन, योगेन, कर्मयोगेन, च, अपरे ॥ २४ ॥

---

* दृश्यमात्र सपूर्ण जगत् मायाका कार्य होनेसे क्षणभङ्गुर, नाशवान्, जड और अनित्य है तथा जीवात्मा नित्य, चेतन, निर्विकार और अविनाशी एव शुद्ध बोधस्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्माका ही सनातन अश है इस प्रकार समझकर सपूर्ण मायिक पदार्थोंके सङ्गका सर्वथा त्यागकरके परमपुरुष परमात्मामें ही एकीभावसे नित्य स्थित रहनेका नाम उनको तत्त्वसे जानना है ।

हे अर्जुन उस परमपुरुष-

आत्मानम्	=परमात्माको	साङ्ख्येन	=ज्ञान†
केचित्	=कितने ही मनुष्य तो	योगेन	=योगके द्वारा (देखते हैं)
आत्मना	=शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे	च	=और
ध्यानेन	=ध्यानके द्वारा*	अपरे	=अपर (कितने ही)
आत्मनि	=हृदयमें	कर्मयोगेन	=निष्काम कर्मयोगके द्वारा‡
पश्यन्ति	=देखते हैं (तथा)		
अन्ये	=अन्य (कितने ही)	(पश्यन्ति)	=देखते हैं

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

अन्ये, तु, एवम्, अजानन्तः, श्रुत्वा, अन्येभ्यः, उपासते,
ते, अपि, च, अतितरन्ति, एव, मृत्युम्, श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

---

* जिसका वर्णन गीता अ० ६ में श्लोक ११ से ३२ तक विस्तारपूर्वक किया है।

† जिसका वर्णन गीता अ० २ में श्लोक ११ से ३० तक विस्तारपूर्वक किया है।

‡ जिसका वर्णन गीता अ० २ में श्लोक ४० से अध्याय समाप्तिपर्यन्त विस्तारपूर्वक किया है।

तु	=परन्तु		उपासते	=उपासना करते हैं*
अन्ये	=इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्द बुद्धिवाले पुरुष हैं वे (स्वयम्)		च	=और
			ते	=वे
एवम्	=इस प्रकार		श्रुतिपरायणाः	=सुननेके परायण हुए पुरुष
अजानन्तः	=न जानते हुए		अपि	=भी
अन्येभ्यः	=दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे		मृत्युम्	=मृत्युरूप संसार-सागरको
श्रुत्वा	=सुनकर ही		अतितरन्ति एव	=निःसन्देह तर जाते हैं

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥

यावत्, संजायते, किंचित्, सत्त्वम्, स्थावरजङ्गमम्,
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्, तत्, विद्धि, भरतर्षभ ॥ २६ ॥

भरतर्षभ	=हे अर्जुन	स्थावरजङ्गमम्	=स्थावर जङ्गम
यावत्	=यावन्मात्र		
किंचित्	=जो कुछ भी	सत्त्वम्	=वस्तु

---

* अर्थात् उन पुरुषोंके कहनेके अनुसार ही श्रद्धासहित तत्पर हुए साधन करते हैं ।

सजायते	= उत्पन्न होती है	क्षेत्रक्षेत्रज्ञ-सयोगात्	= { क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके मयोगसे ही (उत्पन्न हुई)
तत्	= उस सपूर्णको		
	(तू)	विद्धि	= जान-

अर्थात् प्रकृति और पुरुषके परस्परके सम्बन्धसे ही सपूर्ण जगत्‌की स्थिति है, वास्तवमें तो सपूर्ण जगत् नाशवान् और क्षणभगुर होनेसे अनित्य है।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥

समम्, सर्वेषु, भूतेषु, तिष्ठन्तम्, परमेश्वरम्, विनश्यत्सु, अविनश्यन्तम्, य, पश्यति, स पश्यति ॥२७॥

इस प्रकार जानकर-

य	= जो पुरुष	परमेश्वरम्	= परमेश्वरको
विनश्यत्सु	= नष्ट होते हुए	समम्	= समभावसे
सर्वेषु	= सब	तिष्ठन्तम्	= स्थित
भूतेषु	= { चराचर भूतोंमें	पश्यति	= देखता है
		स	= वही
अविनश्यन्तम्	= नाशरहित	पश्यति	= देखता है

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥

समम्, पश्यन्, हि, सर्वत्र, समवस्थितम्, ईश्वरम्, न, हिनस्ति, आत्मना, आत्मानम्, ततः, याति, पराम्, गतिम्॥२८॥

हि	= क्योंकि (वह पुरुष)	आत्मना	= अपनेद्वारा
		आत्मानम्	= आपको
सर्वत्र	= सबमें	न हिनस्ति	= नष्ट नहीं करता है*
समवस्थितम्	= समभावसे स्थित हुए	ततः	= इससे (वह)
ईश्वरम्	= परमेश्वरको	पराम्	= परम
समम्	= समान	गतिम्	= गतिको
पश्यन्	= देखता हुआ	याति	= प्राप्त होता है

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति॥

प्रकृत्या, एव, च, कर्माणि, क्रियमाणानि, सर्वशः, यः, पश्यति, तथा, आत्मानम्, अकर्तारम्, सः, पश्यति॥२९॥

च	= और	प्रकृत्या	= प्रकृतिसे
यः	= जो पुरुष	एव	= ही
कर्माणि	= सम्पूर्ण कर्मोंको		
सर्वशः	= सब प्रकारसे	क्रियमाणानि	= किये हुए

* अर्थात् शरीरका नाश होनेसे अपने आत्माका नाश नहीं मानता है।

(पश्यति)	=देखता है*	पश्यति	=देखता है
तथा	=तथा	स	=वही
आत्मानम्	=आत्माको	पश्यति	=देखता है
अकर्तारम्	=अकर्ता		

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥

यदा, भूतपृथग्भावम्, एकस्थम्, अनुपश्यति,
ततः, एव, च, विस्तारम्, ब्रह्म, सपद्यते, तदा ॥३०॥

और यह पुरुष-

यदा	=जिस कालमें	ततः	=उस परमात्माके संकल्पसे
भूतपृथग्भावम्	=भूतोंके न्यारे न्यारे भावको	एव	=ही
एकस्थम्	=एक परमात्माके संकल्पके आधार स्थित	विस्तारम्	=संपूर्ण भूतोंका विस्तार
अनुपश्यति	=देखता है	(पश्यति)	=देखता है
च	=तथा	तदा	=उस कालमें
		ब्रह्म	=सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको
		सपद्यते	=प्राप्त होता है

---

* अर्थात् इस बातको तत्त्वसे समझ लेता है कि प्रकृतिसे उत्पन्न हुए संपूर्ण गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं ।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥

अनादित्वात्, निर्गुणत्वात्, परमात्मा, अयम्, अव्ययः,
शरीरस्थः, अपि, कौन्तेय, न, करोति, न, लिप्यते ॥३१॥

कौन्तेय	= हे अर्जुन	शरीरस्थः	= शरीरमें स्थित हुआ
अनादित्वात्	= अनादि होनेसे (और)	अपि	= भी (वास्तवमें)
निर्गुणत्वात्	= गुणातीत होनेसे	न	= न
		करोति	= करता है (और)
अयम्	= यह	न	= न
अव्ययः	= अविनाशी	लिप्यते	= लिपायमान होता है
परमात्मा	= परमात्मा		

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥

यथा, सर्वगतम्, सौक्ष्म्यात्, आकाशम्, न, उपलिप्यते,
सर्वत्र, अवस्थितः, देहे, तथा, आत्मा, न, उपलिप्यते ॥३२॥

यथा	= जिस प्रकार	सौक्ष्म्यात्	= सूक्ष्म होनेके कारण
सर्वगतम्	= सर्वत्र व्याप्त हुआ (भी)	न उपलिप्यते	= लिपायमान नहीं होता है
आकाशम्	= आकाश		

तथा	=वैसे ही		(गुणातीत होनेके कारण देहके गुणोंसे)
सर्वत्र	=सर्वत्र		
देहे	=देहमें		
अवस्थित	=स्थित हुआ (भी)	न उपलिप्यते	= लिपायमान नहीं होता है
आत्मा	=आत्मा		

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत॥

यथा, प्रकाशयति, एकः, कृत्स्नम्, लोकम्, इमम्, रविः, क्षेत्रम्, क्षेत्री, तथा, कृत्स्नम्, प्रकाशयति, भारत ॥३३॥

भारत	=हे अर्जुन	प्रकाशयति	= प्रकाशित करता है
यथा	=जिस प्रकार	तथा	=उसी प्रकार
एक	=एक ही	क्षेत्री	=एक ही आत्मा
रवि	=सूर्य	कृत्स्नम्	=संपूर्ण
इमम्	=इस	क्षेत्रम्	=क्षेत्रको
कृत्स्नम्	=संपूर्ण	प्रकाशयति	= प्रकाशित करता है—
लोकम्	=ब्रह्माण्डको		

अर्थात् नित्य बोधस्वरूप एक आत्माकी ही सत्तासे संपूर्ण जडवर्ग प्रकाशित होता है।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयो , एवम् , अन्तरम् , ज्ञानचक्षुषा ,
भूतप्रकृतिमोक्षम् , च , ये , विदु , यान्ति , ते , परम् ॥३४॥

एवम्	= इस प्रकार	ये	= जो पुरुष
क्षेत्र-क्षेत्रज्ञयो	= क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके	ज्ञानचक्षुषा	= ज्ञाननेत्रोंद्वारा
अन्तरम्	= भेदको*	विदु	= तत्त्वसे जानते हैं
च	= तथा	ते	= वे महात्माजन
भूतप्रकृति-मोक्षम्	= विकारसहित प्रकृतिसे छूटनेके उपायको	परम्	= परब्रह्म परमात्माको
		यान्ति	= प्राप्त होते हैं

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्म-
विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम
त्रयोदशोऽध्याय ॥१३॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा
योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके
संवादमें "क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग" नामक
तेरहवां अध्याय ॥१३॥

हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत्

---

* क्षेत्रको जड, विकारी, क्षणिक और नाशवान् तथा क्षेत्रज्ञको नित्य, चेतन, अविकारी और अविनाशी जानना ही उनके भेदको जानना है ।

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥

परम्, भूय, प्रवक्ष्यामि, ज्ञानानाम्, ज्ञानम्, उत्तमम्,
यत्, ज्ञात्वा, मुनय, सर्वे, पराम्, सिद्धिम्, इत., गता ॥ १ ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् बोले हे अर्जुन–

ज्ञानानाम्	=ज्ञानोंमें भी	ज्ञात्वा	=जानकर
उत्तमम्	=अति उत्तम	सर्वे	=सब
परम्	=परम	मुनय	=मुनिजन
ज्ञानम्	=ज्ञानको (मैं)	इत	=इस ससारसे (मुक्त होकर)
भूय	=फिर (भी) (तेरे लिये)	पराम्	=परम
प्रवक्ष्यामि	=कहूंगा (कि)	सिद्धिम्	=सिद्धिको
यत्	=जिसको	गता	=प्राप्त हो गये हैं

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥

इदम्, ज्ञानम्, उपाश्रित्य, मम, साधर्म्यम्, आगता,
सर्गे, अपि, न, उपजायन्ते, प्रलये, न, व्यथन्ति, च ॥ २ ॥

हे अर्जुन-

इदम् = इस

ज्ञानम् = ज्ञानको

उपाश्रित्य = आश्रयकरके अर्थात् धारण-करके

मम = मेरे

साधर्म्यम् = स्वरूपको

आगता = प्राप्त हुए पुरुष

सर्गे = सृष्टिके आदिमें (पुन)

न उपजायन्ते = उत्पन्न नहीं होते हैं

च = और

प्रलये = प्रलयकालमें

अपि = भी

न व्यथन्ति = व्याकुल नहीं होते हैं

क्योंकि उनकी दृष्टिमें मुझ वासुदेवसे भिन्न कोई वस्तु है ही नहीं।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥

मम, योनि, महत्, ब्रह्म, तस्मिन्, गर्भम्, दधामि, अहम्, संभव, सर्वभूतानाम्, तत, भवति, भारत ॥ ३ ॥

भारत = हे अर्जुन

मम = मेरी

महत् ब्रह्म = महत् ब्रह्मरूप प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया

(संपूर्ण भूतोंकी)

योनि = योनि है अर्थात् गर्भाधानका स्थान है (और)

अहम् = मैं

तस्मिन् = उस योनिमें

गर्भम् = { चेतनरूप बीजको
दधामि = स्थापन करता हूं
ततः = { उस जड़चेतनके संयोगसे
सर्वभूतानाम् = सब भूतोंकी
संभवः = उत्पत्ति
भवति = होती है

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥

सर्वयोनिषु, कौन्तेय, मूर्तयः, संभवन्ति, याः
तासाम्, ब्रह्म, महत्, योनिः, अहम्, बीजप्रदः, पिता ॥४॥

तथा-

कौन्तेय = हे अर्जुन
सर्वयोनिषु = { (नानाप्रकारकी) सब योनियोंमें
याः = जितनी
मूर्तयः = { मूर्तियां अर्थात् शरीर
संभवन्ति = उत्पन्न होते हैं
तासाम् = उन सबकी
महत् ब्रह्म = { त्रिगुणमयी माया (तो)
योनिः = { गर्भको धारण करनेवाली माता है
(और)
अहम् = मैं
बीजप्रदः = { बीजको स्थापन करनेवाला
पिता = पिता हूं

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥

सत्त्वम्, रज, तम, इति, गुणा, प्रकृतिसंभवा,
निबध्नन्ति, महाबाहो, देहे, देहिनम्, अव्ययम् ॥ ५ ॥

तथा–

महाबाहो	=हे अर्जुन	गुणा	=तीनों गुण
सत्त्वम्	=सत्त्वगुण	अव्ययम्	=(इस) अविनाशी
रज	=रजोगुण (और)	देहिनम्	=जीवात्माको
तम	=तमोगुण	देहे	=शरीरमें
इति	=ऐसे (यह)	निबध्नन्ति	=बांधते हैं
प्रकृतिसंभवा	=प्रकृतिसे उत्पन्न हुए		

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥

तत्र, सत्त्वम्, निर्मलत्वात्, प्रकाशकम्, अनामयम्,
सुखसङ्गेन, बध्नाति, ज्ञानसङ्गेन, च, अनघ ॥ ६ ॥

अनघ	=हे निष्पाप	सुखसङ्गेन	=सुखकी आसक्तिसे
तत्र	=उन तीनों गुणोंमें	च	=और
प्रकाशकम्	=प्रकाश करनेवाला	ज्ञानसङ्गेन	=ज्ञानकी आसक्तिसे अर्थात् ज्ञानके अभिमानसे
अनामयम्	=निर्विकार		
सत्त्वम्	=सत्त्वगुण (तो)		
निर्मलत्वात्	=निर्मल होनेके कारण	बध्नाति	=बांधता है

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥

रज, रागात्मकम्, विद्धि, तृष्णासङ्गसमुद्भवम्,
तत्, निबध्नाति, कौन्तेय, कर्मसङ्गेन, देहिनम् ॥ ७ ॥

तथा–

कौन्तेय	=हे अर्जुन		तत्	=वह
रागात्मकम्	=रागरूप		देहिनम्	=(इस) जीवात्माको
रज	=रजोगुणको			
तृष्णासङ्गसमुद्भवम्	=कामना और आसक्तिसे उत्पन्न हुआ		कर्मसङ्गेन	=कर्मोंकी और उनके फलकी आसक्तिसे
विद्धि	=जान		निबध्नाति	=बाँधता है

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥

तम, तु, अज्ञानजम्, विद्धि, मोहनम्, सर्वदेहिनाम्,
प्रमादालस्यनिद्राभि, तत्, निबध्नाति, भारत ॥८॥

तु	=और	मोहनम्	=मोहनेवाले
भारत	=हे अर्जुन	तम	=तमोगुणको
सर्वदेहिनाम्	=सर्वदेहाभिमानियोंके	अज्ञानजम्	=अज्ञानसे उत्पन्न हुआ

विद्धि =जान
तत् =वह
(देहिनम्) =इस जीवात्माको
प्रमादालस्य-निद्राभिः = प्रमाद* आलस्य† और निद्राके द्वारा
निबध्नाति =बांधता है

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत॥

सत्त्वम्, सुखे, संजयति, रजः, कर्मणि, भारत, ज्ञानम्, आवृत्य, तु, तमः, प्रमादे, संजयति, उत॥ ९॥

क्योंकि–

भारत =हे अर्जुन
सत्त्वम् =सत्त्वगुण
सुखे =सुखमें
संजयति =लगाता है (और)
रजः =रजोगुण
कर्मणि =कर्ममें (लगाता है)
(तथा)
तमः =तमोगुण
तु =तो
ज्ञानम् =ज्ञानको
आवृत्य = आच्छादन करके अर्थात् ढकके
प्रमादे =प्रमादमें
उत =भी
संजयति =लगाता है

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा॥

---

* इन्द्रिया और अन्तःकरणकी व्यर्थ चेष्टाओंका नाम प्रमाद है।
† कर्तव्यकर्ममें अप्रवृत्तिरूप निरुद्यमताका नाम आलस्य है।

रज, तम, च, अभिभूय, सत्त्वम्, भवति, भारत,
रज, सत्त्वम्, तम, च, एव, तम, सत्त्वम्, रज, तथा ॥१०॥

च	=और	(अभिभूय)	=दबाकर
भारत	=हे अर्जुन	तम	=तमोगुण
रज	=रजोगुण (और)		(बढता है)
तम	=तमोगुणको	तथा	=वैसे
अभिभूय	=दबाकर	एव	=ही
सत्त्वम्	=सत्त्वगुण	तम	=तमोगुण
भवति	={ होता है अर्थात् बढता है		(और)
		सत्त्वम्	=सत्त्वगुणको
च	=तथा	(अभिभूय)	=दबाकर
रज	=रजोगुण (और)	रज	=रजोगुण
सत्त्वम्	=सत्त्वगुणको		(बढता है)

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥

सर्वद्वारेषु, देहे, अस्मिन्, प्रकाश, उपजायते,
ज्ञानम्, यदा, तदा, विद्यात्, विवृद्धम्, सत्त्वम्, इति, उत ॥११॥

इसलिये—

यदा	=जिस कालमें	सर्वद्वारेषु	={ अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें
अस्मिन्	=इस		
देहे	=देहमें (तथा)	प्रकाश	=चेतनता

(च)	=और	विद्यात्	=जानना चाहिये
ज्ञानम्	=बोधशक्ति	उत	=कि
उपजायते	=उत्पन्न होती है		
तदा	=उस कालमें	सत्त्वम्	=सत्त्वगुण
इति	=ऐसा	विवृद्धम्	=बढ़ा है

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ॥

लोभ, प्रवृत्ति, आरम्भ, कर्मणाम्, अशम, स्पृहा, रजसि, एतानि, जायन्ते, विवृद्धे, भरतर्षभ ॥१२॥

और—

भरतर्षभ	=हे अर्जुन		(स्वार्थबुद्धिसे)
रजसि	=रजोगुणके	आरम्भ	=आरम्भ (एव)
विवृद्धे	=बढ़नेपर	अशम	=अशान्ति अर्थात् मनकी चञ्चलता
लोभ	=लोभ (और)		(और)
प्रवृत्ति	=प्रवृत्ति अर्थात् सांसारिक चेष्टा (तथा)	स्पृहा	=विषय भोगोंकी लालसा
कर्मणाम्	=सब प्रकारके कर्मोंका	एतानि	=यह सब
		जायन्ते	=उत्पन्न होते हैं

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन॥

अप्रकाश, अप्रवृत्ति, च, प्रमाद, मोह, एव, च,
तमसि, एतानि, जायन्ते, विवृद्धे, कुरुनन्दन ॥१३॥

तथा-

कुरुनन्दन	=हे अर्जुन	प्रमाद	= { प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा
तमसि	=तमोगुणके		
विवृद्धे	=बढ़नेपर (अन्त करण और इन्द्रियोंमें)	च	=और
		मोह	= { निद्रादि अन्त-करणकी मोहिनी वृत्तिया
अप्रकाश	=अप्रकाश (एव)	एतानि	=यह सब
अप्रवृत्ति	= { कर्तव्यकर्मोंमें अप्रवृत्ति	एव	=ही
च	=और	जायन्ते	=उत्पन्न होते हैं

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥

यदा, सत्त्वे, प्रवृद्धे, तु, प्रलयम्, याति, देहभृत्,
तदा, उत्तमविदाम्, लोकान्, अमलान्, प्रतिपद्यते ॥१४॥

और हे अर्जुन-

यदा	=जब	तु	=तो
देहभृत्	=यह जीवात्मा	उत्तम-विदाम्	= { उत्तम कर्म करनेवालोंके
सत्त्वे	=सत्त्वगुणकी		
प्रवृद्धे	=वृद्धिमें	अमलान्	= { मलरहित अर्थात् दिव्य स्वर्गादि
प्रलयम्	=मृत्युको		
याति	=प्राप्त होता है	लोकान्	=लोकोंको
तदा	=तब	प्रतिपद्यते	=प्राप्त होता है

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते॥

रजसि, प्रलयम्, गत्वा, कर्मसङ्गिषु, जायते,
तथा, प्रलीन, तमसि, मूढयोनिषु, जायते ॥१५॥

और-

रजसि	= रजोगुणके बढ़नेपर*	तथा	= तथा
प्रलयम्	= मृत्युको	तमसि	= तमोगुणके बढ़नेपर
गत्वा	= प्राप्त होकर	प्रलीन	= मरा हुआ पुरुष (कीट पशु आदि)
कर्मसङ्गिषु	= कर्मोंकी आसक्तिवाले मनुष्योंमें	मूढयोनिषु	= मूढ योनियोंमें
जायते	= उत्पन्न होता है	जायते	= उत्पन्न होता है

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्॥

कर्मण, सुकृतस्य, आहु, सात्त्विकम्, निर्मलम्, फलम्
रजस, तु, फलम् दुःखम्, अज्ञानम्, तमस, फलम् ॥१६॥

क्योंकि-

सुकृतस्य	= सात्त्विक	कर्मण	= कर्मका

* अर्थात् जिस कालमें रजोगुण बढ़ता है उस कालमें।

तु	=तो	रजस	=राजस कर्मका
सात्त्विकम्	=सात्त्विक अर्थात् सुख ज्ञान और वैराग्यादि	फलम्	=फल
		दु खम्	=दु ख (एव)
		तमस	=तामस कर्मका
निर्मलम्	=निर्मल	फलम्	=फल
फलम्	=फल	अज्ञानम्	=अज्ञान
आहु	=कहा है (और)		(कहा है)

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च॥

सत्त्वात्, सजायते, ज्ञानम्, रजस, लोभ, एव, च, प्रमादमोहौ, तमस, भवत, अज्ञानम् एव, च ॥ १७ ॥

तथा-

सत्त्वात्	=सत्त्वगुणसे	च	=तथा
ज्ञानम्	=ज्ञान	तमस	=तमोगुणसे
सजायते	=उत्पन्न होता है	प्रमादमोहौ	=प्रमाद* और मोह†
च	=और		
रजस	=रजोगुणसे	भवत	=उत्पन्न होते हैं
एव	=नि सन्देह		(और)
लोभ	=लोभ	अज्ञानम्	=अज्ञान
	(उत्पन्न होता है)	एव	=भी (होता है)

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥

*-† इसी अध्यायके श्लोक १३ मे देखना चाहिये।

ऊर्ध्वम्, गच्छन्ति, सत्त्वस्था, मध्ये, तिष्ठन्ति, राजसा, जघन्यगुणवृत्तिस्था, अध, गच्छन्ति, तामसा ॥ १८ ॥

इसलिये-

सत्त्वस्था = { सत्त्वगुणमें स्थित हुए पुरुष
ऊर्ध्वम् = { स्वर्गादि उच्च लोकोंको
गच्छन्ति = जाते हैं (और)
राजसा = { रजोगुणमें स्थित राजस पुरुष
मध्ये = { मध्यमें अर्थात् मनुष्यलोकमें ही
तिष्ठन्ति = रहते हैं (एवं)
जघन्यगुण-वृत्तिस्था = { तमोगुणके कार्यरूप निद्रा प्रमाद और आलस्यादिमें स्थित हुए
तामसा = तामस पुरुष
अध = { अधोगतिको अर्थात् कीट पशु आदि नीच योनियोंको
गच्छन्ति = प्राप्त होते हैं

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥

न, अन्यम्, गुणेभ्य, कर्तारम्, यदा, द्रष्टा, अनुपश्यति, गुणेभ्य, च, परम्, वेत्ति, मद्भावम्, स, अधिगच्छति ॥ १० ॥

और हे अर्जुन-

यदा = जिस कालमें
द्रष्टा = द्रष्टा*
गुणेभ्य = { तीनों गुणोंके सिवाय

---

* अर्थात् समष्टिचेतनमें एकीभावसे स्थित हुआ साक्षी पुरुष ।

अन्यम्	= अन्य किसीको	परम्	= अति परे सच्चिदानन्दघनस्वरूप मुझ परमात्माको
कर्तारम्	= कर्ता	वेत्ति	= तत्त्वसे जानता है
न	= नहीं	(तदा)	= उस कालमें
अनुपश्यति	= देखता है अर्थात् गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं* ऐसा देखता है	स	= वह पुरुष
च	= और	मद्भावम्	= मेरे स्वरूपको
गुणेभ्य	= तीनों गुणोंसे	अधिगच्छति	= प्राप्त होता है

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥

गुणान्, एतान्, अतीत्य, त्रीन्, देही, देहसमुद्भवान्, जन्ममृत्युजरादुःखै, विमुक्त, अमृतम्, अश्नुते ॥ २० ॥

तथा यह—

देही	= पुरुष	देहसमुद्भवान्	= स्थूल† शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप
एतान्	= इन		

* त्रिगुणमयी मायासे उत्पन्न हुए अन्तःकरणके सहित इन्द्रियोंका अपने-अपने विषयोंमें विचरना ही गुणोंका गुणोंमें बर्तना है।

† बुद्धि, अहंकार और मन तथा पाच ज्ञानेन्द्रिया, पाच कर्मेन्द्रिया, पाच भूत, पाच इन्द्रियोंके विषय, इस प्रकार इन २३

त्रीन्	=तीनों	विमुक्त	=मुक्त हुआ
गुणान्	=गुणोंको		
अतीत्य	=उल्लंघनकरके	अमृतम्	=परमानन्दको
जन्ममृत्यु-जरादुःखै	=जन्म मृत्यु वृद्धावस्था और सब प्रकारके दुःखोंसे	अश्नुते	=प्राप्त होता है

अर्जुन उवाच

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥

कै, लिङ्गै, त्रीन्, गुणान्, एतान्, अतीत, भवति, प्रभो,
किमाचारः, कथम्, च, एतान्, त्रीन्, गुणान्, अतिवर्तते ॥ २१॥

इस प्रकार भगवान्के रहस्ययुक्त वचनोंको सुनकर अर्जुनने पूछा कि हे पुरुषोत्तम—

एतान्	=इन	च	=और
त्रीन्	=तीनों	किमाचार	=किस प्रकारके आचरणोंवाला
गुणान्	=गुणोंसे		
अतीत	=अतीत हुआ पुरुष	(भवति)	=होता है
कै लिङ्गै	=किन किन लक्षणोंसे (युक्त)		(तथा)
भवति	=होता है	प्रभो	=हे प्रभो

तत्त्वोंका पिण्डरूप यह स्थूल शरीर प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले गुणोंका ही कार्य है इसलिये इन तीनों गुणोंको इसकी उत्पत्तिका कारण कहा है ।

(मनुष्य)	त्रीन् =तीनों
कथम् =किस उपायसे	गुणान् =गुणोंसे
एतान् =इन	अतिवर्तते =अतीत होता है

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति॥

प्रकाशम्, च, प्रवृत्तिम्, च, मोहम्, एव, च, पाण्डव,
न, द्वेष्टि, सम्प्रवृत्तानि, न निवृत्तानि, काङ्क्षति ॥२२॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले—

पाण्डव =हे अर्जुन (जो पुरुष)	च =तथा
प्रकाशम् = सत्त्वगुणके कार्यरूप प्रकाशको*	मोहम् = तमोगुणके कार्यरूप मोहको†
च =और	एव =भी
प्रवृत्तिम् = रजोगुणके कार्यरूप प्रवृत्तिको	न =न (तो)
	संप्रवृत्तानि=प्रवृत्त होनेपर

---

* अन्तःकरण और इन्द्रियादिकोंमें आलस्यका अभाव होकर जो एकप्रकारकी चेतनता होती है उसका नाम प्रकाश है।

† निद्रा और आलस्य आदिकी बहुलतासे अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें चेतनशक्तिके लय होनेको यहां मोह नामसे समझना चाहिये।

द्वेष्टि	=बुरा समझता है	निवृत्तानि	=निवृत्त होनेपर (उनकी)
च	=और	काङ्क्षति	=आकाङ्क्षा करता है*
न	=न		

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥

उदासीनवत्, आसीन, गुणै, य, न, विचाल्यते, गुणा, वर्तन्ते, इति, एव, य, अवतिष्ठति, न, इङ्गते ॥२३॥

तथा—

य	=जो	गुणा एव	=गुण ही गुणोंमें
उदासीनवत्	=साक्षीके सदृश	वर्तन्ते	=बर्तते हैं†
आसीन.	=स्थित हुआ	इति	=ऐसा (समझता हुआ)
गुणै	=गुणोंके द्वारा		
न विचाल्यते	=विचलित नहीं किया जा सकता है (और)	य	=जो (सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे)

* जो पुरुष एक सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही नित्य एकीभावसे स्थित हुआ इस त्रिगुणमयी मायाके प्रपञ्चरूप ससारसे सर्वथा अतीत हो गया है उस गुणातीत पुरुषके अभिमानरहित अन्त करणमें तीनों गुणोंके कार्यरूप प्रकाश प्रवृत्ति और मोहादि वृत्तियोंके प्रकट होने और न होनेपर किसी कालमे भी इच्छा द्वेष आदि विकार नही होते हैं यही उसके गुणोंसे अतीत होनेके प्रधान लक्षण हैं।

† इसी अध्यायके श्लोक १९ की टिप्पणीमें देखना चाहिये।

अवतिष्ठति = स्थित रहता है

(एव)

न इङ्गते = उस स्थितिसे चलायमान नहीं होता है

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।

तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥

समदुःखसुख, स्वस्थ, समलोष्टाश्मकाञ्चन,

तुल्यप्रियाप्रिय, धीर, तुल्यनिन्दात्मसंस्तुति ॥२४॥

और जो-

स्वस्थ = निरन्तर आत्मभावमें स्थित हुआ

समदुःख-सुख = दुःखसुखको समान समझनेवाला है

(तथा)

सम-लोष्टाश्म-काञ्चन = मिट्टी पत्थर और सुवर्णमें समान भाववाला (और)

धीरः = धैर्यवान् है

(तथा)

तुल्य-प्रियाप्रियः = जो प्रिय और अप्रियको बराबर समझता है

(और)

तुल्य-निन्दात्म-संस्तुति = अपनी निन्दा स्तुतिमें भी समान भाववाला है

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।

सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥

मानापमानयो, तुल्य, तुल्य, मित्रारिपक्षयो,
सर्वारम्भपरित्यागी, गुणातीत, स, उच्यते ॥२५॥

तथा जो-

मानापमानयो	= मान और अपमानमें	स	= वह
तुल्य	= सम है	सर्वारम्भ-परित्यागी	= सपूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित हुआ पुरुष
	(एव)		
मित्रारिपक्षयो	= मित्र और वैरीके पक्षमें (भी)	गुणातीत	= गुणातीत
तुल्य	= सम है	उच्यते	= कहा जाता है

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

माम्, च, य, अव्यभिचारेण, भक्तियोगेन, सेवते,
स, गुणान्, समतीत्य, एतान्, ब्रह्मभूयाय, कल्पते ॥२६॥

च	= और	भक्ति-योगेन	= भक्तिरूप योगके द्वारा*
य	= जो पुरुष	माम्	= मेरेको
अव्यभि-चारेण	= अव्यभिचारी	सेवते	= निरन्तर भजता है

* केवल एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर वासुदेव भगवान्‌को ही अपना स्वामी मानता हुआ स्वार्थ और अभिमानको त्यागकर श्रद्धा और भावके सहित परम प्रेमसे निरन्तर चिन्तन करनेको अव्यभिचारी भक्तियोग कहते हैं।

सः	=वह	ब्रह्मभूयाय	=सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभाव होनेके लिये
एतान्	=इन तीनों		
गुणान्	=गुणोंको		
समतीत्य	=अच्छी प्रकार उल्लंघन करके	कल्पते	=योग्य होता है

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥

ब्रह्मण, हि, प्रतिष्ठा, अहम्, अमृतस्य, अव्ययस्य, च,
शाश्वतस्य, च, धर्मस्य, सुखस्य, ऐकान्तिकस्य, च ॥ २७ ॥

तथा हे अर्जुन ! उस-

अव्ययस्य	=अविनाशी	च	=और
ब्रह्मण	=परब्रह्मका	ऐकान्तिकस्य	=अखण्ड एकरस
च	=और		
अमृतस्य	=अमृतका	सुखस्य	=आनन्दका
च	=तथा	अहम्	=मैं
शाश्वतस्य	=नित्य	हि	=ही
धर्मस्य	=धर्मका	प्रतिष्ठा	=आश्रय हूं

अर्थात् उपरोक्त ब्रह्म, अमृत, अव्यय और शाश्वतधर्म तथा ऐकान्तिक सुख, यह सब मेरे ही नाम हैं इसलिये इनका मैं परम आश्रय हूं।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥

ऊर्ध्वमूलम्, अध शाखम्, अश्वत्थम्, प्राहु, अव्ययम्,

छन्दासि, यस्य, पर्णानि, य, तम्, वेद, स, वेदवित् ॥ १ ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले कि हे अर्जुन-

ऊर्ध्व-मूलम्	=	आदिपुरुष परमेश्वररूप मूलवाले*(और)	अध-शाखम्	=	ब्रह्मारूप मुख्य शाखावाले† (जिस)

---

* आदिपुरुष नारायण वासुदेव भगवान् ही नित्य और अनन्त तथा सबके आधार होनेके कारण और सबसे ऊपर नित्यधाममें सगुणरूपसे वास करनेके कारण ऊर्ध्वनामसे कहे गये हैं और वे मायापति सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही इस ससाररूप वृक्षके कारण हैं, इसलिये इस ससारवृक्षको ऊर्ध्वमूलवाला कहते हैं।

† उस आदिपुरुष परमेश्वरसे उत्पत्तिवाला होनेके कारण तथा नित्यधामसे नीचे ब्रह्मलोकमें वास करनेके कारण हिरण्यगर्भरूप ब्रह्माको परमेश्वरकी अपेक्षा अध कहा है और वही इस ससारका विस्तार करनेवाला होनेसे इसकी मुख्य शाखा है इसलिये इस ससारवृक्षको अध शाखावाला कहते हैं।

अश्वत्थम्= { संसाररूप पीपलके वृक्षको	तम् = { उस संसाररूप वृक्षको
अव्ययम्= अविनाशी*	यः = जो पुरुष
प्राहुः = कहते हैं	(मूलसहित)
(तथा)	वेद = तत्त्वसे जानता है
यस्य = जिसके	सः = वह
छन्दांसि = वेद†	वेदवित्= { वेदके तात्पर्यको जाननेवाला है‡
पर्णानि = पत्ते (कहे गये हैं)	

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥

---

* इस वृक्षका मूल कारण परमात्मा अविनाशी है तथा अनादिकालसे इसकी परम्परा चली आती है इसलिये इस संसारवृक्षको अविनाशी कहते हैं ।

† इस वृक्षकी शाखारूप ब्रह्मासे प्रकट होनेवाले और यज्ञादिक कर्मोंके द्वारा इस संसारवृक्षकी रक्षा और वृद्धिके करनेवाले एवं शोभाको बढ़ानेवाले होनेसे वेद पत्ते कहे गये हैं ।

‡ भगवान्‌की योगमायासे उत्पन्न हुआ संसार क्षणभङ्गुर, नाशवान् और दुःखरूप है, इसके चिन्तनको त्यागकर केवल परमेश्वरका ही नित्य निरन्तर अनन्य प्रेमसे चिन्तन करना वेदके तात्पर्यको जानना है ।

अध, च, ऊर्ध्वम्, प्रसृता, तस्य, शाखा, गुणप्रवृद्धा, विषयप्रवाला, अध, च, मूलानि, अनुसततानि, कर्मानुबन्धीनि, मनुष्यलोके ॥ २ ॥

और हे अर्जुन–

तस्य	= उस संसार-वृक्षकी	अध	= नीचे
		च	= और
गुणप्रवृद्धा	= तीनों गुणरूप जलके द्वारा बढ़ी हुई (एवं)	ऊर्ध्वम्	= ऊपर सर्वत्र
		प्रसृता	= फैली हुई हैं (तथा)
विषय-प्रवाला	= विषय* भोग-रूप कोंपलों-वाली	मनुष्य-लोके	= मनुष्ययोनिमें‡
		कर्मानु-बन्धीनि	= कर्मोंके अनुसार बांधनेवाली
शाखा	= देव मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखाएं†	मूलानि	= अहंता ममता और वासना-रूप जड़ें

* शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, यह पांचों स्थूल देह और इन्द्रियोंकी अपेक्षा सूक्ष्म होनेके कारण उन शाखाओंकी कोंपलोंके रूपमें कहे गये हैं।

† मुख्य शाखारूप ब्रह्मासे संपूर्ण लोकोंके सहित देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनियोंकी उत्पत्ति और विस्तार हुआ है इसलिये उनका यहां शाखाओंके रूपमें वर्णन किया है।

‡ अहंता ममता और वासनारूप मूलोंको केवल मनुष्ययोनिमें कर्मोंके अनुसार बांधनेवाली कहनेका कारण यह है कि अन्य सब योनियोंमें तो केवल पूर्वकृत कर्मोंके

(अपि)	=भी	(ऊर्ध्वम्)	=ऊपर
अध.	=नीचे	अनु- सततानि	= सभी लोकोंमें व्याप्त हो रही है
च	=और		

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३ ॥

न, रूपम्, अस्य, इह, तथा, उपलभ्यते, न, अन्त, न, च, आदि, न, च, सप्रतिष्ठा, अश्वत्थम्, एनम्, सुविरूढमूलम्, असङ्गशस्त्रेण, दृढेन, छित्त्वा ॥ ३ ॥

परन्तु-

अस्य	=इस ससारवृक्षका	न	=नहीं
रूपम्	=स्वरूप (जैसा कहा है)	उपलभ्यते	=पाया जाता है*
तथा	=वैसा	(यत)	=क्योंकि
इह	=यहा (विचारकालमें)	न	=न (तो इसका)
		आदि.	=आदि है†

फलको भोगनेका ही अधिकार है और मनुष्ययोनिमें नवीन कर्मोंके करनेका भी अधिकार है ।

* इस ससारका जैसा स्वरूप शास्त्रोंमें वर्णन किया गया है और जैसा देखा सुना जाता है वैसा तत्त्वज्ञान होनेके उपरान्त नहीं पाया जाता। जिस प्रकार आख खुलनेके उपरान्त स्वप्नका ससार नहीं पाया जाता ।

† इसका आदि नहीं है यह कहनेका प्रयोजन यह है कि इसकी परम्परा कबसे चली आती है इसका कोई पता नहीं है।

च = और

न = न

अन्त = अन्त है*

च = तथा

न = न

सम्प्रतिष्ठा = अच्छी प्रकारसे स्थिति ही है†

(अत) = इसलिये

एनम् = इस

सुविरूढमूलम् = अहंता ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलों वाले

अश्वत्थम् = संसाररूप पीपलके वृक्षको

दृढेन = दृढ़

असङ्गशस्त्रेण = वैराग्यरूप‡ शस्त्रद्वारा

छित्त्वा = काटकर§

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥

---

* इसका अन्त नहीं है यह कहनेका प्रयोजन यह है कि इसकी परम्परा कबतक चलती रहेगी इसका कोइ पता नहीं है।

† इसकी अच्छी प्रकार स्थिति भी नहीं है यह कहनेका यह प्रयोजन है कि वास्तवमें यह क्षणभङ्गुर और नाशवान् है।

‡ ब्रह्मलोकतकके भोग क्षणिक और नाशवान् हैं ऐसा समझकर इस संसारके समस्त विषय भोगोंमें सत्ता, सुख, प्रीति और रमणीयताका न भासना ही दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्र है।

§ स्थावर जङ्गमरूप यावन्मात्र संसारके चिन्तनका तथा अनादिकालसे अज्ञानके द्वारा दृढ़ हुई अहंता, ममता और वासनारूप मूलोंका त्याग करना ही संसारवृक्षका अवान्तर मूलोंके सहित काटना है।

तत, पदम्, तत्, परिमार्गितव्यम्, यस्मिन्, गता, न, निवर्तन्ति, भूय, तम्, एव, च, आद्यम्, पुरुषम्, प्रपद्ये, यत, प्रवृत्ति, प्रसृता, पुराणी ॥४॥

तत	= उसके उपरान्त		(यह)
तत्	= उस	पुराणी	= पुरातन
पदम्	= परमपदरूप परमेश्वरको	प्रवृत्ति	= संसारवृक्षकी प्रवृत्ति
परिमार्गितव्यम्	= अच्छी प्रकार खोजना चाहिये	प्रसृता	= विस्तारको प्राप्त हुई है
	(कि)	तम्	= उस
यस्मिन्	= जिसमें	एव	= ही
गता	= गये हुए पुरुष	आद्यम्	= आदि
भूय	= फिर	पुरुषम्	= पुरुष नारायणके
			(मैं)
न निवर्तन्ति	पीछे संसारमें नहीं आते हैं	प्रपद्ये	= शरण हूं
च	= और		(इस प्रकार दृढ
यत	= जिस परमेश्वरसे		निश्चयकरके)

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥

निर्मानमोहा, जितसङ्गदोषा, अध्यात्मनित्या, विनिवृत्तकामा, द्वन्द्वै, विमुक्ता, सुखदुःखसंज्ञै, गच्छन्ति, अमूढा, पदम्, अव्ययम्, तत् ॥ ५ ॥

निर्मान-मोहा	= { नष्ट हो गया है मान और मोह जिनका (तथा)	विनिवृत्त-कामा	=	{ अच्छी प्रकारसे नष्ट हो गई है कामना जिनकी (ऐसे वे)
जितसङ्ग-दोषा	= { जीत लिया है आसक्तिरूप दोष जिनने (और)	सुखदुःख-संज्ञै	=	{ सुखदुःख नामक
		द्वन्द्वै	=	द्वन्द्वोंसे
		विमुक्ता	=	विमुक्त हुए
अध्यात्म-नित्या	= { परमात्माके स्वरूपमें है निरन्तर स्थिति जिनकी (तथा)	अमूढा	=	ज्ञानीजन
		तत्	=	उस
		अव्ययम्	=	अविनाशी
		पदम्	=	परमपदको
		गच्छन्ति	=	प्राप्त होते हैं

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ ६॥

न, तत्, भासयते, सूर्य, न, शशाङ्क, न, पावक, यत्, गत्वा, न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम ॥ ६ ॥

और—

तत्	= { उस (स्वयम् प्रकाश-मय परमपदको)	न	=	न
		सूर्य	=	सूर्य

भासयते	= { प्रकाशित कर सकता है	यत्	= जिस परमपदको
न	= न	गत्वा	= प्राप्त होकर (मनुष्य)
शशाङ्क	= चन्द्रमा (और)	न निवर्तन्ते	= { पीछे संसारमें नहीं आते हैं
न	= न	तत्	= वही
पावक	= अग्नि ही	मम	= मेरा
(भासयते)	= { प्रकाशित कर सकता है (तथा)	परमम्	= परम
		धाम	= धाम है *

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

मम, एव, अंश, जीवलोके, जीवभूत, सनातन,
मन षष्ठानि, इन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि, कर्षति ॥ ७ ॥

और हे अर्जुन–

जीवलोके	= इस देहमें	एव	= ही
जीवभूत	= यह जीवात्मा	सनातन	= सनातन
मम	= मेरा	अंश	= अंश है †

---

* परमधामका अर्थ गीता अ० ८ श्लोक २१ में देखना चाहिये ।

† जैसे विभागरहित स्थित हुआ भी महाकाश घटोंमें पृथक् पृथक्की भांति प्रतीत होता है वैसे ही सब भूतोंमें एकीरूपसे स्थित हुआ भी परमात्मा पृथक् पृथक्की भांति प्रतीत होता है इसीसे देह-में स्थित जीवात्माको भगवान्ने अपना सनातन अंश कहा है ।

(और वही इन)	मन-षष्ठानि = { मनसहित पाचों
प्रकृति-स्थानि = { त्रिगुणमयी मायामें स्थित हुई	इन्द्रियाणि = इन्द्रियोंको
	कर्षति = { आकर्षण करता है

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

शरीरम्, यत्, अवाप्नोति, यत्, च, अपि, उत्क्रामति, ईश्वरः, गृहीत्वा, एतानि, सयाति, वायुः, गन्धान्, इव, आशयात्॥८॥

जैसे कि—

वायु = वायु	उत्क्रामति = त्यागता है
आशयात् = गन्धके स्थानसे	(तस्मात्) = उससे
गन्धान् = गन्धको	एतानि = { इन मनसहित इन्द्रियोंको
इव = जैसे	गृहीत्वा = ग्रहणकरके
(ग्रहण करके ले	च = फिर
जाता है वैसे ही)	यत् = जिस
ईश्वर = { देहादिकोंका स्वामी जीवात्मा	शरीरम् = शरीरको
अपि = भी	अवाप्नोति = प्राप्त होता है
यत् (शरीरम्) = { जिस पहिले शरीरको	(तस्मिन्) = उसमें
	सयाति = जाता है

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥

श्रोत्रम्, चक्षुः, स्पर्शनम्, च, रसनम्, घ्राणम्, एव, च,
अधिष्ठाय, मनः, च, अयम्, विषयान्, उपसेवते ॥ ९ ॥

और उस शरीरमें स्थित हुआ–

अयम्	=यह जीवात्मा	च	=और
श्रोत्रम्	=श्रोत्र	मनः	=मनको
चक्षुः	=चक्षु	अधिष्ठाय	= आश्रयकरके अर्थात् इन सबके सहारेसे
च	=और		
स्पर्शनम्	=त्वचाको		
च	=तथा	एव	=ही
रसनम्	=रसना	विषयान्	=विषयोंको
घ्राणम्	=घ्राण	उपसेवते	=सेवन करता है

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥

उत्क्रामन्तम्, स्थितम्, वा, अपि भुञ्जानम्, वा, गुणान्वितम्,
विमूढाः, न, अनुपश्यन्ति, पश्यन्ति, ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

परन्तु–

उत्क्रामन्तम्	= शरीर छोड़कर जाते हुएको	स्थितम्	= शरीरमें स्थित हुएको (और)
वा	=अथवा	भुञ्जानम्	= विषयोंको भोगते हुएको

वा	=अथवा		(केवल)
गुणान्वितम्=	{ तीनों गुणोंसे युक्त हुएको	ज्ञानचक्षुष.=	{ ज्ञानरूप नेत्रोंवाले
अपि	=भी		(ज्ञानीजन ही)
विमूढा.	=अज्ञानीजन		
न	=नहीं	पश्यन्ति =	{ तत्त्वसे जानते हैं
अनुपश्यन्ति=	जानते हैं		

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥

यतन्त, योगिन, च, एनम्, पश्यन्ति, आत्मनि, अवस्थितम्, यतन्त अपि, अकृतात्मान न, एनम्, पश्यन्ति, अचेतस ॥

क्योंकि—

योगिन'	=योगीजन (भी)	अकृतात्मान =	{ जिन्होंने अपने अन्त'करणको शुद्ध नहीं किया है (ऐसे)
आत्मनि	=अपने हृदयमें		
अवस्थितम्=	स्थित हुए	अचेतस	=अज्ञानीजन (तो)
एनम्	=इस आत्माको		
यतन्त =	{ यत्न करते हुए ही	यतन्त	=यत्न करते हुए
		अपि	=भी
पश्यन्ति =	{ तत्त्वसे जानते हैं	एनम्	=इस आत्माको
		न	=नहीं
च	=और	पश्यन्ति	=जानते हैं

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥

यत्, आदित्यगतम्, तेज, जगत्, भासयते, अखिलम्,
यत्, चन्द्रमसि, यत्, च, अग्नौ, तत्, तेज, विद्धि, मामकम् १२

और हे अर्जुन-

यत्	=जो	चन्द्रमसि	=चन्द्रमामें स्थित है
तेज	=तेज		(और)
आदित्यगतम्	=सूर्यमें स्थित हुआ	यत्	=जो (तेज)
अखिलम्	=सपूर्ण	अग्नौ	=अग्निमें (स्थित है)
जगत्	=जगत्‌को	तत्	=उसको (तूं)
भासयते	=प्रकाशित करता है	मामकम्	=मेरा ही
च	=तथा	तेज	=तेज
यत्	=जो (तेज)	विद्धि	=जान

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥

गाम्, आविश्य, च, भूतानि, धारयामि, अहम्, ओजसा,
पुष्णामि, च, ओपधी., सर्वा, सोम, भूत्वा, रसात्मक ॥१३॥

च	=और	गाम्	=पृथिवीमें
अहम्	=मै (ही)	आविश्य	=प्रवेशकरके

ओजसा	=अपनी शक्तिसे	सोम	=चन्द्रमा
भूतानि	=सब भूतोंको	भूत्वा	=होकर
धारयामि	=धारण करता हूँ	सर्वा	=सम्पूर्ण
च	=और	ओषधी	=ओषधियोंको अर्थात् वनस्पतियोंको
रसात्मक	=रसस्वरूप अर्थात् अमृतमय	पुष्णामि	=पुष्ट करता हूँ

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥

अहम्, वैश्वानर, भूत्वा, प्राणिनाम्, देहम्, आश्रित, प्राणापानसमायुक्त, पचामि, अन्नम्, चतुर्विधम् ॥१४॥

तथा–

अहम्	=मैं (ही)	प्राणापान-समायुक्त	=प्राण और अपानसे युक्त हुआ
प्राणिनाम्	=सब प्राणियोंके		
देहम्	=शरीरमें		
आश्रित	=स्थित हुआ	चतुर्विधम्	=चार*प्रकारके
वैश्वानर	=वैश्वानर अग्निरूप	अन्नम्	=अन्नको
भूत्वा	=होकर	पचामि	=पचाता हूँ

* भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य ऐसे चार प्रकारके अन्न होते हैं उनमें जो चबाकर खाया जाता है वह भक्ष्य है जैसे रोटी आदि और जो निगला जाता है वह भोज्य है जैसे दूध आदि तथा जो चाटा जाता है वह लेह्य है जैसे चटनी आदि और जो चूसा जाता है वह चोष्य है जैसे ऊख आदि ।

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥१५॥

सर्वस्य, च, अहम्, हृदि, संनिविष्टः, मत्तः, स्मृतिः, ज्ञानम्, अपोहनम्, च, वेदैः, च, सर्वैः, अहम्, एव, वेद्यः, वेदान्तकृत्, वेदवित्, एव, च, अहम् ॥१५॥

च	=और	च	=और
अहम्	=मैं (ही)	अपोहनम्	=अपोहन*
सर्वस्य	=सब प्राणियोंके	(भवति)	=होता है
हृदि	=हृदयमें	च	=और
संनिविष्टः	={ अन्तर्यामी-रूपसे स्थित हूँ	सर्वैः	=सब
(तथा)		वेदैः	=वेदोंद्वारा
		अहम्	=मैं
मत्तः	=मेरेसे ही	एव	=ही
स्मृतिः	=स्मृति	वेद्यः	={ जाननेके योग्य हूँ (तथा)
ज्ञानम्	=ज्ञान		

---

* विचारके द्वारा बुद्धिमें रहनेवाले संशय, विपर्यय आदि दोषोंको हटानेका नाम अपोहन है ।

† सर्व वेदोंका तात्पर्य परमेश्वरको जनानेका है इसलिये सब वेदोंद्वारा जाननेके योग्य एक परमेश्वर ही है ।

वेदान्तकृत्	=वेदान्तका कर्ता		(भी)
च	=और	अहम्	=मैं
वेदवित्	=वेदोंको जाननेवाला	एव	=ही (हूं)

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥

द्वौ, इमौ, पुरुषौ, लोके, क्षरः, च, अक्षरः, एव, च,
क्षरः, सर्वाणि, भूतानि, कूटस्थः, अक्षरः, उच्यते ॥१६॥

तथा हे अर्जुन–

लोके	=इस संसारमें	सर्वाणि	=संपूर्ण
क्षरः	=नाशवान्	भूतानि	=भूतप्राणियोंके शरीर तो
च	=और		
अक्षरः	=अविनाशी	क्षरः	=नाशवान्
एव	=भी	च	=और
इमौ	=यह	कूटस्थः	=जीवात्मा
द्वौ	=दो प्रकारके*	अक्षरः	=अविनाशी
पुरुषौ	=पुरुष हैं (उनमें)	उच्यते	=कहा जाता है

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥

---

* गीता अध्याय ७ श्लोक ४-५ में जो अपरा और परा प्रकृतिके नामसे कहे गये हैं तथा अध्याय १३ श्लोक १ में जो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके नामसे कहे गये हैं उन्हीं दोनोंको यहां क्षर और अक्षरके नामसे वर्णन किया है।

उत्तम, पुरुष, तु, अन्य, परमात्मा, इति, उदाहृतः,
य, लोकत्रयम्, आविश्य, बिभर्ति, अव्यय, ईश्वर ॥१७॥

तथा उन दोनोंसे-

उत्तम	=उत्तम	बिभर्ति	=सबका धारण पोषण करता है
पुरुष	=पुरुष		(एव)
तु	=तो	अव्यय	=अविनाशी
अन्य	=अन्य ही है (कि)	ईश्वर	=परमेश्वर (और)
य	=जो	परमात्मा	=परमात्मा
लोकत्रयम्	=तीनों लोकोंमें	इति	=ऐसे
आविश्य	=प्रवेश करके	उदाहृतः	=कहा गया है

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥

यस्मात्, क्षरम्, अतीत, अहम्, अक्षरात्, अपि, च, उत्तम,
अत, अस्मि, लोके, वेदे, च, प्रथित, पुरुषोत्तम ॥१८॥

यस्मात्	=क्योंकि	अक्षरात्	=अविनाशी जीवात्मासे
अहम्	=मैं	अपि	=भी
क्षरम्	=नाशवान् जड़वर्ग क्षेत्रसे तो	उत्तम	=उत्तम हूं
अतीतः	=सर्वथा अतीत हूं	अत	=इसलिये
		लोके	=लोकमें
च	=और	च	=और
	(मायामें स्थित)	वेदे	=वेदमें (भी)

पुरुषोत्तम	=पुरुषोत्तम (नामसे)	प्रथित	=प्रसिद्ध
		असि	=हूं

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

य, माम्, एवम्, असमूढ, जानाति, पुरुषोत्तमम्,

स, सर्ववित्, भजति, माम्, सर्वभावेन, भारत ॥१९॥

भारत	=हे भारत	स	=वह
एवम्	=इस प्रकार तत्त्वसे	सर्ववित्	=सर्वज्ञ पुरुष
य	=जो	सर्वभावेन	=सब प्रकारसे निरन्तर
असमूढ	=ज्ञानी पुरुष		
माम्	=मेरेको	माम्	=मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही
पुरुषोत्तमम्	=पुरुषोत्तम		
जानाति	=जानता है	भजति	=भजता है

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत॥

इति, गुह्यतमम्, शास्त्रम्, इदम्, उक्तम्, मया, अनघ,

एतत्, बुद्ध्वा, बुद्धिमान्, स्यात्, कृतकृत्य, च, भारत ॥२०॥

अनघ	=हे निष्पाप	इति	=ऐसे
भारत	=अर्जुन	इदम्	=यह

गुह्यतमम्	= अति रहस्य-युक्त गोपनीय	बुद्ध्वा	= तत्त्वसे जानकर (मनुष्य)
शास्त्रम्	= शास्त्र	बुद्धिमान्	= ज्ञानवान्
मया	= मेरेद्वारा	च	= और
उक्तम्	= कहा गया	कृतकृत्य	= कृतार्थ
एतत्	= इसको	स्यात्	= हो जाता है–

अर्थात् उसको और कुछ भी करना शेष नहीं रहता ।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "पुरुषोत्तमयोग" नामक पन्द्रहवाँ अध्याय॥१५॥

इस अध्यायमें भगवान्‌ने अपना परम गोपनीय प्रभाव भली प्रकारसे कहा है। जो मनुष्य उक्त प्रकारसे भगवान्‌को सर्वोत्तम समझ लेता है फिर उसका मन एक क्षण भी भगवान्‌के चिन्तनका त्याग नहीं कर सकता। क्योंकि जिस वस्तुको मनुष्य उत्तम समझता है उसीमें उसका प्रेम होता है और जिसमें प्रेम होता है उसीका चिन्तन होता है। अतएव सबका मुख्य कर्तव्य है कि भगवान्‌के परम गोपनीय प्रभावको भली प्रकार समझनेके लिये नाशवान् क्षणभङ्गुर संसारकी आसक्तिका सर्वथा त्यागकरके एवं परमात्माके शरण होकर भजन और सत्सङ्गकी ही विशेष चेष्टा करें।

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

अथ षोडशोऽध्यायः ॥

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥

अभयम्, सत्त्वसशुद्धि, ज्ञानयोगव्यवस्थिति,
दानम्, दम, च, यज्ञ, च, स्वाध्याय, तप, आर्जवम् ॥ १ ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले, हे अर्जुन! दैवी सपदा जिन पुरुषोंको प्राप्त है तथा जिनको आसुरी सपदा प्राप्त है उनके लक्षण पृथक् पृथक् कहता हू उनमेंसे-

अभयम् =सर्वथा भयका अभाव
सत्त्व-सशुद्धि =अन्त करणकी अच्छी प्रकारसे स्वच्छता
ज्ञानयोग-व्यवस्थिति =तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ स्थिति*
च =और
दानम् =सात्त्विक दान† (तथा)

---

* परमात्माके स्वरूपको तत्त्वसे जाननेके लिये सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे ध्यानकी निरन्तर गाढ़ स्थितिका ही नाम ज्ञानयोगव्यवस्थिति समझना चाहिये ।

† गीता अध्याय १७ श्लोक २० में जिसका विस्तार किया है।

दम = इन्द्रियोंका दमन

यज्ञ = { भगवत्पूजा और अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मोंका आचरण (एव)

स्वाध्याय = { वेद शास्त्रोंके पठनपाठनपूर्वक भगवत्के नाम और गुणोंका कीर्तन

च = तथा

तप = स्वधर्म पालनके लिये कष्ट सहन करना (एव)

आर्जवम् = { शरीर और इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥

अहिंसा, सत्यम्, अक्रोध, त्याग, शान्ति, अपैशुनम्,
दया, भूतेषु, अलोलुप्त्वम्, मार्दवम्, ह्री, अचापलम् ॥ २ ॥

तथा-

अहिंसा = { मन वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना (तथा)

सत्यम् = यथार्थ और प्रिय भाषण*

अक्रोध = अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना

त्याग = कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग (एवं)

---

* अन्तःकरण और इन्द्रियोंके द्वारा जैसा निश्चय किया हो वैसेका वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहनेका नाम सत्यभाषण है ।

शान्ति = { अन्त करणकी उपरामता अर्थात् चित्तकी चञ्चलताका अभाव (और)
अपैशुनम् = किसीकी भी निन्दादि न करना (तथा)
भूतेषु = सब भूतप्राणियोंमें
दया = हेतुरहित दया
अलोलुप्त्वम् = { इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी आसक्तिका न होना (और)
मार्दवम् = कोमलता (तथा)
ह्री = { लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा (और)
अचापलम् = व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

तेज , क्षमा, धृति , शौचम् , अद्रोह , नातिमानिता,
भवन्ति, सपदम् , दैवीम् , अभिजातस्य, भारत ॥ ३ ॥

तथा-

तेज = तेज*
क्षमा = क्षमा
धृति = धैर्य
(और)
शौचम् = { बाहर भीतरकी शुद्धि† (एव)

---

* श्रेष्ठ पुरुषोंकी उस शक्तिका नाम तेज है कि जिसके प्रभावसे उनके सामने विषयासक्त और नीच प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्राय अन्यायाचरणसे रुककर उनके कथनानुसार श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं ।

† गीता अध्याय १३ श्लोक ७ की टिप्पणी देखनी चाहिये।

अद्रोह	= किसीमें भी शत्रुभावका न होना		(यह सब तो)
		भारत	= हे अर्जुन
		दैवीम्	= दैवी
	(और)	सपदम्	= सपदाको
नानिमानिता	= अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव	अभिजातस्य	= प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण
		भवन्ति	= हैं

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम्॥

दम्भ, दर्प, अभिमान, च, क्रोध, पारुष्यम्, एव, च,
अज्ञानम्, च, अभिजातस्य, पार्थ, सपदम्, आसुरीम्॥ ४॥

और-

पार्थ	= हे पार्थ	पारुष्यम्	= कठोर वाणी
			(एव)
दम्भ	= पाखण्ड	अज्ञानम्	= अज्ञान
दर्प	= घमण्ड	एव	= भी (यह सब)
च	= और	आसुरीम्	= आसुरी
अभिमान	= अभिमान	सपदम्	= सपदाको
च	= तथा		
क्रोध	= क्रोध	अभिजातस्य	= प्राप्त हुए पुरुषके (लक्षण हैं)
च	= और		

दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव॥

दैवी, सपत्, विमोक्षाय, निबन्धाय, आसुरी, मता,
मा, शुच , सपदम्, दैवीम्, अभिजात , असि, पाण्डव ॥५॥

उन दोनों प्रकारकी सपदाओंमें–

दैवी सपत्	=दैवी सपदा (तो)	पाण्डव	=हे अर्जुन (तू)
विमोक्षाय	=मुक्तिके लिये (और)	मा शुच	=शोक मत कर
		(यत)	=क्योंकि (तू)
आसुरी	=आसुरी (सपदा)	दैवीम्	=दैवी
निबन्धाय	=बाधनेके लिये	सपदम्	=सपदाको
मता	=मानी गई है	अभिजात	=प्राप्त हुआ
(अत॰)	=इसलिये	असि	=है

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥

द्वौ, भूतसर्गौ, लोके, अस्मिन्, दैव , आसुर , एव, च,
दैव , विस्तरश , प्रोक्त , आसुरम्, पार्थ, मे, शृणु ॥६॥

और–

पार्थ	=हे अर्जुन		(एक तो)
अस्मिन्	=इस	दैव	=देवोंके जैसा
लोके	=लोकमें	च	=और (दूसरा)
भूतसर्गौ	=भूतोंके स्वभाव	आसुर	=असुरोंके जैसा
द्वौ	=दो प्रकारके		(उनमें)
(मतौ)	=माने गये हैं	दैव	=देवोंका स्वभाव

एव	=ही	आसुरम्	=	असुरोंके स्वभावको (भी) विस्तारपूर्वक
विस्तरश	=विस्तारपूर्वक			
प्रोक्त	=कहा गया है			
(अत)	=इसलिये	मे	=	मेरेसे
	(अब)	शृणु	=	सुन

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥

प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम् च जना, न, विदु, आसुरा,
न, शौचम्, न, अपि, च, आचार, न, सत्यम्, तेषु, विद्यते ॥ ७ ॥

हे अर्जुन–

आसुरा	=	आसुरी स्वभाववाले	तेषु	=उनमें
			न	=न
जना	=मनुष्य			(तो)
प्रवृत्तिम्	=	कर्तव्यकार्यमें प्रवृत्त होनेको	शौचम्	= बाहर भीतरकी शुद्धि है
च	=और		न	=न
निवृत्तिम्	=	अकर्तव्यकार्यसे निवृत्त होनेको	आचार	=श्रेष्ठ आचरण है
			च	=और
च	=भी		न	=न
न	=नहीं		सत्यम्	=सत्यभाषण
विदु	=जानते हैं		अपि	=ही
	(इसलिये)		विद्यते	=है

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥

असत्यम्, अप्रतिष्ठम्, ते, जगत्, आहु, अनीश्वरम्,
अपरस्परसभूतम्, किम्, अन्यत्, कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

तथा–

ते	= वे आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य
आहु	= कहते हैं (कि)
जगत्	= जगत्
अप्रतिष्ठम्	= आश्रयरहित (और)
असत्यम्	= सर्वथा झूठा (एव)
अनीश्वरम्	= बिना ईश्वरके
अपरस्पर-सभूतम्	= अपने आप स्त्री-पुरुषके सयोगसे उत्पन्न हुआ है
(अत)	= इसलिये
काम-हैतुकम्	= केवल भोगोंको भोगनेके लिये
(एव)	= ही (है)
अन्यत्	= इसके सिवाय और
किम्	= क्या है

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥

एताम्, दृष्टिम्, अवष्टभ्य, नष्टात्मान, अल्पबुद्धय,
प्रभवन्ति उग्रकर्माण, क्षयाय, जगत, अहिता ॥ ९ ॥

इस प्रकार–

एताम्	= इस
दृष्टिम्	= मिथ्या ज्ञानको

अवष्टभ्य	= अवलम्बन करके	अहिता.	= सबका अपकार करनेवाले
नष्टात्मान	= नष्ट हो गया है स्वभाव जिनका	उग्रकर्माण	= क्रूरकर्मी मनुष्य
			(केवल)
	(तथा)	जगत	= जगत्का
अल्पबुद्धय	= मन्द है बुद्धि जिनकी	क्षयाय	= नाश करनेके लिये ही
	(ऐसे वे)	प्रभवन्ति	= उत्पन्न होते हैं

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥

कामम्, आश्रित्य, दुष्पूरम्, दम्भमानमदान्विता,
मोहात्, गृहीत्वा असद्ग्राहान्, प्रवर्तन्ते, अशुचिव्रता ॥१०॥

और वे मनुष्य—

दम्भमानमदान्विता	= दम्भ मान और मदसे युक्त हुए	मोहात्	= अज्ञानसे
		असद्ग्राहान्	= मिथ्या सिद्धान्तोंको
दुष्पूरम्	= किसी प्रकार भी न पूर्ण होनेवाली	गृहीत्वा	= ग्रहणकरके
		अशुचिव्रता	= भ्रष्टआचरणोंसे युक्त हुए
कामम्	= कामनाओंका		
आश्रित्य	= आसरा लेकर		(संसारमें)
	(तथा)	प्रवर्तन्ते	= वर्तते हैं

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥

चिन्ताम्, अपरिमेयाम्, च, प्रलयान्ताम्, उपाश्रिता, कामोपभोगपरमा, एतावत्, इति, निश्चिता ॥११॥

तथा वे–

प्रलयान्ताम् = मरणपर्यन्त रहनेवाली
अपरिमेयाम् = अनन्त
चिन्ताम् = चिन्ताओंको
उपाश्रिता = आश्रय किये हुए
च = और
कामोपभोगपरमा = विषयभोगोंके भोगनेमें तत्पर हुए
(एव)
एतावत् = इतना मात्र ही आनन्द है
इति = ऐसे
निश्चिता = माननेवाले हैं

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥

आशापाशशते, बद्धा, कामक्रोधपरायणा, ईहन्ते, कामभोगार्थम्, अन्यायेन, अर्थसञ्चयान् ॥१२॥

इसलिये–

आशापाशशतै = आशारूप सैकड़ों फाँसियोंसे
बद्धा = बँधे हुए
(और)
कामक्रोधपरायणा = काम क्रोधके परायण हुए

काम-भोगार्थम्	= विषय भोगोंकी पूर्तिके लिये	अर्थ-सञ्चयान्	= धनादिक बहुतसे पदार्थोंको (संग्रह करनेकी)
अन्यायेन	= अन्यायपूर्वक	ईहन्ते	= चेष्टा करते हैं

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥

इदम्, अद्य, मया, लब्धम्, इमम्, प्राप्स्ये, मनोरथम्,
इदम् अस्ति, इदम्, अपि, मे, भविष्यति पुन, धनम् ॥१३॥

और उन पुरुषोंके विचार इस प्रकारके होते हैं कि–

मया	= मैंने	मे	= मेरे पास
अद्य	= आज	इदम्	= यह (इतना)
इदम्	= यह (तो)	धनम्	= धन
लब्धम्	= पाया है (और)	अस्ति	= है (और)
इमम्	= इस	पुन	= फिर
मनोरथम्	= मनोरथको	अपि	= भी
प्राप्स्ये	= प्राप्त होऊंगा (तथा)	इदम्	= यह
		भविष्यति	= होवेगा

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥

असौ, मया, हत शत्रु, हनिष्ये, च, अपरान्, अपि,
ईश्वर, अहम्, अहम्, भोगी सिद्ध, अहम्, बलवान् सुखी १४

तथा-

असौ	=वह	ईश्वर	=ईश्वर
शत्रु	=शत्रु	च	=और
मया	=मेरेद्वारा	भोगी	={ ऐश्वर्यको भोगनेवाला हूं
हत	=मारा गया		
	(और)		(और)
अपरान्	={ दूसरे शत्रुओंको	अहम्	=मैं
अपि	=भी	सिद्ध	={ सब सिद्धियोंसे युक्त
अहम्	=मैं		(एव)
हनिष्ये	=मारूंगा (तथा)	बलवान्	=बलवान् (और)
अहम्	=मैं	सुखी	=सुखी हूं

आढ्योऽभिजनवानस्मि
कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य
इत्यज्ञानविमोहिताः ॥१५॥

आढ्य, अभिजनवान्, अस्मि, क, अन्य, अस्ति, सदृश, मया, यक्ष्ये, दास्यामि, मोदिष्ये, इति, अज्ञानविमोहिता ॥१०॥

तथा मे-

आढ्य	=बड़ा धनवान् (और)	अभि जनवान्	} =बड़े कुटुम्बवाला

असि	=हूं	दास्यामि	=दान देऊंगा
मया	=मेरे	मोदिष्ये	=हर्षको प्राप्त होऊंगा
सदृश	=समान		
अन्य	=दूसरा		
कः	=कौन	इति	=इस प्रकारके
अस्ति	=है (में)	अज्ञान-विमोहिता	=अज्ञानसे मोहित हैं
यक्ष्ये	=यज्ञ करूंगा		

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥

अनेकचित्तविभ्रान्ता, मोहजालसमावृता,
प्रसक्ता, कामभोगेषु, पतन्ति, नरके, अशुचौ ॥१६॥

इसलिये वे-

अनेक-चित्त-विभ्रान्ता	=अनेक प्रकारसे भ्रमित हुए चित्तवाले (अज्ञानीजन)	काम-भोगेषु	=विषय भोगोंमें
		प्रसक्ता	=अत्यन्त आसक्त हुए
मोहजाल-समावृता	=मोहरूप जालमें फसे हुए (एव)	अशुचौ	=महान् अपवित्र
		नरके	=नरकमें
		पतन्ति	=गिरते ह

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥

आत्मसभाविता, स्तब्धा, धनमानमदान्विता,
यजन्ते, नामयज्ञै, ते, दम्भेन, अविधिपूर्वकम् ॥१७॥

तथा–

ते	= वे	अविधि-पूर्वकम्	= शास्त्रविधिसे रहित
आत्म-सम्भाविता	= अपने आपको ही श्रेष्ठ माननेवाले	नामयज्ञैः	= केवल नाम-मात्रके यज्ञों-द्वारा
स्तब्धाः	= घमण्डी पुरुष	दम्भेन	= पाखण्डसे
धनमान-मदान्विताः	= धन और मानके मदसे युक्त हुए	यजन्ते	= यजन करते हैं

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥

अहङ्कारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, च, संश्रिताः,
माम्, आत्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तः, अभ्यसूयकाः ॥१८॥

तथा वे–

अहङ्कारम्	= अहङ्कार		(एव)
बलम्	= बल	अभ्य-सूयकाः	= दूसरोंकी निन्दा करनेवाले पुरुष
दर्पम्	= घमण्ड		
कामम्	= कामना	आत्म-परदेहेषु	= अपने और दूसरोंके शरीरमें (स्थित)
च	= और		
क्रोधम्	= क्रोधादिके	माम्	= मुझ अन्तर्यामीसे
संश्रिताः	= परायण हुए	प्रद्विषन्तः	= द्वेष करनेवाले हैं

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥

तान्, अहम्, द्विषत, क्रूरान्, ससारेषु, नराधमान्,
क्षिपामि, अजस्रम्, अशुभान्, आसुरीषु, एव, योनिषु॥ १०॥

ऐसे—

तान्	=उन	ससारेषु	=ससारमें
द्विषत	=द्वेष करनेवाले	अजस्रम्	=बारम्बार
अशुभान्	=पापाचारी (और)	आसुरीषु	=आसुरी
क्रूरान्	=क्रूरकर्मी	योनिषु	=योनियोंमें
नराधमान्	=नराधमोंको	एव	=ही
अहम्	=मैं	क्षिपामि	=गिराता हूं—

अर्थात् शूकर कूकर आदि नीच योनियोंमें ही उत्पन्न करता हू।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

आसुरीम्, योनिम्, आपन्ना, मूढा, जन्मनि, जन्मनि,
माम्, अप्राप्य, एव, कौन्तेय, तत, यान्ति, अधमाम्, गतिम्॥२०॥

इसलिये—

कौन्तेय	=हे अर्जुन	जन्मनि	=जन्ममें
मूढा	=वे मूढ पुरुष	आसुरीम्	=आसुरी
जन्मनि	=जन्म	योनिम्	=योनिको

आपन्ना =प्राप्त हुए
माम् =मेरेको
अप्राप्य =न प्राप्त होकर
ततः =उससे भी
अधमाम् =अति नीच
गतिम् =गतिको
एव =ही
यान्ति =प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

त्रिविधम्, नरकस्य, इदम्, द्वारम्, नाशनम्, आत्मनः, कामः, क्रोधः, तथा, लोभः, तस्मात्, एतत्, त्रयम्, त्यजेत्॥ २१ ॥

और हे अर्जुन—

काम =काम
क्रोध =क्रोध
तथा =तथा
लोभ =लोभ
इदम् =यह
त्रिविधम् =तीन प्रकारके
नरकस्य =नरकके
द्वारम् =द्वार*
आत्मनः =आत्माका
नाशनम् =नाश करनेवाले हैं अर्थात् अधोगतिमें ले जानेवाले हैं
तस्मात् =इससे
एतत् =इन
त्रयम् =तीनोंको
त्यजेत् =त्याग देना चाहिये

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥

---

* सर्व अनर्थोंके मूल और नरककी प्राप्तिमें हेतु होनेसे यहां काम, क्रोध और लोभको नरकका द्वार कहा है ।

एते, विमुक्त, कौन्तेय, तमोद्वारै, त्रिभि नर,
आचरति, आत्मन, श्रेय, तत, याति, पराम्, गतिम्॥ २२॥

क्योंकि–

कौन्तेय	=हे अर्जुन		आचरति	=आचरण करता है†
एते	=इन			
त्रिभि.	=तीनों		तत	=इससे (वह)
तमोद्वारैः	=नरकके द्वारोंसे		पराम्	=परम
विमुक्त	=मुक्त हुआ*		गतिम्	=गतिको
नर	=पुरुष		याति	=जाता है
आत्मन	=अपने			अर्थात् मेरेको
श्रेय	=कल्याणका			प्राप्त होता है

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

य, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, वर्तते, कामकारत,
न, स, सिद्धिम्, अवाप्नोति, न, सुखम्, न, पराम्, गतिम्॥ २३॥

और–

य	=जो पुरुष	उत्सृज्य	=त्यागकर
शास्त्रविधिम्	=शास्त्रकी विधिको	कामकारत	=अपनी इच्छासे

---

* अर्थात् काम, क्रोध और लोभ आदि विकारोंसे छूटा हुआ।

† अपने उद्धारके लिये भगवत्-आज्ञानुसार वर्तना ही अपने कल्याणका आचरण करना है।

वर्तते	=वर्तता है	न	=न
स	=वह	पराम्	=परम
न	=न (तो)	गतिम्	=गतिको (तथा)
सिद्धिम्	=सिद्धिको	न	=न
अवाप्नोति	=प्राप्त होता है (और)	सुखम्	=सुखको (ही) (प्राप्त होता है)

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥

तस्मात्, शास्त्रम्, प्रमाणम्, ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ,
ज्ञात्वा, शास्त्रविधानोक्तम्, कर्म, कर्तुम्, इह, अर्हसि ॥ २४॥

तस्मात्	=इससे	(एवम्)	=ऐसा
ते	=तेरे लिये	ज्ञात्वा	=जानकर (तू)
इह	=इस	शास्त्र-विधानोक्तम्	=शास्त्रविधिसे नियत किये हुए
कार्याकार्य-व्यवस्थितौ	=कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें	कर्म	=कर्मको (ही)
शास्त्रम्	=शास्त्र (ही)	कर्तुम्	=करनेके लिये
प्रमाणम्	=प्रमाण है	अर्हसि	=योग्य है

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्-
विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥

ये, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, यजन्ते, श्रद्धया, अन्विता, तेषाम् निष्ठा, तु, का, कृष्ण, सत्त्वम्, आहो, रज, तम ॥ १ ॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचनोंको सुनकर अर्जुन बोला-

कृष्ण	=हे कृष्ण	तेषाम्	=उनकी
ये	=जो मनुष्य	निष्ठा	=स्थिति
शास्त्रविधिम्	=शास्त्रविधिको	तु	=फिर
उत्सृज्य	=त्यागकर (केवल)	का	=कौनसी है (क्या)
श्रद्धया	=श्रद्धासे	सत्त्वम्	=सात्त्विकी है
अन्विता	=युक्त हुए	आहो	=अथवा
यजन्ते	={ देवादिकोंका पूजन करते हैं	रज	=राजसी (किंवा)
		तम	=तामसी है

श्रीभगवानुवाच

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥

त्रिविधा, भवति, श्रद्धा, देहिनाम्, सा, स्वभावजा, सात्त्विकी, राजसी, च, एव, तामसी, च, इति, ताम्, शृणु ॥ २ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले हे अर्जुन-

देहिनाम्	=मनुष्योंकी	राजसी	=राजसी
सा	=वह	च	=तथा
	(बिना शास्त्रीय	तामसी	=तामसी
	संस्कारोंके	इति	=ऐसे
	केवल)	त्रिविधा	=तीनों प्रकारकी
स्वभावजा	={स्वभावसे उत्पन्न हुई*	एव	=ही
		भवति	=होती है
श्रद्धा	=श्रद्धा	ताम्	=उसको (तू)
सात्त्विकी	=सात्त्विकी	(मत्तः)	=मेरेसे
च	=और	शृणु	=सुन

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥

सत्त्वानुरूपा, सर्वस्य, श्रद्धा, भवति, भारत, श्रद्धामयः, अयम्, पुरुषः, यः, यच्छ्रद्धः, सः, एव, सः ॥ ३ ॥

भारत	=हे भारत	सर्वस्य	=सभी मनुष्योंकी

---

* अनन्त जन्मोंमें किये हुए कर्मोंके सञ्चित संस्कारसे उत्पन्न हुई श्रद्धा स्वभावजा श्रद्धा कही जाती है।

श्रद्धा	= श्रद्धा
सत्त्वानुरूपा	= उनके अन्तःकरणके अनुरूप
भवति	= होती है (तथा)
अयम्	= यह
पुरुषः	= पुरुष
श्रद्धामयः	= श्रद्धामय है
(अतः)	= इसलिये
यः	= जो पुरुष
यच्छ्रद्धः	= जैसी श्रद्धावाला है
सः	= वह स्वयम्
एव	= भी
सः	= वही है

अर्थात् जैसी जिसकी श्रद्धा है वैसा ही उसका स्वरूप है।

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥

यजन्ते, सात्त्विकाः, देवान्, यक्षरक्षांसि, राजसाः, प्रेतान्, भूतगणान्, च, अन्ये, यजन्ते, तामसाः जनाः ॥४॥

उनमें–

सात्त्विकाः	= सात्त्विक पुरुष (तो)
देवान्	= देवोंको
यजन्ते	= पूजते हैं (और)
राजसाः	= राजस पुरुष
यक्षरक्षांसि	= यक्ष और राक्षसोंको (पूजते हैं)
	(तथा)
अन्ये	= अन्य (जो)
तामसाः	= तामस
जनाः	= मनुष्य हैं (वे)
प्रेतान्	= प्रेत
च	= और
भूतगणान्	= भूतगणोंको
यजन्ते	= पूजते हैं

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः॥

अशास्त्रविहितम्, घोरम्, तप्यन्ते, ये, तपः, जनाः,
दम्भाहंकारसंयुक्ताः, कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥

और हे अर्जुन—

ये	=जो	तप्यन्ते	=तपते हैं (तथा)
जनाः	=मनुष्य	दम्भाहंकार-संयुक्ताः	=दम्भ और अहंकारसे युक्त (एवं)
अशास्त्र-विहितम्	=शास्त्रविधिसे रहित (केवल मनोकल्पित)	कामराग-बलान्विताः	=कामना आसक्ति और बलके अभिमानसे भी युक्त हैं
घोरम्	=घोर		
तपः	=तपको		

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥

कर्षयन्तः, शरीरस्थम्, भूतग्रामम्, अचेतसः, माम्,
च, एव, अन्तःशरीरस्थम्, तान्, विद्धि, आसुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥

तथा जो—

शरीरस्थम्	=शरीररूपसे स्थित	भूतग्रामम्	=भूतसमुदायको*

---

* अर्थात् शरीर, मन और इन्द्रियादिकोंके रूपमें परिणत हुए आकाशादि पाँच भूतोंको।

च =और
अन्तःशरीरस्थम् = { अन्तःकरणमें स्थित
माम् = { मुझ अन्तर्यामीको
एव =भी
कर्शयन्तः = { कृश करनेवाले हैं*
तान् =उन
अचेतसः =अज्ञानियोंको
(तू)
आसुरनिश्चयान् = { आसुरीस्वभाववाले
विद्धि =जान

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥

आहारः, तु, अपि, सर्वस्य, त्रिविधः, भवति, प्रियः, यज्ञः, तपः, तथा, दानम्, तेषाम्, भेदम्, इमम्, शृणु ॥७॥

और हे अर्जुन ! जैसे श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है वैसे ही—

आहारः =भोजन
अपि =भी
सर्वस्य =सबको
(अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार)
त्रिविधः =तीन प्रकारका
प्रियः =प्रिय
भवति =होता है
तु =और
तथा =वैसे ही
यज्ञः =यज्ञ
तपः =तप (और)

---

* शास्त्रसे विरुद्ध उपवासादि घोर आचरणोंद्वारा शरीरको सुखाना एवं भगवान्‌के अंशस्वरूप जीवात्माको क्लेश देना भूतसमुदायको और अन्तर्यामी परमात्माको कृश करना है ।

दानम्	=दान भी (तीन तीन प्रकारके होते हैं)	इमम्	=इस
		भेदम्	=न्यारे न्यारे भेदको (तू मेरेसे)
तेषाम्	=उनके	शृणु	=सुन

आयुःसत्त्वबलारोग्य-
सुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या
आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥८॥

आयु सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धना,
रस्या, स्निग्धा, स्थिरा, हृद्या, आहारा, सात्त्विकप्रिया ॥८॥

आयु	=आयु	स्थिरा	=स्थिर रहनेवाले* (तथा)
सत्त्व	=बुद्धि	हृद्या	=स्वभावसे ही मनको प्रिय (ऐसे)
बल	=बल	आहारा	=आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ (तो)
आरोग्य	=आरोग्य	सात्त्विकप्रिया	=सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं
सुख	=सुख (और)		
प्रीति	=प्रीतिको		
विवर्धना	=बढ़ानेवाले (एवं)		
रस्या	=रसयुक्त		
स्निग्धा	=चिकने (और)		

* जिस भोजनका सार शरीरमें बहुत कालतक रहता है उसको स्थिर रहनेवाला कहते हैं।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः,
आहाराः, राजसस्य, इष्टाः, दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

और—

कटु	=कड़वे	दुःखशोकामयप्रदाः	=दुःख चिन्ता और रोगोंको उत्पन्न करनेवाले
अम्ल	=खट्टे		
लवण	=लवणयुक्त (और)		
अत्युष्ण	=अति गरम (तथा)	आहाराः	=आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ
तीक्ष्ण	=तीक्ष्ण		
रूक्ष	=रूखे (और)	राजसस्य	=राजस पुरुषको
विदाहिनः	=दाहकारक (एवं)	इष्टाः	=प्रिय होते हैं

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥

यातयामम्, गतरसम्, पूति, पर्युषितम्, च, यत्,
उच्छिष्टम्, अपि, च, अमेध्यम्, भोजनम्, तामसप्रियम् ॥ १० ॥

तथा—

यत्	=जो	यातयामम्	=अधपका
भोजनम्	=भोजन	गतरसम्	=रसरहित

च	=और		अमेध्यम्	=अपवित्र
पूति	=दुर्गन्धयुक्त (एव)		अपि	=भी है
पर्युषितम्	=बासी (और)		(तत्)	=वह (भोजन)
उच्छिष्टम्	=उच्छिष्ट है		तामस-प्रियम्	=तामस पुरुषको प्रिय होता है
च	=तथा (जो)			

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः॥

अफलाकाङ्क्षिभि, यज्ञ, विधिदृष्ट, य, इज्यते,
यष्टव्यम्, एव, इति, मन, समाधाय, स, सात्त्विक ॥११॥

और हे अर्जुन—

य	=जो		मन	=मनको
यज्ञः	=यज्ञ		समाधाय	=समाधानकरके
विधिदृष्ट	=शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ है (तथा)		अफला-काङ्क्षिभि	=फलको न चाहनेवाले पुरुषोंद्वारा
			इज्यते	=किया जाता है
यष्टव्यम् एव	=करना ही कर्तव्य है		स	=वह (यज्ञ तो)
इति	=ऐसे		सात्त्विक	=सात्त्विक है

अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्॥

अभिसंधाय, तु, फलम्, दम्भार्थम्, अपि, च, एव, यत्,
इज्यते भरतश्रेष्ठ, तम्, यज्ञम्, विद्धि, राजसम् ॥ १२ ॥

तु = और
भरतश्रेष्ठ = हे अर्जुन
यत् = जो (यज्ञ)
दम्भार्थम्एव = { केवल दम्भाचरणके ही लिये }
च = अथवा
फलम् = फलको
अपि = भी
अभिसंधाय = { उद्देश्य रखकर }
इज्यते = किया जाता है
तम् = उस
यज्ञम् = यज्ञको (तू)
राजसम् = राजस
विद्धि = जान

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥

विधिहीनम्, असृष्टान्नम्, मन्त्रहीनम्, अदक्षिणम्,
श्रद्धाविरहितम्, यज्ञम्, तामसम्, परिचक्षते ॥ १३ ॥

तथा–

विधिहीनम् = { शास्त्रविधिसे हीन (और) }
असृष्टान्नम् = { अन्नदानसे रहित (एव) }
मन्त्रहीनम् = बिना मन्त्रोंके
अदक्षिणम् = { बिना दक्षिणाके }
(और)
श्रद्धाविरहितम् = { बिना श्रद्धाके किये हुए }
यज्ञम् = यज्ञको
तामसम् = तामस (यज्ञ)
परिचक्षते = कहते हैं

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्, शौचम्, आर्जवम्, ब्रह्मचर्यम्, अहिंसा, च, शारीरम्, तप, उच्यते ॥ १४ ॥

तथा हे अर्जुन-

देव	= देवता	ब्रह्मचर्यम्	= ब्रह्मचर्य
द्विज	= ब्राह्मण	च	= और
गुरु	= गुरु* (और)	अहिंसा	= अहिंसा (यह)
प्राज्ञ	= ज्ञानीजनोंका		
पूजनम्	= पूजन (एव)	शारीरम्	= शरीरसम्बन्धी
शौचम्	= पवित्रता	तप	= तप
आर्जवम्	= सरलता	उच्यते	= कहा जाता है

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

अनुद्वेगकरम्, वाक्यम्, सत्यम्, प्रियहितम्, च, यत्, स्वाध्यायाभ्यसनम्, च, एव, वाङ्मयम्, तप, उच्यते ॥ १५ ॥

च	= तथा	प्रियहितम्	= प्रिय और हितकारक (एव)
यत्	= जो		
अनुद्वेगकरम्	= उद्वेगको न करनेवाला	सत्यम्	= यथार्थ

* यहां गुरु शब्दसे माता पिता, आचार्य और वृद्ध एवं अपनेसे जो किसी प्रकार भी बड़े हों उन सबको समझना चाहिये।

वाक्यम् = भाषण है*

च = और (जो)

स्वाध्यायाभ्यसनम् = वेद शास्त्रोंके पढ़नेका एवं परमेश्वरके नाम जपनेका अभ्यास है

(तत्) = वह

एव = निःसन्देह

वाङ्मयम् = वाणीसम्बन्धी

तपः = तप

उच्यते = कहा जाता है

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥

मनःप्रसादः, सौम्यत्वम्, मौनम्, आत्मविनिग्रहः,
भावसंशुद्धिः, इति, एतत्, तपः, मानसम्, उच्यते ॥ १६ ॥

तथा–

मनःप्रसादः = मनकी प्रसन्नता

(और)

सौम्यत्वम् = शान्तभाव (एवं)

मौनम् = भगवत् चिन्तन करनेका स्वभाव

आत्मविनिग्रहः = मनका निग्रह

(और)

भावसंशुद्धिः = अन्तःकरणकी पवित्रता

इति = ऐसे

एतत् = यह

मानसम् = मनसम्बन्धी

तपः = तप

उच्यते = कहा जाता है

---

* मन और इन्द्रियोंद्वारा जैसा अनुभव किया हो ठीक वैसा ही कहनेका नाम यथार्थभाषण है ।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते॥

श्रद्धया, परया, तप्तम्, तपः, तत्, त्रिविधम्, नरैः,
अफलाकाङ्क्षिभिः, युक्तैः, सात्त्विकम्, परिचक्षते॥ १७॥

परन्तु हे अर्जुन—

अफलाकाङ्क्षिभिः	=फलको न चाहनेवाले	तप्तम्	=किये हुए
		तत्	=उस (पूर्वोक्त)
युक्तैः	=निष्कामी योगी	त्रिविधम्	=तीन प्रकारके
नरैः	=पुरुषोंद्वारा	तपः	=तपको (तो)
परया	=परम	सात्त्विकम्	=सात्त्विक
श्रद्धया	=श्रद्धासे	परिचक्षते	=कहते हैं

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्॥

सत्कारमानपूजार्थम्, तपः, दम्भेन, च, एव, यत्,
क्रियते, तत्, इह, प्रोक्तम्, राजसम्, चलम्, अध्रुवम्॥ १८॥

च	=और	(वा)	=अथवा
यत्	=जो	दम्भेन	=केवल पाखण्डसे
तपः	=तप	एव	=ही
सत्कारमानपूजार्थम्	=सत्कार मान और पूजाके लिये	क्रियते	=किया जाता है
		तत्	=वह

अध्रुवम्	=अनिश्चित*		(तप)
	(और)	इह	=यहां
चलम्	=क्षणिक फलवाला	राजसम्	=राजस
		प्रोक्तम्	=कहा गया है

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्॥

मूढग्राहेण, आत्मन, यत्, पीडया, क्रियते, तप, परस्य, उत्सादनार्थम्, वा, तत्, तामसम्, उदाहृतम्॥१९॥

और—

यत्	=जो	परस्य	=दूसरेका
तप	=तप	उत्सादनार्थम्	=अनिष्ट करनेके लिये
मूढग्राहेण	=मूढ़तापूर्वक हठसे	क्रियते	=किया जाता है
आत्मन	=मन वाणी और शरीरकी	तत्	=वह (तप)
पीडया	=पीड़ाके सहित	तामसम्	=तामस
वा	=अथवा	उदाहृतम्	=कहा गया है

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

दातव्यम्, इति, यत्, दानम्, दीयते, अनुपकारिणे, देशे, काले, च, पात्रे, च, तत्, दानम्, सात्त्विकम्, स्मृतम्॥२०॥

---

* अनिश्चित फलवाला उसको कहते हैं कि जिसका फल होने न होनेमें शङ्का हो।

परिक्लिष्टम्	=क्लेशपूर्वक*	उद्दिश्य	=उद्देश्य रखकर‡
च	=तथा	पुन	=फिर
प्रत्युपकारार्थम्	=प्रत्युपकारके प्रयोजनसे†	दीयते	=दिया जाता है
		तत्	=वह
		दानम्	=दान
वा	=अथवा	राजसम्	=राजस
फलम्	=फलको	स्मृतम्	=कहा गया है

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

अदेशकाले, यत्, दानम्, अपात्रेभ्य, च, दीयते, असत्कृतम्, अवज्ञातम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम् ॥२२॥

च	=और	अवज्ञातम्	=तिरस्कारपूर्वक
यत्	=जो	अदेशकाले	=अयोग्य देश कालमें
दानम्	=दान		
असत्कृतम्	=विना सत्कार किये	अपात्रेभ्य	=कुपात्रोंके लिये§
(वा)	=अथवा	दीयते	=दिया जाता है

* जैसे प्राय वर्तमान समयके चन्दे चिट्ठे आदिमें धन दिया जाता है ।

† अर्थात् बदलेमें अपना सासारिक कार्य सिद्ध करनेकी आशासे ।

‡ अर्थात् मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और स्वर्गादिकी प्राप्तिके लिये अथवा रोगादिकी निवृत्तिके लिये ।

§ अर्थात् मद्य मासादि अभक्ष्य वस्तुओंके खानेवालों एवं चोरी जारी आदि नीच कर्म करनेवालोंके लिये ।

तत्	=वह (दान)	उदाहृतम्	=कहा गया है
तामसम्	=तामस		

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥

ॐ तत्सत्, इति, निर्देश, ब्रह्मण, त्रिविध, स्मृत
ब्राह्मणा, तेन, वेदा, च, यज्ञा, च, विहिता, पुरा॥२३॥

और हे अर्जुन–

ॐ	=ॐ	तेन	=उसीसे
तत्	=तत्	पुरा	=सृष्टिके आदिकालमें
सत्	=सत्	ब्राह्मणा	=ब्राह्मण
इति	=ऐसे (यह)	च	=और
त्रिविध	=तीन प्रकारका	वेदा	=वेद
ब्रह्मण	=सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका	च	=तथा
निर्देश	=नाम	यज्ञा	=यज्ञादिक
स्मृत	=कहा है	विहिता	=रचे गये हैं

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥

तस्मात्, ॐ, इति, उदाहृत्य, यज्ञदानतप क्रिया,
प्रवर्तन्ते, विधानोक्ता, सततम्, ब्रह्मवादिनाम्॥२४॥

तस्मात्	= इसलिये	सततम्	= सदा
ब्रह्म-वादिनाम्	= वेदको कथन करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंकी	ॐ	= ॐ
		इति	= ऐसे (इस परमात्माके नामको)
विधानोक्ताः	= शास्त्रविधिसे नियत की हुई	उदाहृत्य	= उच्चारण करके (ही)
यज्ञदान-तपःक्रियाः	= यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ	प्रवर्तन्ते	= आरम्भ होती हैं

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः॥

तत्, इति, अनभिसंधाय, फलम्, यज्ञतपःक्रियाः,
दानक्रियाः, च, विविधाः, क्रियन्ते, मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥२५॥

और—

तत्	= तत् अर्थात् तत् नामसे कहे जाने-वाले परमात्माका ही यह सब है	अनभि-संधाय	= न चाहकर
		विविधाः	= नाना प्रकारकी
इति	= ऐसे (इस भावसे)	यज्ञतपः-क्रियाः	= यज्ञ तपरूप क्रियाएँ
		च	= तथा
फलम्	= फलको	दानक्रियाः	= दानरूप क्रियाएँ

मोक्षकाङ्क्षिभि	= कल्याणकी इच्छावाले पुरुषोंद्वारा	क्रियन्ते	= की जाती हैं

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥

सद्भावे, साधुभावे, च, सत्, इति, एतत्, प्रयुज्यते,
प्रशस्ते, कर्मणि, तथा सत्, शब्द, पार्थ, युज्यते ॥२६॥

और-

सत्	= सत्	तथा	= तथा
इति	= ऐसे	पार्थ	= हे पार्थ
एतत्	= यह (परमात्माका नाम)	प्रशस्ते	= उत्तम
सद्भावे	= सत्यभावमें	कर्मणि	= कर्ममें (भी)
च	= और	सत्	= सत्
साधुभावे	= श्रेष्ठभावमें	शब्द	= शब्द
प्रयुज्यते	= प्रयोग किया जाता है	युज्यते	= प्रयोग किया जाता है

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥

यज्ञे, तपसि, दाने, च, स्थिति, सत्, इति, च, उच्यते,
कर्म, च, एव, तदर्थीयम्, सत्, इति, एव, अभिधीयते ॥२७॥

च	=तथा	इति	=ऐसे
यज्ञे	=यज्ञ	उच्यते	=कही जाती है
तपसि	=तप	च	=और
च	=और	तदर्थीयम्	=उस परमात्माके अर्थ किया हुआ
दाने	=दानमें		
(या)	=जो	कर्म	=कर्म
स्थिति	=स्थिति है	एव	=निश्चयपूर्वक
(सा)	=वह	सत्	=सत् है
एव	=भी	इति	=ऐसे
सत्	=सत् है	अभिधीयते	=कहा जाता है

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥

अश्रद्धया, हुतम्, दत्तम्, तप, तप्तम्, कृतम्, च, यत्, असत्, इति, उच्यते, पार्थ, न, च, तत्, प्रेत्य, नो इह ॥२८॥

और–

पार्थ	=हे अर्जुन	तप	=तप
अश्रद्धया	=विना श्रद्धाके	च	=और
हुतम्	=होमा हुआ हवन (तथा)	यत्	=जो (कुछ भी)
		कृतम्	=किया हुआ कर्म है
दत्तम्	=दिया हुआ दान (एव)	(तत्)	=वह (समस्त)
तप्तम्	=तपा हुआ	असत्	=असत्

इति	=ऐसे			(लाभदायक है)
उच्यते	=कहा जाता है (इसलिये)	च	=और	
तत्	=वह	न	=न	
नो	=न (तो)	प्रेत्य	=मरनेके पीछे	
इह	=इस लोकमें		(ही लाभदायक है)	

इसलिये मनुष्यको चाहिये कि सच्चिदानन्दघन परमात्माके नामका निरन्तर चिन्तन करता हुआ निष्काम-भावसे केवल परमेश्वरके लिये शास्त्रविधिसे नियत किये हुए कर्मोंका परम श्रद्धा और उत्साहके सहित आचरण करे ।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्म-
विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम
सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा
योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके
संवादमें "श्रद्धात्रयविभागयोग" नामक
सत्रहवाँ अध्याय ॥१७॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

अथाष्टादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

सन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥

सन्यासस्य, महाबाहो, तत्त्वम्, इच्छामि, वेदितुम्,
त्यागस्य, च, हृषीकेश, पृथक्, केशिनिषूदन ॥ १ ॥

उसके उपरान्त अर्जुन बोला-

महाबाहो	=हे महाबाहो	त्यागस्य	=त्यागके
हृषीकेश	=हे अन्तर्यामिन्	तत्त्वम्	=तत्त्वको
केशि-निषूदन	={ हे वासुदेव (मैं)	पृथक्	=पृथक् पृथक्
सन्यासस्य	=सन्यास	वेदितुम्	=जानना
च	=और	इच्छामि	=चाहता हू

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥

काम्यानाम्, कर्मणाम्, न्यासम् सन्यासम्, कवय, विदु,
सर्वकर्मफलत्यागम्, प्राहु, त्यागम्, विचक्षणा ॥ २ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान्
बोले हे अर्जुन ! कितने ही-

कवय =पण्डितजन
(तो)
काम्यानाम् =काम्य*
कर्मणाम् =कर्मोंके
न्यासम् =त्यागको
संन्यासम् =संन्यास
विदु =जानते हैं
(च) =और

(कितने ही)
विचक्षणा = { विचारकुशल पुरुष
सर्वकर्म-फलत्यागम् = { सब कर्मोंके फलके त्यागको†
त्यागम् =त्याग
प्राहु =कहते हैं

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥

त्याज्यम्, दोषवत्, इति, एके, कर्म, प्राहु, मनीषिण,
यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, इति, च, अपरे ॥ ३ ॥

तथा-

एके =कई एक | मनीषिण =विद्वान्

---

* स्त्री, पुत्र और धन आदि प्रिय वस्तुओंकी प्राप्तिके लिये तथा रोग सङ्कटादिकी निवृत्तिके लिये जो यज्ञ, दान, तप और उपासना आदि कर्म किये जाते हैं, उनका नाम 'काम्यकर्म' है ।

† ईश्वरकी भक्ति, देवताओंका पूजन, माता-पिता आदि गुरुजनोंकी सेवा, यज्ञ, दान और तप तथा वर्णाश्रमके अनुसार आजीविकाद्वारा गृहस्थका निर्वाह एवं शरीरसम्बन्धी खानपान इत्यादिक जितने कर्तव्य कर्म हैं उन सबमें इस लोक और परलोककी सम्पूर्ण कामनाओंके त्यागका नाम सब कर्मोंके फलका त्याग है ।

इति	=ऐसे	अपरे	=दूसरे विद्वान्
आहुः	=कहते हैं (कि)	इति	=ऐसे
कर्म	=कर्म (सभी)	(आहुः)	=कहते हैं (कि)
दोषवत्	=दोषयुक्त हैं (इसलिये)	यज्ञदान-तप कर्म	={ यज्ञ दान और तपरूप कर्म
त्याज्यम्	={ त्यागनेके योग्य हैं	न त्याज्यम्	={ त्यागने योग्य नहीं हैं
च	=और		

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः॥

निश्चयम्, शृणु मे, तत्र, त्यागे, भरतसत्तम,
त्याग, हि, पुरुषव्याघ्र, त्रिविध, सम्प्रकीर्तित. ॥ ४ ॥

परन्तु—

भरतसत्तम	=हे अर्जुन	त्याग	=त्याग (सात्त्विक राजस और तामस ऐसे)
तत्र	=उस		
त्यागे	={ त्यागके विषयमें (तू)		
मे	=मेरे		
निश्चयम्	=निश्चयको	त्रिविध	=तीनों प्रकारका
शृणु	=सुन	हि	=ही
पुरुषव्याघ्र	=हे पुरुषश्रेष्ठ (वह)	सम्प्रकीर्तित	=कहा गया है

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, कार्यम्, एव, तत्,
यज्ञः, दानम्, तपः, च, एव, पावनानि, मनीषिणाम्॥ ५॥

तथा—

यज्ञदान-तपःकर्म	= यज्ञ, दान और तपरूप कर्म	यज्ञः	= यज्ञ
		दानम्	= दान
न त्याज्यम्	= त्यागनेके योग्य नहीं है	च	= और
		तपः	= तप
(किन्तु)		(यह तीनों)	
तत्	= वह	एव	= ही
एव	= निःसन्देह	मनीषिणाम्	= बुद्धिमान्* पुरुषोंको
कार्यम्	= करना कर्तव्य है	पावनानि	= पवित्र करने वाले हैं
(क्योंकि)			

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥

एतानि, अपि, तु, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, फलानि, च,
कर्तव्यानि, इति, मे, पार्थ, निश्चितम्, मतम्, उत्तमम्॥ ६॥

* वह मनुष्य बुद्धिमान् है जो फल और आसक्तिको त्यागकर केवल भगवदर्थ कर्म करता है।

इसलिये-

पार्थ	=हे पार्थ	फलानि	=फलोंको
एतानि	= यह यज्ञ दान और तपरूप कर्म	त्यक्त्वा	=त्यागकर (अवश्य)
		कर्तव्यानि	=करने चाहिये
तु	=तथा	इति	=ऐसा
(अन्यानि)	=और	मे	=मेरा
अपि	=भी	निश्चितम्	= निश्चय किया हुआ
कर्माणि	=सपूर्ण श्रेष्ठ कर्म		
सङ्गम्	=आसक्तिको	उत्तमम्	=उत्तम
च	=और	मतम्	=मत है

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥

नियतस्य, तु, सन्यास, कर्मण, न उपपद्यते,
मोहात्, तस्य, परित्याग, तामस, परिकीर्तित ॥ ७ ॥

तु	=और (हे अर्जुन)	न उपपद्यते	=योग्य नहीं है
नियतस्य	=नियत*		(इसलिये)
कर्मण	=कर्मका		
सन्यास	=त्याग करना	मोहात्	=मोहसे

---

* इसी अध्यायके श्लोक ४८ की टिप्पणीमें इसका अर्थ देखना चाहिये ।

तस्य	=उसका	तामस	=तामस त्याग
परित्याग	=त्याग करना	परिकीर्तित	=कहा गया है

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥

दुःखम्, इति, एव, यत्, कर्म, कायक्लेशभयात्, त्यजेत्,
सः, कृत्वा, राजसम् त्यागम्, न, एव, त्यागफलम्, लभेत् ॥८॥

और यदि कोई मनुष्य—

यत्	=जो (कुछ)		(तो)
कर्म	=कर्म है	सः	=वह पुरुष
(तत्)	=वह (सब)		(उस)
एव	=ही	राजसम्	=राजस
दुःखम्	=दुःखरूप है	त्यागम्	=त्यागको
इति	=ऐसे (समझकर)	कृत्वा	=करके
कायक्लेश-भयात्	=शारीरिक क्लेशके भयसे	एव	=भी
	(कर्मोंका)	त्यागफलम्	=त्यागके फलको
त्यजेत्	=त्याग कर दे	न लभेत्	=प्राप्त नहीं होता है—

अर्थात् उसका वह त्याग करना व्यर्थ ही होता है ।

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥

कार्यम्, इति, एव, यत्, कर्म, नियतम्, क्रियते, अर्जुन,

सङ्गम्, त्यक्त्वा, फलम्, च एव, स, त्याग, सात्त्विक, मत ॥९॥

और—

अर्जुन	=हे अर्जुन		च	=और
कार्यम्	=करना कर्तव्य है		फलम्	=फलको
इति	=ऐसे (समझकर)		त्यक्त्वा	=त्यागकर
एव	=ही		क्रियते	=किया जाता है
यत्	=जो		स	=वह
नियतम्	=शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ कर्तव्य		एव	=ही
			सात्त्विक	=सात्त्विक
कर्म	=कर्म		त्याग	=त्याग
सङ्गम्	=आसक्तिको		मत	=माना गया है—

अर्थात् कर्तव्य कर्मोंको स्वरूपसे न त्यागकर उनमें जो आसक्ति और फलका त्यागना है वही सात्त्विक त्याग माना गया है।

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः॥

न, द्वेष्टि, अकुशलम्, कर्म, कुशले, न, अनुषज्जते,

त्यागी, सत्त्वसमाविष्ट मेधावी, छिन्नसंशय ॥१०॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्

अनिष्टम्, इष्टम्, मिश्रम्, च, त्रिविधम् कर्मण, फलम्,
भवति, अत्यागिनाम्, प्रेत्य, न, तु, सन्यासिनाम्, क्वचित्॥१२॥

तथा-

अत्यागिनाम्	= सकामी पुरुषोंके		प्रेत्य	= मरनेके पश्चात्(भी)
कर्मण	= कर्मका (ही)		भवति	= होता है
इष्टम्	= अच्छा		तु	= और
अनिष्टम्	= बुरा		सन्यासिनाम्	= त्यागी* पुरुषोंके
च	= और			
मिश्रम्	= मिला हुआ			(कर्मोंका फल)
(इति)	= ऐसे		क्वचित्	= किसी कालमें भी
त्रिविधम्	= तीन प्रकारका			
फलम्	= फल		न	= नहीं होता-

क्योंकि उनके द्वारा होनेवाले कर्म वास्तवमें कर्म नहीं हैं।

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्॥

---

* सपूर्ण कर्तव्यकर्मोंमें फल, आसक्ति और कर्तापनके अभिमानको जिसने त्याग दिया है उसीका नाम त्यागी है।

पञ्च, एतानि, महाबाहो, कारणानि, निबोध, मे,
साङ्ख्ये, कृतान्ते, प्रोक्तानि, सिद्धये, सर्वकर्मणाम् ॥१३॥

और–

महाबाहो	=हे महाबाहो	साङ्ख्ये	=साङ्ख्य
सर्वकर्मणाम्	=संपूर्ण कर्मोंकी	कृतान्ते	=सिद्धान्तमें
		प्रोक्तानि	=कहे गये हैं
सिद्धये	=सिद्धिके लिये*	(तानि)	=उनको (तू)
एतानि	=यह	मे	=मेरेसे
पञ्च	=पांच	निबोध	=भली प्रकार जान
कारणानि	=हेतु		

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥

अधिष्ठानम्, तथा, कर्ता, करणम्, च, पृथग्विधम्,
विविधा, च, पृथक्, चेष्टा, दैवम्, च, एव, अत्र, पञ्चमम् ॥१४॥

हे अर्जुन–

अत्र	=इस विषयमें	च	=तथा
अधिष्ठानम्	=आधार†	पृथग्विधम्	=न्यारे न्यारे
च	=और	करणम्	=करण‡
कर्ता	=कर्ता	च	=और

* अर्थात् संपूर्ण कर्मोंके सिद्ध होनेमें ।

† जिसके आश्रय कर्म किये जायँ उसका नाम आधार है ।

‡ जिन जिन इन्द्रियादिकोंके और साधनोंके द्वारा कर्म किये जाते हैं उनका नाम करण है ।

विविधा	=नाना प्रकारकी	एव	=ही
पृथक्	=न्यारी न्यारी	पञ्चमम्	=पाचवा हेतु
चेष्टा	=चेष्टा (एव)	दैवम्	=दैव*
तथा	=वैसे		(कहा गया है)

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥

शरीरवाङ्मनोभि , यत्, कर्म, प्रारभते, नर',
न्याय्यम्, वा, विपरीतम्, वा, पञ्च, एते, तस्य, हेतव ॥१५॥

क्योंकि–

नर	=मनुष्य	यत्	=जो (कुछ)
शरीरवाङ्-मनोभि	=मन, वाणी और शरीरसे	कर्म	=कर्म
		प्रारभते	=आरम्भ करता है
न्याय्यम्	=शास्त्रके अनुसार	तस्य	=उसके
वा	=अथवा	एते	=यह
विपरीतम्	=विपरीत	पञ्च	=पाचों (ही)
वा	=भी	हेतव	=कारण हैं

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥

तत्र, एवम्, सति, कर्तारम्, आत्मानम्, केवलम्, तु, य,
पश्यति, अकृतबुद्धित्वात्, न, स, पश्यति, दुर्मति ॥१६॥

---

* पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोके सस्कारोंका नाम दैव है ।

तु	=परन्तु	आत्मानम्	=आत्माको
एवम्	=ऐसा	कर्तारम्	=कर्ता
सति	=होनेपर भी	पश्यति	=देखता है
यः	=जो पुरुष	सः	=वह
अकृत-बुद्धित्वात्	=अशुद्ध बुद्धि* होनेके कारण	दुर्मति	=मलिन बुद्धि-वाला अज्ञानी
तत्र	=उस विषयमें		
केवलम्	=केवल शुद्ध-स्वरूप	न पश्यति	=यथार्थ नहीं देखता है

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥

यस्य, न, अहंकृत, भाव, बुद्धि, यस्य, न, लिप्यते,
हत्वा, अपि, स, इमान्, लोकान्, न, हन्ति, न, निबध्यते ॥१७॥

और हे अर्जुन—

यस्य	=जिस पुरुषके (अन्तःकरणमें)	यस्य	=जिसकी
अहंकृत	=मैं कर्ता हूँ (ऐसा)	बुद्धि	=बुद्धि (सांसारिक पदार्थोंमें और संपूर्ण कर्मोंमें)
भाव	=भाव		
न	=नहीं है (तथा)	न लिप्यते	=लिपायमान नहीं होती

* सत्सङ्ग और शास्त्रके अभ्याससे तथा भगवान्‌के अर्थ कर्म और उपासनाके करनेसे मनुष्यकी बुद्धि शुद्ध होती है इसलिये जो उपरोक्त साधनोंसे रहित है उसकी बुद्धि अशुद्ध है ऐसा समझना चाहिये ।

स	=वह पुरुष	न	=न
इमान्	=इन		(तो)
लोकान्	=सब लोकोंको	हन्ति	=मारता है (और)
हत्वा	=मारकर	न	=न
अपि	=भी (वास्तवमें)	निबध्यते	=पापसे बधता है*

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः॥

ज्ञानम्, ज्ञेयम्, परिज्ञाता, त्रिविधा, कर्मचोदना,
करणम्, कर्म, कर्ता, इति, त्रिविध, कर्मसंग्रह ॥१८॥

तथा हे भारत–

परिज्ञाता	=ज्ञाता†	ज्ञेयम्	=ज्ञेय §
ज्ञानम्	=ज्ञान ‡ और	त्रिविधा	=यह तीनों (तो)

* जैसे अग्नि, वायु और जलके द्वारा प्रारब्धवश किसी प्राणीकी हिंसा होती देखनेमें आवे तो भी वह वास्तवमें हिंसा नहीं है, वैसे ही जिस पुरुषका देहमें अभिमान नहीं है और स्वार्थरहित केवल संसारके हितके लिये ही जिसकी संपूर्ण क्रियाएं होती हैं उस पुरुषके शरीर और इन्द्रियोंद्वारा यदि किसी प्राणीकी हिंसा होती हुई लोकदृष्टिमें देखी जाय तो भी वह वास्तवमें हिंसा नहीं है क्योंकि आसक्ति, स्वार्थ और अहंकारके न होनेसे किसी प्राणीकी हिंसा हो ही नहीं सकती तथा बिना कर्तृत्व अभिमानके किया हुआ कर्म वास्तवमें अकर्म ही है इसलिये वह पुरुष पापसे नहीं बंधता है।

† जाननेवालेका नाम ज्ञाता है।

‡ जिसके द्वारा जाना जाय उसका नाम ज्ञान है।

§ जाननेमें आनेवाली वस्तुका नाम ज्ञेय है।

कर्मचोदना = कर्मके प्रेरक हैं अर्थात् इन तीनोंके संयोगसे तो कर्ममें प्रवृत्त होनेकी इच्छा उत्पन्न होती है (और)
कर्ता = कर्ता*
करणम् = करण† (और)
कर्म = क्रिया‡
इति = यह
त्रिविध = तीनों
कर्मसंग्रह = कर्मके संग्रह हैं अर्थात् इन तीनोंके संयोगसे कर्म बनता है

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि॥

ज्ञानम्, कर्म, च, कर्ता, च, त्रिधा, एव, गुणभेदतः, प्रोच्यते, गुणसंख्याने, यथावत्, शृणु, तानि, अपि॥१९॥

उन [illegible]-

ज्ञानम् = ज्ञान
च = और
कर्म = कर्म
च = तथा
कर्ता = कर्ता
एव = भी
गुणभेदतः = गुणोंके भेदसे
गुणसंख्याने = सांख्यशास्त्रमें
त्रिधा = तीन तीन प्रकारसे
प्रोच्यते = कहे गये हैं

---

* कर्म करनेवालेका नाम कर्ता है।
† जिन साधनोंसे कर्म किया जाय उनका नाम करण है।
‡ करनेका नाम क्रिया है।

तानि	=उनको	यथावत्	=भली प्रकार
अपि	=भी (तू मेरेसे)	शृणु	=सुन

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥

सर्वभूतेषु, येन, एकम्, भावम्, अव्ययम्, ईक्षते,
अविभक्तम्, विभक्तेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, सात्त्विकम् ॥२०॥

और हे अर्जुन-

येन	=जिस ज्ञानसे (मनुष्य)	अविभक्तम्	=विभागरहित (समभावसे स्थित)
विभक्तेषु	=पृथक् पृथक्	ईक्षते	=देखता है
सर्वभूतेषु	=सब भूतोंमें	तत्	=उस
एकम्	=एक	ज्ञानम्	=ज्ञानको (तो तू)
अव्ययम्	=अविनाशी	सात्त्विकम्	=सात्त्विक
भावम्	=परमात्मभावको	विद्धि	=जान

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं
नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु
तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१ ॥

पृथक्त्वेन, तु, यत्, ज्ञानम्, नानाभावान्, पृथग्विधान्,
वेत्ति, सर्वेषु, भूतेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, राजसम् ॥२१॥

तु	=और	नाना-भावान्	=अनेक भावोंको
यत्	=जो	पृथक्त्वेन	=न्यारा न्यारा करके
ज्ञानम्	=ज्ञान अर्थात् जिस ज्ञानके द्वारा मनुष्य	वेत्ति	=जानता है
सर्वेषु	=सपूर्ण	तत्	=उस
भूतेषु	=भूतोंमें	ज्ञानम्	=ज्ञानको (तू)
पृथग्विधान्	=भिन्न भिन्न प्रकारके	राजसम्	=राजस
		विद्धि	=जान

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम्॥

यत्, तु, कृत्स्नवत्, एकस्मिन्, कार्ये, सक्तम्, अहैतुकम्, अतत्त्वार्थवत्, अल्पम्, च, तत्, तामसम्, उदाहृतम्॥२२॥

तु	=और	च	=तथा (जो)
यत्	=जो ज्ञान	अहैतुकम्	=बिना युक्तिवाला
एकस्मिन्	=एक	अतत्त्वार्थवत्	=तत्त्व अर्थसे रहित (और)
कार्ये	=कार्यरूप शरीरमें ही	अल्पम्	=तुच्छ है
कृत्स्नवत्	=सपूर्णताके सदृश	तत्	=वह (ज्ञान)
सक्तम्	=आसक्त है[१]	तामसम्	=तामस
		उदाहृतम्	=कहा गया है

१ अर्थात् जिस विपरीत ज्ञानके द्वारा मनुष्य एक क्षणभङ्गुर नाशवान् शरीरको ही आत्मा मानकर उसमें सर्वस्वकी भाँति आसक्त रहता है।

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥

नियतम्, सङ्गरहितम्, अरागद्वेषत, कृतम्, अफलप्रेप्सुना, कर्म, यत्, तत्, सात्त्विकम्, उच्यते ॥२३॥

तथा हे अर्जुन–

यत्	=जो	अफल-प्रेप्सुना	= फलको न चाहनेवाले पुरुषद्वारा
कर्म	=कर्म	अराग-द्वेषत	= बिना रागद्वेषसे
नियतम्	= शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ	कृतम्	=किया हुआ है
(और)		तत्	=वह (कर्म तो)
सङ्ग-रहितम्	= कर्तापनके अभिमानसे रहित	सात्त्विकम्	=सात्त्विक
		उच्यते	=कहा जाता है

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥

यत्, तु, कामेप्सुना, कर्म, साहंकारेण, वा, पुन, क्रियते, बहुलायासम्, तत्, राजसम्, उदाहृतम् ॥२४॥

तु	=और	बहुलायासम्	= बहुत परिश्रमसे युक्त है
यत्	=जो		
कर्म	=कर्म	पुन	=तथा

कामेप्सुना	= फलको चाहनेवाले	क्रियते	= किया जाता है
वा	= और	तत्	= वह (कर्म)
साहङ्कारेण	= अहङ्कारयुक्त पुरुषद्वारा	राजसम्	= राजस
		उदाहृतम्	= कहा गया है

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥

अनुबन्धम्, क्षयम्, हिंसाम्, अनवेक्ष्य, च, पौरुषम्, मोहात्, आरभ्यते, कर्म, यत्, तत्, तामसम्, उच्यते ॥२५॥

तथा-

यत्	= जो	अनवेक्ष्य	= न विचारकर
कर्म	= कर्म	मोहात्	= केवल अज्ञानसे
अनुबन्धम्	= परिणाम	आरभ्यते	= आरम्भ किया जाता है
क्षयम्	= हानि		
हिंसाम्	= हिंसा	तत्	= वह कर्म
च	= और	तामसम्	= तामस
पौरुषम्	= सामर्थ्यको	उच्यते	= कहा जाता है

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी
धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः
कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥२६॥

मुक्तसङ्ग, अनहंवादी, धृत्युत्साहसमन्वित., सिद्ध्यसिद्ध्यो', निर्विकार, कर्ता, सात्त्विक, उच्यते ॥२६॥

तथा हे अर्जुन ! जो कर्ता-

मुक्तसङ्ग	= आसक्तिसे रहित (और)	सिद्ध्य-सिद्ध्यो	= कार्यके सिद्ध होने और न होनेमें
अनहंवादी	= अहंकारके वचन न बोलनेवाला	निर्विकार	= हर्ष शोकादि विकारोंसे रहित है (वह)
धृत्युत्साह-समन्वित	= धैर्य और उत्साहसे युक्त (एव)	कर्ता	= कर्ता (तो)
		सात्त्विक	= सात्त्विक
		उच्यते	= कहा जाता है

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥

रागी, कर्मफलप्रेप्सु, लुब्ध, हिंसात्मक, अशुचि,
हर्षशोकान्वित, कर्ता, राजस, परिकीर्तित ॥२७॥

और जो-

रागी	= आसक्तिसे युक्त	हिंसात्मक	= दूसरोंको कष्ट देनेके स्वभाव-वाला
कर्मफल-प्रेप्सु	= कर्मोंके फलको चाहनेवाला (और)	अशुचि	= अशुद्धाचारी (और)
लुब्ध	= लोभी है (तथा)	हर्ष-शोकान्वित	= हर्ष शोकसे लिपायमान है (वह)

कर्ता	=कर्ता	परिकीर्तितः	=कहा गया है
राजस	=राजस		

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥

अयुक्त, प्राकृत, स्तब्ध, शठ, नैष्कृतिक, अलस, विषादी, दीर्घसूत्री, च, कर्ता, तामस, उच्यते ॥२८॥

तथा जो–

अयुक्त	=विक्षेपयुक्त चित्तवाला	विषादी	=शोक करनेके स्वभाववाला
प्राकृत	=शिक्षासे रहित	अलस	=आलसी
स्तब्ध	=घमण्डी	च	=और
शठ	=धूर्त (और)	दीर्घसूत्री	=दीर्घसूत्री* है (वह)
नैष्कृतिक	=दूसरेकी आजीविकाका नाशक (एवं)	कर्ता	=कर्ता
		तामस	=तामस
		उच्यते	=कहा जाता है

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥

---

* दीर्घसूत्री उसको कहा जाता है कि जो शीघ्र करने होने लायक साधारण कार्यको भी फिर कर लेंगे ऐसी आशासे बहुत कालतक नहीं पूरा करता ।

बुद्धे, भेदम्, धृते, च, एव, गुणत, त्रिविधम्, शृणु,
प्रोच्यमानम्, अशेषेण, पृथक्त्वेन, धनजय ॥२९॥

तथा—

धनजय	=हे अर्जुन (तू)	भेदम्	=भेद
बुद्धे	=बुद्धिका	अशेषेण	=सपूर्णतासे
च	=और	पृथक्त्वेन	=विभागपूर्वक
धृते	=धारणशक्तिका	(मया)	=मेरेसे
एव	=भी	प्रोच्यमानम्	=कहा हुआ
गुणत	=गुणोंके कारण	शृणु	=सुन
त्रिविधम्	=तीन प्रकारका		

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥

प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, कार्याकार्ये, भयाभये,
बन्धम्, मोक्षम्, च, या, वेत्ति, बुद्धि, सा, पार्थ, सात्त्विकी ॥३०॥

पार्थ	=हे पार्थ	निवृत्तिम्	=निवृत्तिमार्गको†
प्रवृत्तिम्	=प्रवृत्तिमार्ग*		
च	=और	च	=तथा

* गृहस्थमें रहते हुए फल और आसक्तिको त्यागकर भगवत्-अर्पण-बुद्धिसे केवल लोकशिक्षाके लिये राजा जनककी भांति बर्तनेका नाम प्रवृत्तिमार्ग है ।

† देहाभिमानको त्यागकर केवल सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित हुए श्रीशुकदेवजी और सनकादिकोंकी भांति ससारसे उपराम होकर विचरनेका नाम निवृत्तिमार्ग है ।

कार्याकार्ये = { कर्तव्य और अकर्तव्यको
(एव)
भयाभये = { भय और अभयको
(तथा)
बन्धम् = बन्धन
च = और
मोक्षम् = मोक्षको
या = जो बुद्धि
वेत्ति = { तत्त्वसे जानती है
सा = वह
बुद्धिः = बुद्धि (तो)
सात्त्विकी = सात्त्विकी है

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥

यया, धर्मम्, अधर्मम्, च, कार्यम्, च, अकार्यम्, एव, च, अयथावत्, प्रजानाति, बुद्धिः, सा, पार्थ, राजसी॥३१॥

और—

पार्थ = हे पार्थ
यया = { जिस बुद्धिके द्वारा (मनुष्य)
धर्मम् = धर्म
च = और
अधर्मम् = अधर्मको
च = तथा
कार्यम् = कर्तव्य
च = और
अकार्यम् = अकर्तव्यको
एव = भी
अयथावत् = यथार्थ नहीं
प्रजानाति = जानता है
सा = वह
बुद्धिः = बुद्धि
राजसी = राजसी है

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

अधर्मम्, धर्मम्, इति, या, मन्यते, तमसा, आवृता,
सर्वार्थान्, विपरीतान्, च, बुद्धि, सा, पार्थ, तामसी ॥३२॥

और–

पार्थ	=हे अर्जुन	च	=तथा (और भी)
या	=जो	सर्वार्थान्	=सम्पूर्ण अर्थोंको
तमसा	=तमोगुणसे	विपरीतान्	=विपरीत ही
आवृता	=आवृत हुई बुद्धि	(मन्यते)	=मानती है
अधर्मम्	=अधर्मको	सा	=वह
धर्मम्	=धर्म	बुद्धि	=बुद्धि
इति	=ऐसा	तामसी	=तामसी है
मन्यते	=मानती है		

धृत्या यया धारयते
मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या
धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥३३॥

धृत्या यया, धारयते, मन प्राणेन्द्रियक्रिया,
योगेन, अव्यभिचारिण्या, धृति, सा, पार्थ, सात्त्विकी ॥३३॥

और–

पार्थ	=हे पार्थ	अव्यभिचारिण्या	=अव्यभिचारिणी*
योगेन	=ध्यानयोगके द्वारा		
यया	=जिस		

* भगवत्-विषयके सिवाय अन्य सांसारिक विषयोंको धारण करना ही व्यभिचार दोष है उस दोषसे जो रहित है वह अव्यभिचारिणी धारणा है।

धृत्या	=धारणासे (मनुष्य)	धारयते	=धारण करता है
		सा	=वह
मन-प्राणेन्द्रिय-क्रिया	=मन प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको*	धृति	=धारणा (तो)
		सात्त्विकी	=सात्त्विकी है

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी॥

यया, तु, धर्मकामार्थान्, धृत्या, धारयते, अर्जुन, प्रसङ्गेन, फलाकाङ्क्षी, धृति, सा, पार्थ, राजसी॥३४॥

तु	=और	धृत्या	=धारणाके द्वारा
पार्थ	=हे पृथापुत्र	धर्म-कामार्थान्	=धर्म अर्थ और कामोंको
अर्जुन	=अर्जुन	धारयते	=धारण करता है
फलाकाङ्क्षी	=फलकी इच्छा-वाला मनुष्य	सा	=वह
प्रसङ्गेन	=अति आसक्तिसे	धृति	=धारणा
यया	=जिस	राजसी	=राजसी है

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी॥

---

* मन प्राण और इन्द्रियोंको भगवत्प्राप्तिके लिये भजन ध्यान और निष्काम कर्मोंमें लगानेका नाम उनकी क्रियाओंको धारण करना है।

यया, स्वप्नम्, भयम्, शोकम्, विषादम्, मदम्, एव, च,
न, विमुञ्चति, दुर्मेधा, धृतिः, सा पार्थ, तामसी ॥३५॥

तथा—

पार्थ	= हे पार्थ	मदम्	= उन्मत्तताको
दुर्मेधा	= दुष्टबुद्धिवाला मनुष्य	एव	= भी
यया	= जिस	न विमुञ्चति	= नहीं छोड़ता है अर्थात् धारण किये रहता है
(धृत्या)	= धारणाके द्वारा		
स्वप्नम्	= निद्रा		
भयम्	= भय	सा	= वह
शोकम्	= चिन्ता		
च	= और	धृतिः	= धारणा
विषादम्	= दुःखको (एव)	तामसी	= तामसी है

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥

सुखम्, तु, इदानीम्, त्रिविधम्, शृणु, मे, भरतर्षभ,
अभ्यासात्, रमते, यत्र, दुःखान्तम्, च, निगच्छति ॥३६॥

हे अर्जुन—

इदानीम्	= अब	मे	= मेरेसे
सुखम्	= सुख	शृणु	= सुन
तु	= भी (तू)	भरतर्षभ	= हे भरतश्रेष्ठ
त्रिविधम्	= तीन प्रकारका	यत्र	= जिस सुखमें

(साधक पुरुष)
अभ्यासात् = { भजन ध्यान और सेवादिके अभ्याससे
रमते = रमण करता है
च = और
दुःखान्तम् = { दुःखोंके अन्तको
निगच्छति = प्राप्त होता है

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥

यत्, तत्, अग्रे, विषम्, इव, परिणामे, अमृतोपमम्, तत्, सुखम्, सात्त्विकम्, प्रोक्तम्, आत्मबुद्धिप्रसादजम्॥३७॥

तत् = वह (सुख)
अग्रे = { प्रथम साधनके आरम्भकालमें
(यद्यपि)
विषम् = विषके
इव = सदृश भासता है*
(परन्तु)
परिणामे = परिणाममें
अमृतोपमम् = { अमृतके तुल्य है
(अतः) = इसलिये
यत् = जो
आत्मबुद्धिप्रसादजम् = { भगवत्-विषयक बुद्धिके प्रसादसे उत्पन्न हुआ

---

* जैसे खेलमें आसक्तिवाले बालकको विद्याका अभ्यास मूढ़ताके कारण प्रथम विषके तुल्य भासता है वैसे ही विषयोंमें आसक्तिवाले पुरुषको भगवद्-भजन, ध्यान, सेवा आदि साधनोंका अभ्यास मर्म न जाननेके कारण प्रथम विषके सदृश भासता है।

सुखम्	=सुख है	सात्त्विकम्	=सात्त्विक
तत्	=वह	प्रोक्तम्	=कहा गया है

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥

विषयेन्द्रियसंयोगात्, यत्, तत्, अग्रे, अमृतोपमम्, परिणामे, विषम्, इव, तत्, सुखम्, राजसम्, स्मृतम् ॥३८॥

और—

यत्	=जो		(भासता है परन्तु)
सुखम्	=सुख	परिणामे	=परिणाममें
विषयेन्द्रिय-संयोगात्	=विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे	विषम्	=विषके*
(भवति)	=होता है	इव	=सदृश है
तत्	=वह (यद्यपि)	(अतः)	=इसलिये
अग्रे	=भोगकालमें	तत्	=वह (सुख)
अमृतोपमम्	=अमृतके सदृश	राजसम्	=राजस
		स्मृतम्	=कहा गया है

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

यत्, अग्रे, च, अनुबन्धे, च, सुखम्, मोहनम्, आत्मनः, निद्रालस्यप्रमादोत्थम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम् ॥३९॥

* बल, वीर्य, बुद्धि, धन, उत्साह और परलोकका नाश होनेसे विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होनेवाले सुखको परिणाममें विषके सदृश कहा है।

तथा-

यत्	=जो	तत्	=वह
सुखम्	=सुख		
अग्रे	=भोगकालमें	निद्रालस्य-प्रमादोत्थम्	= { निद्रा आलस्य और प्रमादसे उत्पन्न हुआ
च	=और		
अनुबन्धे	=परिणाममें		(सुख)
च	=भी		
आत्मन	=आत्माको	तामसम्	=तामस
मोहनम्	=मोहनेवाला है	उदाहृतम्	=कहा गया है

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥

न, तत्, अस्ति, पृथिव्याम्, वा, दिवि, देवेषु, वा, पुन, सत्त्वम्, प्रकृतिजै मुक्तम्, यत्, एभि, स्यात्, त्रिभि, गुणै ॥४०॥

पुन	=और	सत्त्वम्	=प्राणी
	(हे अर्जुन)	न	=नहीं
पृथिव्याम्	=पृथिवीमें	अस्ति	=है (कि)
वा	=या	यत्	=जो
दिवि	=स्वर्गमें	एभि	=इन
वा	=अथवा	प्रकृतिजै	= { प्रकृतिसे उत्पन्न हुए
देवेषु	=देवताओंमें		
	(ऐसा)	त्रिभि	=तीनों
तत्	=वह (कोई भी)	गुणै	=गुणोंसे

मुक्तम् =रहित । स्यात् =हो

क्योंकि यावन्मात्र सर्व जगत् त्रिगुणमयी मायाका ही विकार है।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्, शूद्राणाम्, च, परंतप, कर्माणि, प्रविभक्तानि, स्वभावप्रभवैः, गुणैः ॥ ४१ ॥

इसलिये-

परंतप	=हे परंतप	कर्माणि	=कर्म
ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशाम्	=ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंके	स्वभावप्रभवैः	=स्वभावसे उत्पन्न हुए
च	=तथा	गुणैः	=गुणोंकरके
शूद्राणाम्	=शूद्रोंके (भी)	प्रविभक्तानि	=विभक्त किये गये हैं

अर्थात् पूर्वकृत कर्मोंके संस्काररूप स्वभावसे उत्पन्न हुए गुणोंके अनुसार विभक्त किये गये हैं।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

शमः, दमः, तपः, शौचम्, क्षान्तिः, आर्जवम्, एव, च, ज्ञानम्, विज्ञानम्, आस्तिक्यम्, ब्रह्मकर्म, स्वभावजम् ॥ ४२ ॥

उनमें-

शम	= अन्तःकरणका निग्रह	आस्तिक्यम्	= आस्तिक बुद्धि
दम	= इन्द्रियोंका दमन	ज्ञानम्	= शास्त्रविषयक ज्ञान
शौचम्	= बाहर भीतरकी शुद्धि*	च	= और
तपः	= धर्मके लिये कष्ट सहन करना	विज्ञानम्	= परमात्म तत्त्वका अनुभव
	(और)	एव	= भी
क्षान्तिः	= क्षमाभाव (एव)		(ये तो)
आर्जवम्	= मन इन्द्रिया और शरीरकी सरलता	ब्रह्मकर्म स्वभावजम्	= ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥

शौर्यम्, तेजः, धृतिः, दाक्ष्यम्, युद्धे, च, अपि, अपलायनम्, दानम्, ईश्वरभावः, च, क्षात्रम्, कर्म, स्वभावजम् ॥ ४३ ॥

और-

शौर्यम्	= शूरवीरता	धृतिः	= धैर्य
तेजः	= तेज	दाक्ष्यम्	= चतुरता

* गीता अध्याय १३ श्लोक ७ की टिप्पणीमें देखना चाहिये

च	=और	च	=और
युद्धे	=युद्धमें	ईश्वरभाव	=स्वामीभाव*
अपि	=भी		(ये सब)
अपलायनम्	=न भागनेका स्वभाव (एव)	क्षात्रम्	=क्षत्रियके
		स्वभावजम्	=स्वाभाविक
दानम्	=दान	कर्म	=कर्म हैं

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यम्, वैश्यकर्म, स्वभावजम्, परिचर्यात्मकम्, कर्म, शूद्रस्य, अपि, स्वभावजम्॥ ४४॥

तथा—

कृषिगौरक्ष्य-वाणिज्यम्	=खेती गोपालन और क्रयविक्रय-रूप सत्य-व्यवहार† (ये)	वैश्यकर्म स्वभावजम्	=वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं (और)
		परिचर्यात्मकम्	=सब वर्णोंकी सेवा करना

*अर्थात् निःस्वार्थभावसे सबका हित सोचकर शास्त्राज्ञानुसार शासनद्वारा प्रेमके सहित पुत्रतुल्य प्रजाको पालन करनेका भाव।

†वस्तुओंके खरीदने और बेचनेमें तौल नाप और गिनती आदिसे कम देना अथवा अधिक लेना एवं वस्तुको बदलकर या एक वस्तुमें दूसरी (खराब) वस्तु मिलाकर दे देना अथवा (अच्छी) ले लेना तथा नफा आढ़त और दलाली ठहराकर उससे अधिक दाम लेना या कम देना तथा झूठ कपट चोरी और जबरदस्तीसे अथवा अन्य किसी प्रकारसे दूसरेके हकको ग्रहण कर लेना इत्यादि

(यह)
शूद्रस्य =शूद्रका
अपि =भी
स्वभावजम्=स्वाभाविक
कर्म =कर्म है

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥

स्वे, स्वे, कर्मणि, अभिरत, ससिद्धिम्, लभते, नर,
स्वकर्मनिरत, सिद्धिम्, यथा, विन्दति, तत्, शृणु ॥ ४५ ॥

एवं इस—

स्वे =अपने
स्वे =अपने
(स्वाभाविक)
कर्मणि =कर्ममें
अभिरत =लगा हुआ
नर: =मनुष्य
ससिद्धिम् = { भगवत्-प्राप्तिरूप परमसिद्धिको
लभते =प्राप्त होता है
(परन्तु)
यथा =जिस प्रकारसे
स्वकर्मनिरत = { अपने स्वाभाविक कर्ममें लगा हुआ मनुष्य
सिद्धिम् =परमसिद्धिको
विन्दति =प्राप्त होता है
तत् =उस विधिको
(तू मेरेसे)
शृणु =सुन

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

दोषोंसे रहित जो सत्यतापूर्वक पवित्र वस्तुओंका व्यापार है उसका नाम सत्य-व्यवहार है।

यत, प्रवृत्ति, भूतानाम्, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्,
स्वकर्मणा, तम्, अभ्यर्च्य, सिद्धिम्, विन्दति, मानव ॥४६॥

हे अर्जुन-

यत	=जिस परमात्मासे	तम्	=उस परमेश्वरको
भूतानाम्	=सर्व भूतोंकी	स्वकर्मणा	=अपने स्वाभाविक कर्मद्वारा
प्रवृत्ति	=उत्पत्ति हुई है (और)	अभ्यर्च्य	=पूजकर†
येन	=जिससे	मानव	=मनुष्य
इदम्	=यह	सिद्धिम्	=परमसिद्धिको
सर्वम्	=सर्व (जगत्)	विन्दति	=प्राप्त होता है
ततम्	=व्याप्त है*		

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥

श्रेयान्, स्वधर्म, विगुण, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्,
स्वभावनियतम्, कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम् ॥४७॥

---

* जैसे बर्फ जलसे व्याप्त है, वैसे ही संपूर्ण संसार सच्चिदानन्दघन परमात्मासे व्याप्त है।

†जैसे पतिव्रता स्त्री पतिको ही सर्वस्व समझकर पतिका चिन्तन करती हुई पतिकी आज्ञानुसार पतिके ही लिये मन वाणी शरीरसे कर्म करती है वैसे ही परमेश्वरको ही सर्वस्व समझकर परमेश्वरका चिन्तन करते हुए परमेश्वरकी आज्ञाके अनुसार मन वाणी और शरीरसे परमेश्वरके ही लिये स्वाभाविक कर्तव्य-कर्मका आचरण करना कर्मद्वारा परमेश्वरको पूजना है।

इसलिये–

स्वनुष्ठितात् = अच्छी प्रकार आचरण किये हुए
परधर्मात् = दूसरेके धर्मसे
विगुण = गुणरहित
(अपि) = भी
स्वधर्मः = अपना धर्म
श्रेयान् = श्रेष्ठ है
(यस्मात्) = क्योंकि
स्वभावनियतम् = स्वभावसे नियत किये हुए
कर्म = स्वधर्मरूप कर्मको
कुर्वन् = करता हुआ (मनुष्य)
किल्बिषम् = पापको
न = नहीं
आप्नोति = प्राप्त होता

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः॥

सहजम्, कर्म, कौन्तेय, सदोषम्, अपि, न, त्यजेत्,
सर्वारम्भाः, हि, दोषेण, धूमेन, अग्निः, इव, आवृताः ॥४८॥

अन्वय–

कौन्तेय = हे कुन्तीपुत्र
सदोषम् = दोषयुक्त
अपि = भी
सहजम् = स्वाभाविक*
कर्म = कर्मको
न = नहीं

---

* प्रकृतिके अनुसार शास्त्रविधिसे नियत किये हुए जो वर्णाश्रमके धर्म और सामान्य धर्मरूप स्वाभाविक कर्म हैं उनको ही यहां 'स्वधर्म' 'सहज कर्म' 'स्वकर्म' 'नियत कर्म' 'स्वभावज कर्म' 'स्वभावनियत कर्म' इत्यादि नामोंसे कहा है।

त्यक्तुम्	=त्यागना चाहिये	सर्वारम्भाः	=सब ही कर्म
हि	=क्योंकि		(किसी न किसी)
धूमेन	=धूएंसे		
अग्निः	=अग्निके	दोषेण	=दोषसे
इव	=सदृश	आवृताः	=आवृत हैं

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥

असक्तबुद्धिः, सर्वत्र, जितात्मा, विगतस्पृहः,
नैष्कर्म्यसिद्धिम्, परमाम्, संन्यासेन, अधिगच्छति ॥४९॥

तथा हे अर्जुन—

सर्वत्र	=सर्वत्र	संन्यासेन	=सांख्ययोगके द्वारा (भी)
असक्त-बुद्धिः	=आसक्तिरहित बुद्धिवाला	परमाम्	=परम
विगत-स्पृहः	=स्पृहारहित (और)	नैष्कर्म्य-सिद्धिम्	=नैष्कर्म्य सिद्धिको
जितात्मा	=जीते हुए अन्तःकरणवाला पुरुष	अधिगच्छति	=प्राप्त होता है

अर्थात् क्रियारहित शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्माकी प्राप्तिरूप परमसिद्धिको प्राप्त होता है ।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥

सिद्धिम्, प्राप्त, यथा, ब्रह्म, तथा, आप्नोति, निबोध, मे,
समासेन, एव, कौन्तेय, निष्ठा, ज्ञानस्य, या, परा ॥५०॥

इसलिये—

कौन्तेय = हे कुन्तीपुत्र
सिद्धिम् = अन्तःकरणकी शुद्धिरूप सिद्धिको
प्राप्त = प्राप्त हुआ पुरुष
यथा = जैसे
(सांख्ययोगके द्वारा)
ब्रह्म = सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको
आप्नोति = प्राप्त होता है
तथा = तथा
या = जो
ज्ञानस्य = तत्त्वज्ञानकी
परा = परा
निष्ठा = निष्ठा है
(तत्) = उसको
एव = भी (तू)
मे = मेरेसे
समासेन = संक्षेपसे
निबोध = जान

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो
धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा
रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥५१॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥

बुद्ध्या, विशुद्धया, युक्त, धृत्या, आत्मानम्, नियम्य, च,
शब्दादीन्, विषयान्, त्यक्त्वा, रागद्वेषौ, व्युदस्य, च ॥५१॥

विविक्तसेवी, लघ्वाशी, यतवाक्कायमानस, ध्यानयोगपर, नित्यम्, वैराग्यम्, समुपाश्रित ॥५२॥

हे अर्जुन—

विशुद्धया	=विशुद्ध	नित्यम्	=निरन्तर
बुद्ध्या	=बुद्धिसे	ध्यान-योगपर	=ध्यानयोगके परायण हुआ
युक्त	=युक्त	धृत्या	=सात्त्विक धारणासे†
विविक्तसेवी	=एकान्त और शुद्ध देशका सेवन करनेवाला (तथा)	आत्मानम्	=अन्तःकरणको
		नियम्य	=वशमें करके
लघ्वाशी	=मिताहारी*	च	=तथा
यतवाक्काय-मानस	=जीते हुए मन वाणी शरीर-वाला (और)	शब्दादीन्	=शब्दादिक
		विषयान्	=विषयोंको
		त्यक्त्वा	=त्यागकर
वैराग्यम्	=दृढ वैराग्यको	च	=और
समुपाश्रित	=भली प्रकार प्राप्त हुआ पुरुष	रागद्वेषौ	=रागद्वेषोंको
		व्युदस्य	=नष्टकरके

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

* हल्का और अल्प आहार करनेवाला।

† गीता अध्याय १८ श्लोक ३३ में जिसका विस्तार है।

अहङ्कारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, परिग्रहम्,
विमुच्य, निर्मम, शान्त, ब्रह्मभूयाय, कल्पते ॥५३॥

तथा–

अहङ्कारम्	=अहङ्कार		(और)
बलम्	=बल	शान्त	=शान्त अन्तःकरण हुआ
दर्पम्	=घमण्ड		
कामम्	=काम		
क्रोधम्	=क्रोध (और)	ब्रह्मभूयाय	=सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभाव होनेके लिये
परिग्रहम्	=संग्रहको		
विमुच्य	=त्यागकर		
निर्मम	=ममतारहित	कल्पते	=योग्य होता है

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

ब्रह्मभूत, प्रसन्नात्मा, न, शोचति, न, काङ्क्षति,
सम, सर्वेषु, भूतेषु, मद्भक्तिम्, लभते, पराम् ॥५४॥

फिर वह–

ब्रह्मभूत	=सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित हुआ	न	=न (तो किसी वस्तुके लिये)
		शोचति	=शोक करता है (और)
प्रसन्नात्मा	=प्रसन्नचित्तवाला पुरुष	न	=न (किसीकी)

काङ्क्षति	= आकाङ्क्षा (ही) करता है	सम	= समभाव हुआ*
(एव)		पराम् मद्भक्तिम्	= मेरी परा-भक्तिको†
सर्वेषु	= सब		
भूतेषु	= भूतोंमें	लभते	= प्राप्त होता है

भक्त्या मामभिजानाति
यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा
विशते तदनन्तरम् ॥ ५५ ॥

भक्त्या, माम्, अभिजानाति, यावान्, य, च, अस्मि, तत्त्वत, तत, माम्, तत्त्वत, ज्ञात्वा, विशते, तदनन्तरम् ॥५५॥

और उस-

भक्त्या	= पराभक्तिके द्वारा	(अहम्)	(कि) = मैं
माम्	= मेरेको	य	= जो
तत्त्वत	= तत्त्वसे	च	= और
अभिजानाति	= भली प्रकार जानता है	यावान्	= जिस प्रभाववाला

---

* गीता अध्याय ६ श्लोक २९ में देखना चाहिये।

† जो तत्त्वज्ञानकी पराकाष्ठा है तथा जिसको प्राप्त होकर और कुछ जानना बाकी नहीं रहता वही यहां 'पराभक्ति' 'ज्ञानकी परानिष्ठा' 'परमनैष्कर्म्यसिद्धि' और 'परमसिद्धि' इत्यादि नामोंसे कही गई है।

अस्मि	= हूं (तथा)	ज्ञात्वा	= जानकर
ततः	= उस भक्तिसे	तदनन्तरम्	= तत्काल (ही)
माम्	= मेरेको	विशते	= { मेरेमें प्रवेश हो जाता है-
तत्त्वतः	= तत्त्वसे		

अर्थात् अनन्यभावसे मेरेको प्राप्त हो जाता है फिर उसकी दृष्टिमें मुझ वासुदेवके सिवाय और कुछ भी नहीं रहता ।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥

सर्वकर्माणि, अपि, सदा, कुर्वाणः, मद्व्यपाश्रयः, मत्प्रसादात्, अवाप्नोति, शाश्वतम्, पदम्, अव्ययम् ॥५६॥

और-

मद्व्यपाश्रयः	= { मेरे परायण हुआ निष्काम कर्मयोगी (तो)	अपि	= भी
		मत्प्रसादात्	= मेरी कृपासे
		शाश्वतम्	= सनातन
सर्वकर्माणि	= { सम्पूर्ण कर्मोंको	अव्ययम्	= अविनाशी
		पदम्	= परमपदको
सदा	= सदा	अवाप्नोति	= { प्राप्त हो जाता है
कुर्वाणः	= करता हुआ		

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥

चेतसा, सर्वकर्माणि, मयि, सन्यस्य, मत्परः,
बुद्धियोगम्, उपाश्रित्य, मच्चित्तः, सततम्, भव ॥५७॥

इसलिये हे अर्जुन ! तू-

सर्वकर्माणि = सब कर्मोंको	बुद्धियोगम् = समत्वबुद्धिरूप निष्काम कर्मयोगको
चेतसा = मनसे	उपाश्रित्य = अवलम्बन-करके
मयि = मेरेमें	सततम् = निरन्तर
सन्यस्य = अर्पणकरके*	मच्चित्तः = मेरेमें चित्तवाला
मत्परः = मेरे परायण हुआ	भव = हो

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥

मच्चित्त, सर्वदुर्गाणि, मत्प्रसादात्, तरिष्यसि,
अथ, चेत्, त्वम्, अहंकारात्, न, श्रोष्यसि, विनङ्क्ष्यसि ॥५८॥

इस प्रकार-

त्वम् = तू	सर्वदुर्गाणि = जन्म मृत्यु आदि सब संकटोंको
मच्चित्त = मेरेमें निरन्तर मनवाला हुआ	
मत्प्रसादात् = मेरी कृपासे	

* गीता अध्याय ९ श्लोक २७ में जिसकी विधि कही है ।

(अनायास ही)
तरिष्यसि = तर जायगा
अथ = और
चेत् = यदि
अहङ्कारात् = अहङ्कारके कारण
(मेरे वचनोंको)
न = नहीं
श्रोष्यसि = सुनेगा (तो)
विनङ्क्ष्यसि = नष्ट हो जायगा अर्थात् परमार्थसे भ्रष्ट हो जायगा

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति॥

यत्, अहङ्कारम्, आश्रित्य, न, योत्स्ये, इति, मन्यसे, मिथ्या, एष, व्यवसाय, ते, प्रकृति, त्वाम्, नियोक्ष्यति ॥५९॥

और—

यत् = जो (तू)
अहङ्कारम् = अहङ्कारको
आश्रित्य = अवलम्बन-करके
इति = ऐसे
मन्यसे = मानता है
(कि)
न योत्स्ये = मैं युद्ध नहीं करूंगा (तो)
एष = यह
ते = तेरा
व्यवसाय = निश्चय
मिथ्या = मिथ्या है
(यत) = क्योंकि
प्रकृति = क्षत्रियपनका स्वभाव
त्वाम् = तेरेको
नियोक्ष्यति = जबरदस्ती युद्धमें लगा देगा

स्वभावजेन कौन्तेय
निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्
करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥६०॥

स्वभावजेन, कौन्तेय, निबद्ध, स्वेन, कर्मणा, कर्तुम्, न, इच्छसि, यत्, मोहात्, करिष्यसि, अवश, अपि, तत् ॥६०॥

और--

कौन्तेय	=हे अर्जुन	अपि	=भी
यत्	=जिस कर्मको	स्वेन	=अपने
	(तू)		(पूर्वकृत)
मोहात्	=मोहसे	स्वभावजेन	=स्वाभाविक
न	=नहीं	कर्मणा	=कर्मसे
कर्तुम्	=करना	निबद्ध	=बधा हुआ
इच्छसि	=चाहता है	अवश	=परवश होकर
तत्	=उसको	करिष्यसि	=करेगा

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

ईश्वर, सर्वभूतानाम्, हृद्देशे, अर्जुन, तिष्ठति, भ्रामयन्, सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि, मायया ॥६१॥

क्योंकि—

अर्जुन	=हे अर्जुन		(उनके कर्मोंके अनुसार)
यन्त्रारूढानि	=शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए	भ्रामयन्	=भ्रमाता हुआ
सर्वभूतानि	=संपूर्ण प्राणियोंको	सर्वभूतानाम्	=सब भूत प्राणियोंके
ईश्वर	=अन्तर्यामी परमेश्वर	हृद्देशे	=हृदयमें
मायया	=अपनी मायासे	तिष्ठति	=स्थित है

तमेव शरणं गच्छ
सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं
स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥६२॥

तम्, एव, शरणम्, गच्छ, सर्वभावेन, भारत, तत्प्रसादात्, पराम्, शान्तिम्, स्थानम्, प्राप्स्यसि, शाश्वतम् ॥६२॥

इसलिये—

भारत	=हे भारत	एव	=ही
सर्वभावेन	=सब प्रकारसे	शरणम्	=अनन्यशरणको*
तम्	=उस परमेश्वरकी	गच्छ	=प्राप्त हो

* लज्जा भय मान बड़ाई और आसक्तिको त्यागकर एवं शरीर और संसारमें अहंता ममतासे रहित होकर केवल एक परमात्माको ही परम आश्रय परम गति और सर्वस्व समझना तथा अनन्य भावसे अतिशय श्रद्धा भक्ति और प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवान्के नाम गुण प्रभाव और स्वरूपका चिन्तन करते रहना एवं

तत्प्रसादात् = { उस परमात्माकी कृपासे (ही) | शान्तिम् = शान्तिको (और) | शाश्वतम् = सनातन | स्थानम् = परमधामको | प्राप्स्यसि = प्राप्त होगा

पराम् = परम

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥

इति, ते, ज्ञानम्, आख्यातम्, गुह्यात्, गुह्यतरम्, मया, विमृश्य, एतत्, अशेषेण, यथा, इच्छसि, तथा, कुरु॥६३॥

इति = इस प्रकार (यह)
गुह्यात् = गोपनीयसे (भी)
गुह्यतरम् = अति गोपनीय
ज्ञानम् = ज्ञान
मया = मैंने
ते = तेरे लिये
आख्यातम् = कहा है
एतत् = { इस रहस्य-युक्त ज्ञानको
अशेषेण = सपूर्णतासे
विमृश्य = { अच्छी प्रकार विचारके
(फिर तू)
यथा = जैसे
इच्छसि = चाहता है
तथा = वैसे ही
कुरु = कर

अर्थात् जैसी तेरी इच्छा हो वैसे ही कर।

भगवान्‌का भजन स्मरण रखते हुए ही उनकी आज्ञानुसार कर्तव्य कर्मोंका निःस्वार्थभावसे केवल परमेश्वरके लिये आचरण करना यह "सब प्रकारसे परमात्माके अनन्यशरण" होना है।

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥

सर्वगुह्यतमम्, भूय, शृणु, मे, परमम्, वच, इष्ट, असि, मे, दृढम्, इति, तत, वक्ष्यामि, ते, हितम् ॥६४॥

इतना कहनेपर भी अर्जुनका कोई उत्तर नहीं मिलनेके कारण श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले कि हे अर्जुन–

सर्वगुह्यतमम्	= संपूर्ण गोपनीयोंसे भी अति गोपनीय	दृढम्	= अतिशय
		इष्ट.	= प्रिय
		असि	= है
मे	= मेरे	तत	= इससे
परमम्	= परम (रहस्ययुक्त)	इति	= यह
वच	= वचनको (तू)	हितम्	= परम हित-कारक वचन (मैं)
भूय.	= फिर (भी)		
शृणु	= सुन (क्योंकि तू)	ते	= तेरे लिये
मे	= मेरा	वक्ष्यामि	= कहूंगा

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

मन्मना, भव, मद्भक्त., मद्याजी, माम्, नमस्कुरु, माम्, एव, एष्यसि, सत्यम्, ते, प्रतिजाने, प्रिय, असि, मे ॥६५॥

हे अर्जुन ! तू-

मन्मना भव = { केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामें ही अनन्य प्रेमसे नित्य निरन्तर अचल मनवाला हो (और)

मद्भक्त (भव) = { मुझ परमेश्वरको ही अतिशय श्रद्धाभक्तिसहित निष्कामभावसे नाम गुण और प्रभावके श्रवण कीर्तन मनन और पठनपाठनद्वारा निरन्तर भजनेवाला हो (तथा)

मद्याजी (भव) = { मेरा (शङ्ख चक्र गदा पद्म और किरीट कुण्डल आदि भूषणोंसे युक्त पीताम्बर वनमाला और कौस्तुभमणिधारी विष्णुका) मन वाणी और शरीरके द्वारा सर्वस्व अर्पणकरके अतिशय श्रद्धा भक्ति और प्रेमसे विह्वलतापूर्वक पूजन करनेवाला हो (और)

माम् = { मुझ सर्वशक्तिमान् विभूति बल ऐश्वर्य माधुर्य गम्भीरता उदारता वात्सल्य और सुहृदता आदि गुणोंसे सम्पन्न सबके आश्रयरूप वासुदेवको

नमस्कुरु = { विनयभावपूर्वक भक्तिसहित साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर

(एवम्) = ऐसा करनेसे (तू)

माम् = मेरेको

एव = ही
एष्यसि = प्राप्त होगा
(यह मैं)
ते = तेरे लिये
सत्यम् = सत्य
प्रतिजाने = प्रतिज्ञा करता हूं
(यत) = क्योंकि
(तू)
मे = मेरा
प्रियः = अत्यन्त प्रिय
(सखा)
असि = है

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

सर्वधर्मान्, परित्यज्य, माम्, एकम्, शरणम्, व्रज,
अहम्, त्वा, सर्वपापेभ्य, मोक्षयिष्यामि, मा, शुच ॥६६॥

इसलिये-

सर्वधर्मान् = सर्व धर्मोंको अर्थात् संपूर्ण कर्मोंके आश्रयको
परित्यज्य = त्यागकर
एकम् = केवल एक
माम् = मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्माकी ही
शरणम् = अनन्य-शरणको*
व्रज = प्राप्त हो
अहम् = मैं
त्वा = तेरेको
सर्वपापेभ्य = संपूर्ण पापोंसे
मोक्षयिष्यामि = मुक्त कर दूंगा
मा शुच = तू शोक मत कर

* इसी अध्यायमें श्लोक ६२ की टिप्पणीमें अनन्य-शरणका भाव देखना चाहिये ।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥

इदम्, ते, न, अतपस्काय, न, अभक्ताय, कदाचन,
न, च, अशुश्रूषवे, वाच्यम्, न, च, माम्, य, अभ्यसूयति ॥६७॥

हे अर्जुन! इस प्रकार—

ते = तेरे (हितके लिये कहे हुए)
इदम् = इस गीतारूप परम रहस्यको
कदाचन = किसी कालमें भी
न = न (तो)
अतपस्काय = तपरहित मनुष्यके प्रति
वाच्यम् = कहना चाहिये
च = और
न = न
अभक्ताय = भक्ति-* रहितके प्रति
च = तथा
न = न
अशुश्रूषवे = बिना सुननेकी इच्छावालेके ही प्रति
(वाच्यम्) = कहना चाहिये
(एव)
य = जो
माम् = मेरी
अभ्यसूयति = निन्दा करता है
(तस्मै) = उसके प्रति भी
न = नहीं कहना चाहिये—

परन्तु जिनमे यह सब दोष नहीं हों ऐसे भक्तोंके प्रति प्रेमपूर्वक उत्साहके सहित कहना चाहिये।

---

* वेद शास्त्र और परमेश्वर तथा महात्मा और गुरुजनोंमें श्रद्धा प्रेम और पूज्यभावका नाम भक्ति है।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥

य, इमम्, परमम्, गुह्यम्, मद्भक्तेषु, अभिधास्यति,
भक्तिम्, मयि, पराम्, कृत्वा, माम्, एव, एष्यति, असंशय.॥६८॥

क्योंकि-

य	=जो पुरुष	मद्भक्तेषु	=मेरे भक्तोंमें
मयि	=मेरेमें	अभिधास्यति	=कहेगा*
पराम्	=परम	(स॰)	=वह
भक्तिम्	=प्रेम	असंशय	=निःसन्देह
कृत्वा	=करके	माम्	=मेरेको
इमम्	=इस	एव	=ही
परमम्	=परम	एष्यति	=प्राप्त होगा
गुह्यम्	={रहस्ययुक्त गीता-शास्त्रको		

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

न, च, तस्मात्, मनुष्येषु, कश्चित्, मे, प्रियकृत्तम,
भविता, न, च, मे, तस्मात्, अन्य॰, प्रियतर॰, भुवि॥६९॥

च	=और	न	=न (तो)

* अर्थात् निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक मेरे भक्तोंको पढ़ावेगा या अर्थकी व्याख्याद्वारा इसका प्रचार करेगा।

तस्मात्	=उससे बढ़कर	च	=और
मे	=मेरा	न	=न
प्रियकृत्तमः	=अतिशय प्रिय कार्य करनेवाला	तस्मात्	=उससे बढ़कर
		मे	=मेरा
		प्रियतर.	=अत्यन्त प्यारा
मनुष्येषु	=मनुष्योंमें	भुवि	=पृथिवीमें
कश्चित्	=कोई	अन्य	=दूसरा (कोई)
(अस्ति)	=है	भविता	=होवेगा

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥

अध्येष्यते, च, य., इमम्, धर्म्यम्, संवादम्, आवयो,
ज्ञानयज्ञेन, तेन, अहम्, इष्ट, स्याम्, इति, मे, मति ॥७०॥

च	=तथा (हे अर्जुन)	तेन	=उसके द्वारा
य	=जो (पुरुष)	अहम्	=मैं
इमम्	=इस	ज्ञानयज्ञेन	=ज्ञानयज्ञसे*
धर्म्यम्	=धर्ममय	इष्ट	=पूजित
आवयोः	=हम दोनोंके	स्याम्	=होऊगा
सवादम्	=सवादरूप गीताशास्त्रको	इति	=ऐसा
अध्येष्यते	=पढेगा अर्थात् नित्य पाठ करेगा	मे	=मेरा
		मति	=मत है

*गीता अध्याय ४ श्लोक ३३ का अर्थ देखना चाहिये।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्

श्रद्धावान्, अनसूय, च, शृणुयात्, अपि, य, नरः, स, अपि, मुक्त, शुभान्, लोकान्, प्राप्नुयात्, पुण्यकर्मणाम् ॥७१॥

तथा–

य	=जो	स	=वह
नरः	=पुरुष	अपि	=भी
श्रद्धावान्	=श्रद्धायुक्त	मुक्त	=पापोंसे मुक्त हुआ,
च	=और		
अनसूय	=दोषदृष्टिसे रहित हुआ	पुण्यकर्मणाम्	=उत्तम कर्म करनेवालोंके
	(इस गीताशास्त्रका)	शुभान्	=श्रेष्ठ
		लोकान्	=लोकोंको
शृणुयात् अपि	=श्रवणमात्र भी करेगा	प्राप्नुयात्	=प्राप्त होवेगा

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥

कच्चित्, एतत्, श्रुतम्, पार्थ, त्वया, एकाग्रेण, चेतसा, कच्चित्, अज्ञानसमोहः, प्रनष्ट, ते, धनंजय ॥७२॥

इस प्रकार गीताका माहात्म्य कहकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने अर्जुनसे पूछा–

पार्थ	=हे पार्थ		(और)
कच्चित्	=क्या	धनंजय	=हे धनंजय
एतत्	=यह (मेरा वचन)	कच्चित्	=क्या
त्वया	=तैंने	ते	=तेरा
एकाग्रेण	=एकाग्र	अज्ञान-संमोहः	=अज्ञानसे उत्पन्न हुआ मोह
चेतसा	=चित्तसे		
श्रुतम्	=श्रवण किया	प्रनष्टः	=नष्ट हुआ

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

नष्ट, मोह, स्मृति, लब्धा, त्वत्प्रसादात्, मया, अच्युत, स्थित, अस्मि, गतसन्देहः, करिष्ये, वचनम्, तव ॥७३॥

इस प्रकार भगवान्‌के पूछनेपर अर्जुन बोला—

अच्युत	=हे अच्युत		(इसलिये मैं)
त्वत्प्रसादात्	=आपकी कृपासे	गतसन्देहः	=संशयरहित हुआ
(मम)	=मेरा		
मोहः	=मोह	स्थितः	=स्थित
नष्टः	=नष्ट हो गया है (और)	अस्मि	=हूं
			(और)
मया	=मुझे	तव	=आपकी
स्मृतिः	=स्मृति	वचनम्	=आज्ञा
लब्धा	=प्राप्त हुई है	करिष्ये	=पालन करूंगा

सजय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥

इति, अहम्, वासुदेवस्य, पार्थस्य, च, महात्मन,
सवादम्, इमम्, अश्रौपम्, अद्भुतम्, रोमहर्पणम् ॥७४॥

इसके उपरान्त सजय बोला हे राजन्–

इति =इस प्रकार
अहम् =मैंने
वासुदेवस्य =श्रीवासुदेवके
च =और
महात्मन =महात्मा
पार्थस्य =अर्जुनके
इमम् =इस
अद्भुतम् =अद्भुत रहस्ययुक्त
(और)
रोमहर्पणम् =रोमाञ्चकारक
सवादम् =सवादको
अश्रौपम् =सुना

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥

व्यासप्रसादात्, श्रुतवान्, एतत्, गुह्यम्, अहम्, परम्,
योगम्, योगेश्वरात्, कृष्णात्, साक्षात्, कथयत, स्वयम् ॥७५॥

कैसे कि–

व्यासप्रसादात् =श्रीव्यासजीकी कृपासे दिव्य दृष्टिद्वारा
अहम् =मैंने
एतत् =इस
परम् =परम
(रहस्ययुक्त)
गुह्यम् =गोपनीय

योगम्	=योगको	योगेश्वरात्	=योगेश्वर
साक्षात्	=साक्षात्	कृष्णात्	= श्रीकृष्ण भगवान्से
कथयत	=कहते हुए		
स्वयम्	=स्वयम्	श्रुतवान्	=सुना है

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥

राजन्, सस्मृत्य, सस्मृत्य, सवादम्, इमम्, अद्भुतम्,
केशवार्जुनयो॰, पुण्यम्, हृष्यामि, च, मुहुर्मुहु ॥७६॥

इसलिये—

राजन्	=हे राजन्	च	=और
केशवार्जुनयो॰	= श्रीकृष्ण भगवान् और अर्जुनके	अद्भुतम्	=अद्भुत
		सवादम्	=सवादको
इमम्	= इस (रहस्ययुक्त)	सस्मृत्य सस्मृत्य	= पुन॰ पुन स्मरणकरके(मैं)
पुण्यम्	= कल्याण-कारक	मुहुर्मुहुः	=बारम्बार
		हृष्यामि	=हर्षित होता हूं

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥

तत्, च, संस्मृत्य, सस्मृत्य, रूपम्, अति, अद्भुतम्, हरे॰,
विस्मय॰, मे, महान्, राजन्, हृष्यामि, च, पुन॰, पुन॰ ॥७७॥

तथा—

राजन्	=हे राजन्	हरेः	=श्रीहरिके*

* जिसका स्मरण करनेसे पापोंका नाश होता है उसका नाम हरि है ।

तत्	=उस	महान्	=महान्
अति	=अति	विस्मय	=आश्चर्य (होता है)
अद्भुतम्	=अद्भुत	च	=और
रूपम्	=रूपको	(अहम्)	=मैं
च	=भी	पुनः पुनः	=वारम्वार
संस्मृत्य संस्मृत्य	=पुनः पुनः स्मरणकरके	हृष्यामि	=हर्षित होता हूं
मे	=मेरे (चित्तमें)		

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

यत्र, योगेश्वर, कृष्ण, यत्र, पार्थ, धनुर्धर,
तत्र, श्री, विजय, भूति, ध्रुवा, नीति, मति, मम ॥७८॥

हे राजन् ! विशेष क्या कहूं—

यत्र	=जहां	तत्र	=वहींपर
योगेश्वर	=योगेश्वर	श्री	=श्री
कृष्ण	=श्रीकृष्ण भगवान् हैं (और)	विजय	=विजय
		भूति	=विभूति (और)
		ध्रुवा	=अचल
यत्र	=जहां	नीति	=नीति है
धनुर्धरः	=गाण्डीव धनुषधारी	(इति)	=ऐसा
		मम	=मेरा
पार्थ	=अर्जुन है	मति	=मत है

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यास-
योगो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा,
योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके
संवादमें "मोक्षसंन्यासयोग" नामक
अठारहवां अध्याय ॥१८॥

"श्रीमद्भगवद्गीता" यह एक परम रहस्यका विषय है। इसको परम कृपालु श्रीकृष्णभगवान्‌ने अर्जुनको निमित्त-करके सभी प्राणियोंके हितके लिये कहा है। परन्तु इसके प्रभावको वे ही पुरुष जान सकते हैं कि जो भगवान्‌के शरण होकर श्रद्धा, भक्तिसहित इसका अभ्यास करते हैं। इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंको उचित है कि जितना शीघ्र हो सके अज्ञाननिद्रासे चेतकर एवं अपना मुख्य कर्तव्य समझकर श्रद्धा, भक्तिसहित सदा इसका श्रवण मनन और पठनपाठनद्वारा अभ्यास करते हुए भगवान्‌की आज्ञानुसार साधनमें लग जाय। क्योंकि जो मनुष्य श्रद्धा, भक्तिसहित इसका मर्म जाननेके लिये इसके अन्दर प्रवेश-करके सदा इसका मनन करते हैं, एवं भगवत्-आज्ञानुसार साधन करनेमें तत्पर रहते हैं, उनके अन्तःकरणमें प्रतिदिन नये नये सद्भाव उत्पन्न होते हैं। और वे शुद्धान्तःकरण हुए शीघ्र ही परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

श्रीपरमात्मने नम

त्यागसे भगवत्-प्राप्ति

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रय ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति स ॥
न हि देहभृता शक्य त्यक्तु कर्माण्यशेषत ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव
त्वमेव सर्व मम देवदेव ॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

त्यागसे भगवत्-प्राप्ति

गृहस्थाश्रममें रहता हुआ भी मनुष्य त्यागके द्वारा परमात्माको प्राप्त कर सकता है। परमात्माको प्राप्त करनेके लिये "त्याग" ही मुख्य साधन है। अतएव सात श्रेणियोंमें विभक्त करके त्यागके लक्षण संक्षेपमें लिखे जाते हैं।

(१) निषिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग।

चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, जबरदस्ती, हिंसा, अभक्ष्य-भोजन और प्रमाद आदि शास्त्रविरुद्ध नीच कर्मोंको मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी न करना। यह पहिली श्रेणीका त्याग है।

(२) काम्यकर्मोंका त्याग।

स्त्री, पुत्र और धन आदि प्रिय वस्तुओंकी प्राप्तिके उद्देश्यसे एवं रोग संकटादिकी निवृत्तिके उद्देश्यसे किये जाने-वाले यज्ञ, दान, तप और उपासनादि सकाम कर्मोंको अपने स्वार्थके लिये न करना*। यह दूसरी श्रेणीका त्याग है।

---

* यदि कोई लौकिक अथवा शास्त्रीय ऐसा कर्म संयोगवश प्राप्त हो जाय जो कि स्वरूपसे तो सकाम हो परन्तु उसके न करनेसे किसीको कष्ट पहुंचता हो या कर्म उपासनाकी परम्परा-में किसी प्रकारकी बाधा आती हो तो स्वार्थका त्यागकरके केवल लोकसंग्रहके लिये उसका कर लेना सकाम कर्म नहीं है।

(३) तृष्णाका सर्वथा त्याग ।

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा एव स्त्री, पुत्र और धनादि जो कुछ भी अनित्य पदार्थ प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हुए हों उनके बढ़नेकी इच्छाको भगवत्-प्राप्तिमें बाधक समझकर उसका त्याग करना । यह तीसरी श्रेणीका त्याग है ।

(४) स्वार्थके लिये दूसरोंसे सेवा करानेका त्याग ।

अपने सुखके लिये किसीसे भी धनादि पदार्थोंकी अथवा सेवा करानेकी याचना करना एव बिना याचनाके दिये हुए पदार्थोंको या की हुई सेवाको स्वीकार करना तथा किसी प्रकार भी किसीसे अपना स्वार्थ सिद्ध करनेकी मनमें इच्छा रखना इत्यादि जो स्वार्थके लिये दूसरोंसे सेवा करानेके भाव हैं उन सबका त्याग करना* । यह चौथी श्रेणीका त्याग है ।

---

* यदि कोई ऐसा अवसर योग्यतासे प्राप्त हो जाय कि शरीरसवन्धी सेवा अथवा भोजनादि पदार्थोंके स्वीकार न करनेसे किसीको कष्ट पहुचता हो या लोकशिक्षामें किसी प्रकारकी बाधा आती हो तो उस अवसरपर स्वार्थका त्याग-करके केवल उनकी प्रीतिके लिये सेवादिका स्वीकार करना दोषयुक्त नहीं है । क्योंकि स्त्री, पुत्र और नौकर आदिसे की हुई सेवा एव बन्धुबान्धव और मित्र आदिद्वारा दिये हुए भोजनादि पदार्थ स्वीकार न करनेसे उनको कष्ट होना एव लोक-मर्यादामें बाधा पड़ना सम्भव है ।

(५) संपूर्ण कर्तव्य कर्मोंमें आलस्य और फलकी इच्छाका सर्वथा त्याग।

ईश्वरकी भक्ति, देवताओंका पूजन, मातापितादि गुरुजनोंकी सेवा, यज्ञ, दान, तप तथा वर्णाश्रमके अनुसार आजीविकाद्वारा गृहस्थका निर्वाह एवं शरीरसम्बन्धी खानपान इत्यादि जितने कर्तव्य कर्म हैं उन सबमें आलस्यका और सब प्रकारकी कामनाका त्याग करना।

(क) ईश्वर-भक्तिमें आलस्यका त्याग।

अपने जीवनका परम कर्तव्य मानकर परम दयालु, सबके सुहृद्, परमप्रेमी, अन्तर्यामी परमेश्वरके गुण, प्रभाव और प्रेमकी रहस्यमयी कथाका श्रवण, मनन और पठनपाठन करना तथा आलस्यरहित होकर उनके परमपुनीत नामका उत्साहपूर्वक ध्यानसहित निरन्तर जप करना।

(ख) ईश्वर-भक्तिमें कामनाका त्याग।

इस लोक और परलोकके सपूर्ण भोगोंको क्षणभङ्गुर, नाशवान् और भगवान्‌की भक्तिमें बाधक समझकर किसी भी वस्तुकी प्राप्तिके लिये न तो भगवान्‌से प्रार्थना करना और न मनमें इच्छा ही रखना। तथा किसी प्रकारका सङ्कट आ जानेपर भी उसके निवारणके लिये भगवान्‌से प्रार्थना न करना अर्थात् हृदयमें ऐसा भाव रखना कि प्राण भले ही चले जायं परन्तु इस मिथ्या जीवनके लिये विशुद्ध भक्तिमें कलङ्क लगाना उचित नहीं है। जैसे भक्त प्रह्लादने पिताद्वारा

बहुत सताये जानेपर भी अपने कष्ट निवारणके लिये भगवान्‌से प्रार्थना नहीं की।

अपना अनिष्ट करनेवालोंको भी, "भगवान् तुम्हारा बुरा करें" इत्यादि किसी प्रकारके कठोर शब्दोंसे सराप न देना और उनका अनिष्ट होनेकी मनमें इच्छा भी न रखना।

भगवान्‌की भक्तिके अभिमानमें आकर किसीको वरदानादि भी न देना, जैसे कि "भगवान् तुम्हें आरोग्य करें" "भगवान् तुम्हारा दुःख दूर करें" "भगवान् तुम्हारी आयु बढावें" इत्यादि।

पत्र-व्यवहारमें भी सकाम शब्दोंका न लिखना अर्थात् जैसे "अठे उठे श्रीठाकुरजी सहाय छे" "ठाकुरजी बिक्री चलासी" "ठाकुरजी वर्षा करसी" "ठाकुरजी आराम करसी" इत्यादि सांसारिक वस्तुओंके लिये ठाकुरजीसे प्रार्थना करनेके रूपमें सकाम शब्द मारवाड़ी समाजमें प्रायः लिखे जाते हैं वैसे न लिखकर "श्रीपरमात्मादेव आनन्दरूपसे सर्वत्र विराजमान हैं" "श्रीपरमेश्वरका भजन सार है" इत्यादि निष्काम माङ्गलिक शब्द लिखना तथा इसके सिवाय अन्य किसी प्रकारसे भी लिखने, बोलने आदिमें सकाम शब्दोंका प्रयोग न करना।

(ग) देवताओंके पूजनमें आलस्य और कामनाका त्याग।

शास्त्र-मर्यादासे अथवा लोक-मर्यादासे पूजनेके योग्य देवताओंको पूजनेका नियत समय आनेपर उनका पूजन करनेके लिये भगवान्‌की आज्ञा है एवं भगवान्‌की आज्ञाका

पालन करना परम कर्तव्य है ऐसा समझकर उत्साहपूर्वक विधिके सहित उनका पूजन करना एवं उनसे किसी प्रकार-की भी कामना न करना।

उनके पूजनके उद्देश्यसे रोकड़ बहीखाते आदिमें भी सकाम शब्द न लिखना अर्थात् जैसे मारवाडी समाजमें नये वसनेके दिन अथवा दीपमालिकाके दिन श्रीलक्ष्मीजीका पूजनकरके "श्रीलक्ष्मीजी लाभ मोकलो देसी" "भण्डार भरपूर राखसी" "ऋद्धि सिद्धि करसी" "श्रीकालीजीके आसरे" "श्रीगङ्गाजीके आसरे" इत्यादि वहुतसे सकाम शब्द लिखे जाते हैं वैसे न लिखकर "श्रीलक्ष्मीनारायणजी सब जगह आनन्दरूपसे विराजमान हैं" तथा "बहुत आनन्द और उत्साहके सहित श्रीलक्ष्मीजीका पूजन किया" इत्यादि निष्काम माङ्गलिक शब्द लिखना और नित्य रोकड नकल आदिके आरम्भ करनेमें भी उपरोक्त रीतिसे ही लिखना।

(घ) मातापितादि गुरुजनोंकी सेवामें आलस्य और कामनाका त्याग।

माता, पिता, आचार्य एवं और भी जो पूजनीय पुरुष वर्ण, आश्रम, अवस्था और गुणोंमें किसी प्रकार भी अपनेसे बड़े हों उन सबकी सब प्रकारसे नित्य सेवा करना और उनको नित्य प्रणाम करना मनुष्यका परम कर्तव्य है इस भावको हृदयमें रखते हुए आलस्यका सर्वथा त्यागकरके, निष्काम भावसे उत्साहपूर्वक भगवदाज्ञानुसार उनकी सेवा करनेमें तत्पर रहना।

(ङ) यज्ञ, दान और तप आदि शुभ कर्मोंमें आलस्य और कामनाका त्याग।

पञ्च महायज्ञादि * नित्यकर्म एवं अन्यान्य नैमित्तिक कर्मरूप यज्ञादिका करना तथा अन्न, वस्त्र, विद्या, औषध और धनादि पदार्थोंके दानद्वारा सम्पूर्ण जीवोंको यथायोग्य सुख पहुँचानेके लिये मन, वाणी और शरीरसे अपनी शक्तिके अनुसार चेष्टा करना तथा अपने धर्मका पालन करनेके लिये हर प्रकारसे कष्ट सहन करना, इत्यादि शास्त्रविहित कर्मोंमें इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण भोगोंकी कामनाका सर्वथा त्याग करके एवं अपना परम कर्तव्य मानकर श्रद्धासहित उत्साहपूर्वक भगवदाज्ञानुसार केवल भगवदर्थ ही उनका आचरण करना।

(च) आजीविकाद्वारा गृहस्थ निर्वाहके उपयुक्त कर्मोंमें आलस्य और कामनाका त्याग।

आजीविकाके कर्म जैसे वैश्यके लिये कृषि, गोरक्ष और वाणिज्यादि कहे हैं वैसे ही जो अपने-अपने वर्णाश्रमके अनुसार शास्त्रमें विधान किये गये हों उनके पालनद्वारा संसारका हित करते हुए ही गृहस्थका निर्वाह करनेके लिये भगवान्‌की आज्ञा है। इसलिये अपना कर्तव्य मानकर लाभ हानिमें समान मानते हुए सब पदार्थ

* पञ्च महायज्ञ ये हैं—देवयज्ञ (अग्निहोत्रादि), ऋषियज्ञ (वेदपाठ, सन्ध्या, गायत्री जपादि), पितृयज्ञ (तर्पण श्राद्धादि), मनुष्ययज्ञ (अतिथिसेवा) और भूतयज्ञ (बलिवैश्व।

कामनाओंका त्यागकरके उत्साहपूर्वक उपरोक्त कर्मोंका करना* ।

(छ) शरीरसम्बन्धी कर्मोंमें आलस्य और कामनाका त्याग ।

शरीरनिर्वाहके लिये शास्त्रोक्तरीतिसे भोजन, वस्त्र और औषधादिके सेवनरूप जो शरीरसम्बन्धी कर्म हैं उनमें सब प्रकारके भोगविलासोंकी कामनाका त्यागकरके एवं सुख-दुःख, लाभ-हानि और जीवन-मरण आदिको समान समझकर केवल भगवत्-प्राप्तिके लिये ही योग्यताके अनुसार उनका आचरण करना ।

पूर्वोक्त चार श्रेणियोंके त्यागसहित इस पाचवीं श्रेणीके त्यागानुसार सपूर्ण दोषोंका और सब प्रकारकी कामनाओंका नाश होकर केवल एक भगवत्-प्राप्तिकी ही तीव्र इच्छाका होना ज्ञानकी पहिली भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण समझने चाहिये ।

---

* उपरोक्त भावसे करनेवाले पुरुषके कर्म लोभसे रहित होनेके कारण उनमें किसी प्रकारका भी दोष नहीं आ सकता क्योंकि आजीविकाके कर्मोंमें लोभ ही विशेषरूपसे पाप करानेका हेतु है इसलिये मनुष्यको चाहिये कि गीता अध्याय १८ श्लोक ४४ की टिप्पणीमें जैसे वैश्यके प्रति वाणिज्यके दोषोंका त्याग करनेके लिये विस्तारपूर्वक लिखा है उसी प्रकार अपने अपने वर्ण, आश्रमके अनुसार सपूर्ण कर्मोंमें सब प्रकारके दोषोंका त्यागकरके केवल भगवान्‌की आज्ञा समझकर भगवान्‌के लिये निष्काम भावसे ही सपूर्ण कर्मोंका आचरण करे ।

(६) संसारके संपूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें ममता और आसक्तिका सर्वथा त्याग।

धन, भवन और वस्त्रादि सम्पूर्ण वस्तुएँ तथा स्त्री, पुत्र और मित्रादि सम्पूर्ण बान्धवजन एवं मान, बड़ाई और प्रतिष्ठा इत्यादि इस लोकके और परलोकके जितने विषय-भोगरूप पदार्थ हैं उन सबको क्षणभंगुर और नाशवान् होनेके कारण अनित्य समझकर उनमें ममता और आसक्तिका न रहना तथा केवल एक सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही अनन्यभावसे विशुद्ध प्रेम होनेके कारण मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाली सम्पूर्ण क्रियाओंमें और शरीरमें भी ममता और आसक्तिका सर्वथा अभाव हो जाना। यह छठी श्रेणीका त्याग है *।

उक्त छठी श्रेणीके त्यागको प्राप्त हुए पुरुषोंका संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें वैराग्य होकर केवल एक परम प्रेममय भगवान्‌में ही अनन्य प्रेम हो जाता है। इसलिये उनको

* संपूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें तृष्णा और फलकी इच्छाका त्याग तो चौथी और पाँचवीं श्रेणीके त्यागमें कहा गया, परन्तु उपर्युक्त त्यागके होनेपर भी उनमें ममता और आसक्ति शेष रह जाती है जैसे भजन, ध्यान और सत्संगादि कल्याणके साधनविषयक सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें तृष्णा और फलकी इच्छाका त्याग होनेपर भी रुचि और प्रीति साधनरूप कर्मोंमें ममता और आसक्ति रहती है। इसलिये संसारके संपूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें ममता और आसक्तिके अभावको छठी श्रेणीका त्याग कहा है।

भगवान्‌के गुण, प्रभाव और रहस्यसे भरी हुई विशुद्ध प्रेमके विषयकी कथाओंका सुनना सुनाना और मनन करना तथा एकान्त देशमें रहकर निरन्तर भगवान्‌का भजन, ध्यान और शास्त्रोंके मर्मका विचार करना ही प्रिय लगता है। विषयासक्त मनुष्योंमें रहकर हास्य, विलास, प्रमाद, निन्दा, विषयभोग और व्यर्थ वार्तादिमें अपने अमूल्य समयका एक क्षण भी बिताना अच्छा नहीं लगता। एवं उनके द्वारा संपूर्ण कर्तव्य कर्म भगवान्‌के स्वरूप और नामका मनन रहते हुए ही बिना आसक्तिके केवल भगवदर्थ होते हैं।

इस प्रकार संपूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें ममता और आसक्तिका त्याग होकर केवल एक सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही विशुद्ध प्रेमका होना ज्ञानकी दूसरी भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण समझने चाहिये।

(७) संसार, शरीर और संपूर्ण कर्मोंमें सूक्ष्म वासना और अहंभावका सर्वथा त्याग।

संसारके संपूर्ण पदार्थ मायाके कार्य होनेसे सर्वथा अनित्य हैं और एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सर्वत्र समभावसे परिपूर्ण हैं ऐसा दृढ निश्चय होकर शरीरसहित संसारके संपूर्ण पदार्थोंमें और संपूर्ण कर्मोंमें सूक्ष्म वासनाका सर्वथा अभाव हो जाना अर्थात् अन्तःकरणमें उनके चित्रोंका संस्काररूपसे भी न रहना एवं शरीरमें अहंभावका सर्वथा

अभाव होकर मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाले सपूर्ण कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका लेशमात्र भी न रहना। यह सातवीं श्रेणीका त्याग है*।

इस सातवीं श्रेणीके त्यागरूप परवैराग्यको† प्राप्त हुए पुरुषोंके अन्तःकरणकी वृत्तिया सपूर्ण ससारसे अत्यन्त उपराम हो जाती हैं। यदि किसी कालमे कोई सासारिक फुरना हो भी जाती है तो भी उसके सस्कार नहीं जमते, क्योंकि उनकी एक सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामें ही अनन्यभावसे गाढ स्थिति निरन्तर बनी रहती है।

---

* सपूर्ण ससारके पदार्थोंमे और कर्मोंमें तृष्णा और फलकी इच्छाका एव ममता और आसक्तिका सर्वथा अभाव होनेपर भी उनमें सूक्ष्म वासना और कर्तृत्व-अभिमान शेष रह जाता है इसलिये सूक्ष्म वासना और अहंभावके त्यागको सातवीं श्रेणीका त्याग कहा है।

† पूर्वोक्त छठी श्रेणीके त्यागको प्राप्त हुए पुरुषको तो विषयोंका विशेष ससर्ग होनेसे कदाचित् उनमें कुछ आसक्ति हो भी सकती है परन्तु इस सातवीं श्रेणीके त्यागी पुरुषकी विषयोंके साथ ससर्ग होनेपर भी उनमें आसक्ति नहीं हो सकती क्योंकि उसके निश्चयमें एक परमात्माके सिवाय अन्य कोई वस्तु रहती ही नहीं इसलिये इस त्यागको परवैराग्य कहा है।

इसलिये उनके अन्तःकरणमें सम्पूर्ण अवगुणोंका अभाव होकर अहिंसा १, सत्य २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अपैशुनता ५, लज्जा, अमानित्व ६, निष्कपटता, शौच ७, संतोष ८, तितिक्षा ९, सत्सङ्ग, सेवा, यज्ञ, दान, तप १०,

---

१ मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार किसीको कष्ट न देना।

२ अन्तःकरण और इन्द्रियोंके द्वारा जैसा निश्चय किया हो वैसाका वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहना।

३ चोरीका सर्वथा अभाव।

४ आठ प्रकारके मैथुनोंका अभाव।

५ किसीकी भी निन्दा न करना।

६ सत्कार, मान और पूजादिका न चाहना।

७ बाहर और भीतरकी पवित्रता (सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहारसे द्रव्यकी और उसके अन्नसे आहारकी एवं यथायोग्य बर्तावसे आचरणोंकी और जल मृत्तिकादिसे शरीरकी शुद्धिको तो बाहरकी शुद्धि कहते हैं और राग, द्वेष तथा कपटादि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका स्वच्छ और शुद्ध हो जाना, भीतरकी शुद्धि कहलाती है)।

८ तृष्णाका सर्वथा अभाव।

९ शीत, उष्ण, सुख, दुःखादि द्वन्द्वोंका सहन करना।

१० स्वधर्मपालनके लिये कष्ट सहना।

स्वाध्याय १, शम २, दम ३, विनय, आर्जव ४, दया ५, श्रद्धा ६, विवेक ७, वैराग्य ८, एकान्तवास, अपरिग्रह ९, समाधान १०, उपरामता, तेज ११, क्षमा १२, धैर्य १३,

---

१ वेद और सत्‌शास्त्रोंका अध्ययन एवं भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन।
२ मनका वशमें होना।
३ इन्द्रियोंका वशमें होना।
४ शरीर और इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता।
५ दुःखियोंमें करुणा।
६ वेद, शास्त्र, महात्मा, गुरु और परमेश्वरके वचनोंमें प्रत्यक्षके सदृश विश्वास।
७ सत्‌ और असत्‌ पदार्थका यथार्थ ज्ञान।
८ ब्रह्मलोकतकके सम्पूर्ण पदार्थोंमें आसक्तिका अत्यन्त अभाव।
९ ममत्वबुद्धिसे संग्रहका अभाव।
१० अन्तःकरणमें संशय और विक्षेपका अभाव।
११ श्रेष्ठ पुरुषोंकी उस शक्तिका नाम तेज है कि जिसके प्रभावसे विषयासक्त और नीच प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्रायः पापाचरणसे रुककर उनके कथनानुसार श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं।
१२ अपना अपराध करनेवालेको किसी प्रकार भी दण्ड देनेका भाव न रखना।
१३ भारी विपत्ति आनेपर भी अपनी स्थितिसे चलायमान न होना।

अद्रोह १, अभय २, निरहङ्कारता, शान्ति ३ और ईश्वरमें अनन्य भक्ति इत्यादि सद्गुणोंका आविर्भाव स्वभावसे ही हो जाता है।

इस प्रकार शरीरसहित सपूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें वासना और अहभावका अत्यन्त अभाव होकर एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें ही एकीभावसे नित्य निरन्तर दृढ स्थिति रहना ज्ञानकी तीसरी भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण हैं।

उपरोक्त गुणोंमेंसे कितने ही तो पहिली और दूसरी भूमिकामें ही प्राप्त हो जाते हैं परन्तु सपूर्ण गुणोंका आविर्भाव तो प्राय तीसरी भूमिकामें ही होता है क्योंकि यह सब भगवत्-प्राप्तिके अति समीप पहुंचे हुए पुरुषोंके लक्षण एव भगवत्-स्वरूपके साक्षात् ज्ञानमें हेतु हैं इसीलिये श्रीकृष्ण भगवान्‌ने प्राय इन्हीं गुणोंको श्रीगीताजीके १३ वें अध्यायमें (श्लोक ७ से ११ तक) ज्ञानके नामसे तथा १६ वें अध्यायमे (श्लोक १ से ३ तक) दैवी सपदाके नामसे कहा है।

तथा उक्त गुणोंको शास्त्रकारोंने सामान्य धर्म माना है। इसलिये मनुष्यमात्रका ही इनमें अधिकार है अतएव उपरोक्त सद्गुणोंका अपने अन्तःकरणमें आविर्भाव करनेके लिये सभीको भगवान्‌के शरण होकर विशेषरूपसे प्रयत्न करना चाहिये।

---

१ अपने साथ द्वेष रखनेवालोंमे भी द्वेषका न होना।

२ सर्वथा भयका अभाव।

३ इच्छा और वासनाओंका अत्यन्त अभाव होना और अन्तःकरणमें नित्य निरन्तर प्रसन्नताका रहना।

उपसंहार

इस लेखमें सात श्रेणियोंके त्यागद्वारा भगवत्-प्राप्तिका होना कहा गया है। उनमें पहिली ५ श्रेणियोंके त्यागतक तो ज्ञानकी प्रथम भूमिकाके लक्षण और छठी श्रेणीके त्यागतक दूसरी भूमिकाके लक्षण तथा सातवीं श्रेणीके त्यागतक तीसरी भूमिकाके लक्षण बताये गये हैं। उक्त तीसरी भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुआ पुरुष तत्काल ही सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है। फिर उसका इस क्षणभंगुर नाशवान् अनित्य संसारसे कुछ भी संबन्ध नहीं रहता, अर्थात् जैसे स्वप्नसे जगे हुए पुरुषका स्वप्नके संसारसे कुछ भी संबन्ध नहीं रहता वैसे ही अज्ञाननिद्रासे जगे हुए पुरुषका भी मायाके कार्यरूप अनित्य संसारसे कुछ भी संबन्ध नहीं रहता। यद्यपि लोक-दृष्टिमें उस ज्ञानी पुरुषके शरीरद्वारा प्रारब्धसे संपूर्ण कर्म होते हुए दिखाई देते हैं एवं उन कर्मोंद्वारा संसारमें बहुत ही लाभ पहुँचता है। क्योंकि कामना, आसक्ति और कर्तृत्व अभिमानसे रहित होनेके कारण उस महात्माके मन, वाणी और शरीरद्वारा किये हुए आचरण लोकमें प्रमाणस्वरूप समझे जाते हैं और ऐसे पुरुषोंके भावसे ही शास्त्र बनते हैं, परन्तु यह सब होते हुए भी वह सच्चिदानन्दघन वासुदेवको प्राप्त हुआ पुरुष तो इस त्रिगुणमयी मायासे सर्वथा अतीत ही है, इसलिये वह न तो गुणोंके कार्यरूप प्रकाश, प्रवृत्ति और निद्रा आदिके प्राप्त होनेपर उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होनेपर उनकी आकांक्षा ही करता है। क्योंकि सुख-दुःख,

लाभ-हानि, मान-अपमान और निन्दा-स्तुति आदिमें एव मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण आदिमें सर्वत्र उसका समभाव हो जाता है इसलिये उस महात्माको न तो किसी प्रिय वस्तुकी प्राप्ति और अप्रियकी निवृत्तिमें हर्ष होता है, न किसी अप्रियकी प्राप्ति और प्रियके वियोगमें शोक ही होता है। यदि उस धीर पुरुषका शरीर किसी कारणसे शस्त्रोंद्वारा काटा भी जाय या उसको कोई अन्य प्रकारका भारी दुःख आकर प्राप्त हो जाय तो भी वह सच्चिदानन्दघन वासुदेवमें अनन्यभावसे स्थित हुआ पुरुष उस स्थितिसे चलायमान नहीं होता। क्योंकि उसके अन्तःकरणमें सपूर्ण ससार मृगतृष्णाके जलकी भाति प्रतीत होता है और एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीका भी होनापना नहीं भासता। विशेष क्या कहा जाय, वास्तवमें उस सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषका भाव वह स्वय ही जानता है। मन, बुद्धि और इन्द्रियोंद्वारा प्रगट करनेके लिये किसीका भी सामर्थ्य नहीं है। अतएव जितना शीघ्र हो सके अज्ञाननिद्रासे चेतकर उक्त सात श्रेणियोंमें कहे हुए त्याग-द्वारा परमात्माको प्राप्त करनेके लिये सत्पुरुषोंकी शरण ग्रहण-करके उनके कथनानुसार साधन करनेमें तत्पर होना चाहिये। क्योंकि यह अति दुर्लभ मनुष्यका शरीर बहुत जन्मोंके अन्त-में परम दयालु भगवान्‌की कृपासे ही मिलता है। इसलिये नाशवान् क्षणभगुर ससारके अनित्य भोगोंको भोगनेमें अपने जीवनका अमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहिये।

शान्ति शान्ति शान्ति

गीताकी श्लोक-सूची

अध्याय	धृतराष्ट्र	सजय	अर्जुन	श्रीभगवान्	पूर्ण-सख्या
१	१	२५	२१	०	४७
२	०	३	६	६३	७२
३	०	०	३	४०	४३
४	०	०	१	४१	४२
५	०	०	१	२८	२९
६	०	०	५	४२	४७
७	०	०	०	३०	३०
८	०	०	२	२६	२८
९	०	०	०	३४	३४
१०	०	०	७	३५	४२
११	०	८	३३	१४	५५
१२	०	०	१	१९	२०
१३	०	०	०	३४	३४
१४	०	०	१	२६	२७
१५	०	०	०	२०	२०
१६	०	०	०	२४	२४
१७	०	०	१	२७	२८
१८	०	५	२	७१	७८
जोड़	१	४१	८४	५७४	७००

छन्द-विवरण

छन्दका नाम	अध्याय	श्लोकोंकी सख्या	कुल सख्या
इन्द्रवज्रा श्लोक १०	२	७, २९	२
	८	२८	१
	९	२०	१
	११	२०, २२ २७, ३०	४
	१५	५, १५	२
उपेन्द्रवज्रा श्लोक ४	११	१८, २८, २९, ४५	४
उपजाति श्लोक ३७	२	५, ६, ८, २०, २२, ७०	६
	८	९, १०, ११	३
	९	२१	१
	११	१५ १६, १७, १९, २१, २३ २४, २५, २६ ३१, ३२, ३३, ३४, ३६, ३८, ४०, ४१, ४२, ४३, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०	२४
	१५	२, ३, ४	३
विपरीतपूर्वा श्लोक ४	११	३५, ३७, ३९, ४४	४
अनुष्टुप् श्लोक ६४५		सम्पूर्ण १८ अध्यायोंमें	६४५
७००			७००

आरती

जय भगवद्गीते, जय भगवद्गीते ।
हरि-हिय-कमल-विहारिणि सुन्दर सुपुनीते ॥
कर्म-सुमर्म-प्रकाशिनि कामासक्तिहरा ।
तत्त्वज्ञान-विकाशिनि विद्या ब्रह्म परा ॥ जय०
निश्चल-भक्ति-विधायिनि निर्मल मलहारी ।
शरण-रहस्य-प्रदायिनि सब विधि सुखकारी ॥ जय०
राग-द्वेष-विदारिणि कारिणि मोद सदा ।
भव-भय-हारिणि तारिणि परमानन्दप्रदा ॥ जय०
आसुरभाव-विनाशिनि नाशिनि तम-रजनी ।
दैवी सद्गुण दायिनि हरि-रसिका सजनी ॥ जय०
समता, त्याग सिखावनि, हरि-मुखकी बानी ।
सकल शास्त्रकी स्वामिनि, श्रुतियोंकी रानी ॥ जय०
दया-सुधा बरसावनि मातु ! कृपा कीजै ।
हरि-पद-प्रेम दान कर अपनो कर लीजै ॥ जय०

ॐ

गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-सूची

१—गीता शांकरभाष्य, मू० २॥) बढ़िया जि० २॥।)

२—गीता बड़ी सटीक १।)

३—गीता बंगला ॥।)

४—गीता मझोली ॥≈), ॥।=)

५—गीता मोटे अक्षरवाली मूल्य ॥), स० ॥≡)

६—गीता गुटका, १।) की ठीक नकल, मूल्य ॥)

७—गीता मूल ।-), स० ।≡)

८—गीता भाषा ।), स० ।=)

९—श्रीपञ्चरत्नगीता सजि० ।)

१०—गीता छोटी =)॥, ≡)॥

११—गीता तथा विष्णु-सहस्रनाम (मूल छोटा टाइप) मूल्य ≡)

१२—गीता ताबीजी सजि० =)

१३—गीता मूल विष्णु-सहस्रनामसहित -)॥

१४—गीताका सूक्ष्म विषय -)।

१५—गीता दो पन्नेकी -)

१६—गीताडायरी ।-) स० ।=)

१७—ईशावास्योपनिषद् ≡)

१८—केनोपनिषद् ॥)

१९—कठोपनिषद् ॥-)

२०—प्रश्नोपनिषद् ।≈)

२१—मुण्डकोपनिषद् ।≡)

(उपनिषद्-भाष्य खण्ड १) मूल्य २।-)

२२—माण्डूक्योपनिषद् १)

२३—तैत्तिरीयोपनिषद् ॥।-)

२४—ऐतरेयोपनिषद् ।=)

(उपनिषद्-भाष्य खण्ड २) मूल्य २।=)

२५—छान्दोग्योपनिषद्
(उपनिषद्-भाष्य
खण्ड ३) मूल्य ३।।।)

२६—बृहदारण्यकोपनिषद्
(उपनिषद्-भाष्य
खण्ड ४) मूल्य ५।।)

२७—श्वेताश्वतरोपनिषद् ।।।=)

२८—श्रीमद्भागवत-महा-
पुराण (मूल गुटका)
सचित्र सजिल्द ३।।)

२९—श्रीविष्णुपुराण सटीक
सचित्र २।।), स० २।।।)

३०—श्रीकृष्णलीलादर्शन
सचित्र, मूल्य २।।)

३१—भागवतस्तुतिसंग्रह
सजिल्द, मूल्य २।)

३२—अध्यात्मरामायण
सचित्र, १।।।) स० २)

३३—श्रीतुकाराम-चरित्र
मूल्य १≋) सजि० १।

३४—भागवतरत्न प्रह्लाद
मूल्य १) सजिल्द १

३५—विनय-पत्रिका
सटीक १) सजिल्द १।

३६—गीतावली सटीक
मूल्य १) सजिल्द १।

३७—चारों धामकी झाँकी १।)

*३८—श्रीश्रीचैतन्य-
चरितावली खण्ड १
।।।=) सजिल्द १=)

३९—,, ख० २, १=) स० १।=)

४०—,, खण्ड ३, १) स० १।)

४१—,, ख० ४, ।।=) स० ।।।=)

४२—,, खण्ड ५, ।।।) स० १)

४३—तत्त्व-चिन्तामणि
भाग १, ।।=), ।।।-)

---

* पाँचों भाग अलग-अलग लेनेसे अजिल्दका ४।=) स० ५।।=) लगेगा, पर इन्हींको दो जिल्दोंमें एक साथ लेनेसे केवल ५) ही लगेगा।

७३—सुखी जीवन ||)
७४—तत्त्व-विचार |=)
७५—उपनिषदोंके चौदह रत्न—मूल्य |=)
७६—लघुसिद्धान्तकौमुदी |=)
७७—भक्त नरसिंह मेहता |=)
७८—विवेक-चूडामणि मूल्य |-) सजिल्द ||)
७९—भक्तराज हनुमान् |-)
८०—सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र |-)
८१—प्रेम-दर्शन |-)
८२—भक्त बालक |-)
८३—भक्त नारी |-)
८४—भक्त-पञ्चरत्न |-)
८५—आदर्श भक्त |-)
८६—भक्त-चन्द्रिका |-)
८७—भक्त-सप्तरत्न |-)
८८—भक्त-कुसुम |-)
८९-प्रेमी भक्त |-)
९०—प्राचीन भक्त ||)
९१—भक्त सौरभ |-)
९२—भक्त-सरोज |=)
९३—भक्त-सुमन |=)
९४—प्रेमी भक्त उद्धव ≠)
९५—महात्मा विदुर =)||
९६—भक्तराज ध्रुव ≠)
९७—कल्याण-कुञ्ज |)
९८—परमार्थ-पत्रावली भाग १ मूल्य |)
९९—परमार्थ-पत्रावली भाग २ मूल्य |)
१००—व्रजकी झाँकी |)
१०१—श्रीबदरी-केदारकी झाँकी मूल्य |)
१०२—प्रबोध-सुधाकर ≠)||
१०३—आदर्श भ्रातृ-प्रेम ≠)
१०४—मानव धर्म ≠)
१०५—साधन-पथ =)||
१०६—गीता-निबन्धावली =)||
१०७—मनन-माला =)||
१०८—प्रयाग-माहात्म्य =)||
१०९—माघ-मकर-प्रयाग-स्नान-माहात्म्य =)||

११०–अपरोक्षानुभूति =)॥
१११–शतश्लोकी सटीक =)
११२–बालशिक्षा मूल्य =)
११३–भजन-संग्रह भाग १ =)
११४– ,, भाग २ =)
११५– ,, भाग ३ =)
११६– ,, भाग ४ =)
११७– ,, भाग ५ =)
११८–नवधा भक्ति =)
११९–गोपी-प्रेम –)॥
१२०–स्त्रीधर्मप्रश्नोत्तरी –)॥
१२१–चित्रकूटकी झाँकी मूल्य –)॥
१२२–मनुस्मृति दूसरा अध्याय मूल्य –)॥
१२३–हनुमानबाहुक –)॥
१२४–ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप –)॥
१२५–नारी-धर्म –)॥
१२६–मूलरामायण –)।
१२७–ईश्वर –)।
१२८–मनको वश करनेके कुछ उपाय –)।
१२९–श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा –)।
१३०–आनन्दकी लहरें –)
१३१–ब्रह्मचर्य –)
१३२–समाजसुधार –)
१३३–वर्तमान शिक्षा –)
१३४–प्रेमभक्तिप्रकाश –)
१३५–सच्चा सुख, उसकी प्राप्तिके उपाय –)
१३६ एक सतका अनुभव –)
१३७–आचार्यके सदुपदेश –)
१३८–सात महाव्रत –)
१३९–गोविन्ददामोदर-स्तोत्र –)
१४०–श्रीभगवन्नाम –)
१४१–श्रीरामगीता)॥।
१४२–शारीरकमीमांसा-दर्शन मूल्य)॥।

१४३–विष्णुसहस्रनाम मूल मू०)॥। सजि०–)॥
१४४–हरेरामभजन २ माला मू०)॥।, १४ माला ।–), ६४ माला १)
१४५–श्रीसीतारामभजन)॥
१४६–भगवान् क्या हैं ?)॥
१४७–गीतोक्त सांख्ययोग, निष्काम कर्मयोग)॥
१४८–सत्यकी शरणसे मुक्ति मूल्य)॥
१४९–भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय मूल्य)॥
१५०–व्यापारसुधारकी आवश्यकता और व्यापारसे मुक्ति)॥
१५१–सेवाके मन्त्र)॥
१५२–गीताके श्लोकोंकी वर्णानुक्रम सूची)॥
१५३–प्रश्नोत्तरी मूल्य)॥
१५४–सन्ध्या मूल्य)॥
१५५–बलिवैश्वदेव-विधि)॥
१५६–ज्ञानयोगके अनुसार विविध साधन)॥
१५७–पातञ्जलयोग-दर्शन मूल, मूल्य)।
१५८–नारद-भक्ति-सूत्र)।
१५९–त्यागसे भगवत्-प्राप्ति मूल्य)।
१६०–धर्म क्या है ?)।
१६१–महात्मा किसे कहते हैं ? मूल्य)।
१६२–ईश्वर दयालु और न्यायकारी है मू०)।
१६३–प्रेमका सच्चा स्वरूप मूल्य)।
१६४–हमारा कर्तव्य)।
१६५–ईश्वरसाक्षात्कारके लिये नामजप सर्वोपरि साधन है मू०)।
१६६–चेतावनी मूल्य)।
१६७–दिव्य सन्देश)।
१६८–श्रीहरिसंकीर्तनधुन)।
१६९–कल्याण-प्राप्तिकी कई युक्तियाँ

१७०–सप्तश्लोकी गीता मूल्य आधा पैसा

१७१–लोभमें ही पाप है आधा पैसा

१७२–गजलगीता आधा पैसा

173–The Philosophy of Love 1/-/-

174–The Story of Mira -/13/-

175–Gems of Truth -/12/-

176–Mysticism in the Upanishads -/10/-

177–Songs From Bhartrihari -/8/-

178–Mind Its Mysteries and Control I -/8/-

179–Mind Its Mysteries and Control II 1/-/-

180–Way to God-Realization -/4/-

181–Gopis' Love for Sri Krishna -/4/-

182–Our Present-day Education -/3/-

183–The Divine Name and Its Practice -/3/-

184–The Immanence of God -/2/-

185–Wavelets of Bliss -/2/-

186–The Divine Message -/-/9

विशेष जानकारीके लिये पुस्तकों और चित्रोंका सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।

पता–गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीपरमात्मने नमः

गीता-तत्त्वाङ्क

कल्याणके चौदहवें वर्षका विशेषांक

इसमें क्या है ?

गीता सम्पूर्ण अठारह अध्याय,
श्लोकोंके प्रत्येक पदका अनुवाद,
अध्यायोंके नामोंका स्पष्टीकरण,
प्रत्येक अध्यायका सारांश,
पिछले अध्यायसे अगले अध्यायका सम्बन्ध,
प्रत्येक श्लोकका अगले श्लोकसे सम्बन्ध,
श्लोकोंके प्रत्येक पदपर विस्तृत विवेचन,
भाव समझानेके लिये अनेक उदाहरण।

—इत्यादि अनेक विवेचनपूर्ण शिक्षाप्रद सुन्दर सामग्रियोंसे युक्त सरल भाषामें प्रश्नोत्तररूपमें लिखा हुआ यह अनुपम ग्रन्थ गीताप्रेमियोंके लिये बड़े ही कामकी वस्तु है।

पृष्ठ १०७२, चित्र रंगीन ४०, सादे ०२,
मूल्य ३॥), डाकखर्च मुफ्त।

पता—कल्याण, गोरखपुर

* कल्याण *

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और

सदाचारसम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र

वार्षिक मूल्य ५≈)

विशेषांक और फाइलें

इनमें कमीशन नहीं है—

भक्ताङ्क	१॥)	गीता-तत्त्वांक (प्र०ख०)	३॥)
योगाङ्क सपरिशिष्टांक	३॥)	साधनांक ,, ,,	३॥)
वेदान्तांक ,,	३)	भागवतांक ,, ,,	४॥)
,, फाइल	४≈)	महाभारतांक ,, ,,	५≈)
संत-अंक	३॥)		

पता—कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर

Kalyana-Kalpataru

(ENGLISH EDITION OF THE 'KALYAN')

Annual subscription Rs 4/8/-

Old Specials and Files

God Number with file ..	4/8/-
Dharma-Tattva Number	2/8/-
,, ,, ,, with file .	4/8/-
Yoga Number .. .	2/8/-
Bhakta Number	2/8/-
Sri Krishna-Lila Number . ..	2/8/

The Kalyana-Kalpataru, Gorakhpur.

गीता-जयन्ती-उत्सव

गीता-सरीखे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थकी जयन्ती प्रतिवर्ष 'मासाना मार्गशीर्षोऽहम्' मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को मनुष्य-मात्रको घर-घरमें अवश्य ही मनानी चाहिये। जिसमें गीता-ग्रन्थ, इसके वक्ता और रचयिता भगवान् श्रीकृष्ण और व्यासदेवकी पूजा तथा इसका पारायण, अर्थकी चर्चा और तत्त्व समझने, प्रचार करनेके लिये स्थान-स्थानमें सभाएँ, व्याख्यान आदि हों, गीता-ग्रन्थोंका प्रदर्शन हो, सवारी निकले, पुरस्कार देकर गीतापर निबन्ध लिखाये जायँ, आदि।

श्रीगीता और रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीगीता और रामायण ये दो ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसलिये समितिने इनके द्वारा धार्मिक शिक्षाके अभावको दूर करनेका निश्चय किया है। परीक्षाके अभ्यासक्रम तथा पुरस्कारादिका भी प्रबन्ध किया है। परीक्षा लेनेके लिये स्थान-स्थानपर केन्द्र भी स्थापित किये जाते हैं। विशेष जानकारीके लिये लिखें—

—संयोजक

'श्रीगीता-परीक्षा-समिति, गोरखपुर

श्रीरामायण-प्रसार-समिति, गोरखपुर